श्री भक्तकोकिल

स्वामी

अखण्डानन्द सरस्वती

❀ श्रीहरिः ❀

श्रीभक्तकोकिल

स्वामी

अखण्डानन्द सरस्वती

सूची

विषय	पृष्ठ संख्या

चित्र-सूची

जय साईं

जय जय सियाराम

श्री स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज सरस्वती

क्यों ?

आजसे बारह वर्ष पूर्व जब न मेरा यह नाम था और न यह वेषभूषा। मैं 'कल्याण' सम्पादक-मण्डलका एक सदस्यमात्र था और मेरा नाम था शान्तनुविहारी द्विवेदी। श्रीवृन्दावनमें यमुनातट-निकट-स्थित श्रीजीकी बगीचीमें गीताप्रेसके संस्थापक श्रीजयदयालजी गोयन्दकाका सत्सङ्ग हो रहा था। मैं भी बीच-बीचमें वृन्दावनी भावके अनुसार कुछ-कुछ कह देता था। वहीं श्रोताओंमें सामान्य गृहस्थके समान वेषभूषामें अपने कुछ सेवकोंके साथ श्रीभक्तकोकिलजी भी बैठे हुए थे। उन्हें मेरी बात सुहायी। उनके मनमें ऐसे भावका उदय हुआ मानो उनका और मेरा परिचय बहुत पुराना हो? हम दोनों मानो जन्म-जन्मके कोई घनिष्ठ सम्बन्धी हों। उन्हें मेरा सारा भविष्य सूझ गया और यह बात उन्होंने अपने सेवकोंसे कही। जब मैं वहांसे उठा तब वे मुझसे मिले और अपने आश्रमपर चलनेके लिये अपने सेवकके द्वारा अनुरोध किया। मुझे 'कल्याण'के कामसे रतनगढ़ जाना था, इसलिये स्वीकार नहीं किया। यहीं था हमारा प्रथम मिलन।

जब मैं संन्यासी होकर वृन्दावनमें आया हमारी पुरानी प्रीति जग उठी। आना-जाना, खाना-पीना, हँसना-खेलना, एक दूसरेसे परामर्श करना, सत्सङ्ग-कथा-वार्ता—

यह सब प्रतिदिनका कार्य हो गया। इतनी घनिष्ठता, इतनी प्रीति, इतनी ममता कि वह न कहना ही उत्तम है। कहनेसे बात हलकी हो जाती है। मैंने ही श्रीमहाराजजीसे उनकी बातचीत करायी, मैं ही आग्रह करके श्रीमहाराजजीको उनके आश्रममें ले गया। मुझे ऐसा मालूम पड़ता था कि उनका आश्रम ही मेरा असली निवास-स्थान है। जिस समय मैं उनके पास बैठता भक्तिके ऐसे-ऐसे भाव हृदयमें उठने लगते जो कभी अन्यत्र उठते ही नहीं थे। उनके सान्निध्यमात्रसे ही हृदयमें एक प्रकारकी भाव-तरंगें उठने लगती थीं। एक अनिर्वचनीय नशा रोम-रोममें छा जाता था। घण्टोंका समय मिनटोंकी तरह बीत जाता था। कभी-कभी दो-दो तीन-तीन घण्टे मैं उनके सत्सङ्गमें ही बैठा रह जाता था।

साईं कौन थे? क्या थे? उनका क्या बड़प्पन था? यह एक अलग बात है। मुझसे जो उन्होंने प्रेम किया, आनन्द दिया, सेवा की, अपना समझा, इतने बड़े होने पर भी हमारे सामने बिना आसनके ही नीचे बैठे, पाँव दबाया—इस बातका मैं जब स्मरण करता हूँ मेरा हृदय भर आता है। वही सत्सङ्ग है, वही आश्रम है, वही वृन्दावन है और वही मैं हूं परन्तु मन खोया-खोया सा रहता है, वह साईंको ढूंढ़ता है। उन्हें न पाकर एक महान् अभावका अनुभव करता है। यह सही है कि वे हैं और यहीं हैं परन्तु मन उसी कोकिलकाकलीके पञ्चम स्वरके लिये, उसी रसके लिये, उसी हास्य-विनोदके

लिये और उसी भक्तिरस एवं माधुर्यसे भरपूर मूर्तिमान् प्रेमके साथ हँसने खेलनेके लिये उत्कण्ठित हो उठता है।

मुझे भूमिका नहीं लिखनी है। जीवनी लिखने-लिखाने-की स्वप्नमें भी कल्पना नहीं थी। जो हमारे मनमें है, आँखोंमें है उसकी जीवनी क्या लिखना? परन्तु उनके सत्सङ्गियोंके हृदयमें जो उनके प्रति अगाध अजस्र एवं पूर्ण प्रेममयी स्मृतिकी धारा बह रही है उसका ही यह संस्मरण एक छोटी सी झाँकी है। यह दूसरोंके लिये नहीं अपने स्मरणके लिये संगृहीत हुआ है। स्वांतः सुखाय ही इसका एकमात्र प्रयोजन है।

साईं सदा प्रसन्न

श्रीकृष्णाश्रम, वृन्दावन
वसन्त पञ्चमी, २००८ } अखण्डानन्द सरस्वती

मंगल

सन्तो दिशन्ति चक्षूंषि बहिरर्कः समुत्थितः।
देवता बान्धवाः सन्तः सन्त आत्माहमेव च ॥

'जैसे सूर्य उदित होकर बाहरकी वस्तुओंके दर्शनकी शक्ति देते हैं वैसे ही सन्त पुरुष प्रकट होकर अन्तर्दृष्टि प्रदान करते हैं। सन्त ही देवता एवं बन्धु-बान्धव हैं। सन्त ही आत्मा हैं और सन्त ही वस्तुतः मेरे स्वरूप हैं।'

—भगवान् श्रीकृष्ण

❀ ॐ तत्सत् ❀

❀ ॐ श्री सद्गुरु प्रसाद ❀

❀ श्री अयोध्याधिपतये नमः ❀
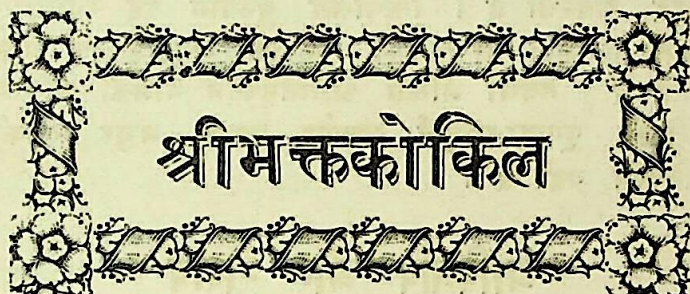
श्रीभक्तकोकिल

भक्तका हृदय ही भगवान्‌की क्रीडास्थली है। वह भगवान्‌की इच्छामूर्ति है। वे चाहे जब, जहाँ, जैसे, जिस रूपमें सजा-सँवारकर उसमें क्रीडा करते हैं। उसकी वेशभूषा, जाति, आकृति, नाम, रहन-सहन, आचार-विचार, गुण, भाव, सब प्रभुकी इच्छाके अनुसार होते हैं और वे अदल-बदलके, उलट-पलटके, जैसी मौज होती है, वैसे ही उसके साथ खेलते हैं। वे अपनी क्रीडाके लिये भक्तके हृदयको मिट्टी, पानी, हीरा, मोती, लता, वृक्ष, कीट-पतङ्ग, पशु-पक्षी, बालक-युवा, स्त्री-पुरुष, बच्ची-बुढ़िया सब कुछ बना लेते हैं और उसको निमित्त बनाकर हँसते, खेलते और खुश होते हैं उसको वे सम्पूर्ण रूपसे अपना लेते हैं -और जैसे खिलाड़ी नरम माटीको, माखनके लोंदेको चाहे जैसा

आड़ा-टेढ़ा लम्बा-चौड़ा, खूबसूरत, बद-सूरत खिलौनेके रूपमें बनाता है वह माटी अथवा माखनका लोंदा खिलाड़ीके हाथमें सर्वथा समर्पित रहता है। ऐसी भक्तकी स्थिति होती है। भक्ति-सिद्धान्तमें भक्तकी यही सिद्ध अवस्था है। नित्यसिद्ध पुरुषोंमें यह स्वभावसे रहती है और साधन-सिद्ध पुरुषोंको भगवत्कृपासे प्राप्त होती है। नवधा भक्तिमें आत्मनिवेदन नामकी अन्तिम भक्तिकी पूर्णता-सम्पूर्ण समर्पण अथवा मधुर रसकी परिणति यही है।

आविर्भाव और शैशव

भगवान्के एक ऐसे ही भक्तका आविर्भाव विक्रम सम्वत् १९४२ में सिन्धप्रान्तके जेकमाबाद जिलेके मीरपुर ग्राममें हुआ था। उनकी भाग्यशालिनी जननीका नाम श्रीसुखदेवी और पिताका नाम स्वामी "रोचलदास साहब था। उन्होंने जन्मके दिन ही स्वामी आत्माराम साहबकी गोदमें जो कि एक उच्चकोटिके सन्त थे, अपने नवजात शिशुको अर्पित कर दिया। इसी नवजात शिशुको आगे चलकर हम भक्तकोकिलके रूपमें देखते हैं। इसलिये अभीसे उसी नामसे व्यवहार करते हैं।

भक्तकोकिलका शैशव भी साधारण मनुष्योंकी अपेक्षा विलक्षण ही था। साधुओंकी सेवामें अत्यन्त रुचि थी। श्रीआत्माराम साहबके पास प्रायः साधु, महात्माओंका शुभागमन होता ही रहता था। मार्गके

थके-मांदे महात्मा जब रात्रिमें शयन करते तब भक्त-कोकिल पाँच वर्षकी अवस्थामें ही चुपचाप उनके पास जाकर पाँव दबाने लगते और जब वे जागकर देखते 'यह कौन हैं' तब वे छिप जाते ! इनके लक्षणोंसे प्रभावित होकर बड़े बूढ़े महात्मा भी इन्हें दिव्य मानते और पाँव दबवानेमें सङ्कोच करते ।

भक्तकोकिल पाँच वर्षकी अवस्थामें ही स्वामी आत्माराम साहबकी सेवामें संलग्न थे । वे शयन कर रहे थे और ये पंखा झल रहे थे । उस समय स्वामी आत्माराम साहबके मुखसे निद्राकी दशामें स्वयं ही किसी मन्त्रका उच्चारण हो रहा था । निद्रासे उठने पर भक्तकोकिलने बड़े प्रेमसे आग्रह पूर्वक उस मन्त्रकी जिज्ञासा की । स्वामी आत्माराम साहबने कहा—"बेटा, समय आनेपर तुम्हें यह स्वयं सिद्ध हो जायगा ।"

भक्तकोकिल पाँच वर्षकी अवस्थामें ही पाठ-शालामें भेजे गये । जब अध्यापकने पट्टीपर वर्णमालाका पाठ पढ़ाना चाहा, तब आप बोले—"पहले आप भगवान् श्रीरामचन्द्रकी लीला-कथा सुन लीजिये, फिर पढ़ाना प्रारम्भ कीजिये ।" आपने अपनी तोतली बोलीमें अध्यापकजीको पहले भगवान् श्रीरामकी कथाका पाठ पढ़ाया, फिर पीछे वर्णमालाकी शिक्षा ग्रहणकी । यह बात उस पाठशालाके अध्यापक पमनदासजी ही स्वयं कहा करते थे ।

सिन्धी भाषाका उस पाठशालामें आपने केवल चार पाँच तक अध्ययन किया। स्वयं स्वामी आत्माराम साहबने हिन्दी और संस्कृतकी शिक्षा दी और एक मौलवी साहबने पाँच-सात दिनोंतक फारसीकी शिक्षा दी। कुल दो महीनोंमें ही आपने अनेक भाषाओंका अभ्यास कर लिया। आपकी प्रतिभा देखकर पढ़ानेवाले आश्चर्यसे चकित रह जाते थे। मौलवी साहबने तो कहा "इनको कोई और भी आकर पढ़ाता है क्या ?" परन्तु उन्हें पढ़ानेवालेकी अपेक्षा नहीं थी; सभी विद्यायें स्वयं सिद्ध थीं।

एक दिन स्वामी आत्माराम साहबजी शयन कर रहे थे और भक्तकोकिल पंखा झल रहे थे। पासमें ही श्रीहनुमन्नाटककी पुस्तक रखी हुई थी। स्वामीजी बाल संन्यासी तपस्वी, त्यागी एवं आत्मनिष्ठ थे। हनुमन्नाटक से उनकी इतनी प्रीति थी कि वे उसे पढ़ते-पढ़ते भाव मग्न होकर नृत्य करने लगते थे। भक्तकोकिलजी इतनी छोटी अवस्थामें पंखा झलते-झलते उस ग्रन्थका आधा अंश पढ़ गये। जागनेपर स्वामीजीने आश्चर्य चकित होकर उन्हें हृदयसे लगा लिया और कहा— "इतनी देरमें तो मैं भी इतना नहीं पढ़ सकता !"

एक दिन भक्तकोकिलजी स्वामी आत्माराम साहबकी सेवाके लिये जङ्गलमें कंडे लेनेके लिये गये। ग्रीष्म ऋतु थी। दिन चढ़ गया, धरती तप गयी। आप नङ्गे

पाँच कंडे सिरपर लिये आ रहे थे। उसी समय एक सज्जन उसी रास्ते घोड़ेपर निकले। उन्होंने कहा—"बेटा, तुम कण्डे फेंक दो और घोड़ेपर बैठ जाओ !" परन्तु भक्तकोकिलजीने स्वीकार न किया। उनमें बचपनसे ही श्रीगुरुसेवाकी पक्की लगन थी। उसी समय बादल घिर आये, वर्षा होने लगी।

भगवान् जिसके साथ खेलना चाहते हैं, प्रारम्भसे ही उसके जीवननिर्माणपर एक सजग दृष्टि रखते हैं। उसके अन्तःकरणमें कोई और रङ्ग चढ़ने न पावे, संसारकी किसी वस्तु या व्यक्तिमें उसकी ममत्वबुद्धि न हो जावे, कहीं उलझ न जाय, इसीका स्वयं ही बिना किसी साधना प्रार्थनाके ध्यान रखते हैं। छः महीनेकी अवस्थामें ही भक्तकोकिलकी माताजी इस लोकसे हटा ली गयी थीं। पिता श्रीरोचिलदासजी साहब बड़े ही गुरुभक्त सत्सङ्गप्रेमी उदारचेता थे। वे अपना वेतन अपने वस्त्रतक गरीबोंको दे दिया करते थे। भक्तकोकिलजीकी छः वर्षकी अवस्थामें ही वे भी भगवद्धाम बुला लिये गये। अन्तिम समयमें उन्होंने अपना सबकुछ गरीबोंको बाँट दिया, अपने बच्चोंकेलिये कुछ नहीं छोड़ा। स्वामी आत्मारामजीने कहा—"तुम सब कुछ लुटा देते हो, बच्चोंके लिये कुछ नहीं छोड़ते ?" वे बोले—"मैंने इन बच्चोंका प्रारब्ध तो नहीं लुटाया है। ईश्वर सबकी रक्षा करता है !"

अब भक्तकोकिलजीके एकमात्र अवलम्ब स्वामी आत्माराम साहब रह गये। निरन्तर उन्हींकी सेवामें रहते थे, प्रीतिकी धारा सिमिटकर एक ओर बहने लगी। स्वामी आत्मारामजी भक्तकोकिलपर बड़ी कृपा और स्नेह रखते थे। अन्य शिष्योंको तो राजसी ठाट बाटसे भी रहने देते; परन्तु इनके अन्दर त्याग, वैराग्य, तितिक्षा सरलता, नम्रता, सेवा आदि सद्गुणोंकी वृद्धि हो— इसीबातका ध्यान सर्वदा रखते थे कि किसीके यह पूछनेपर कि "इनको आप वस्त्र, आभूषण आदि क्यों नहीं धारण कराते ?" "उन्होंने उत्तर दिया था कि इनको मैं और ही आभूषण धारण करा रहा हूँ।"

वैराग्य

संत अमर होते हैं, क्योंकि जो सत्से एक हैं वे ही संत हैं। लोगोंको जो सन्तोंकी मृत्यु दिखाई पड़ती है वह तो उनकी एक लीलामात्र है और वह किसी न किसी विशेष प्रयोजनसे होती है। भक्तजनोंको बहिर्मुखसे अन्तर्मुख करनेके लिये सन्तजन स्वयं ही भक्तजनोंकी सारी प्रीति और ममता समेटकर छिप जाते हैं। कभी-कभी स्वयं भगवान् ही सन्त और भक्तजनोंके बीचमें एक ऐसा पर्दा डाल देते हैं जिससे लोग उनके लिये तड़फड़ायें और भगवान् एवं सन्तके अधिक से अधिक निकट पहुँच जायँ। दस वर्षकी अवस्थामें ही भक्तकोकिलजीके सामनेसे स्वामी अत्मारामा

वैरागी किशोर

साहब अन्तर्धान हो गये अथवा अन्तर्धान कर दिये गये। इस घटनाने भक्तकोकिलको मानों झकझोर दिया। संसारकी ओरसे सर्वथा ही उन्होंने अपनी दृष्टि हटा ली। अब भक्तकोकिलजी दरबारमें रहना पसन्द नहीं करते थे। लोगोंकी आँख झपते ही चाहे रात हो या दिन एकान्त जङ्गल या श्मशानकी ओर चले जाते थे। भीड़ भाड़ उन्हें बिलकुल अच्छी नहीं लगती, लोगोंसे बातचीत करनेमें रस नहीं आता। खाने, पीने, पहिननेमें रुचि न रही। कभी-कभी पाँच-पाँच सात-सात घण्टे एकान्तमें रहते और कभी-कभी पाँच-पाँच सात-सात दिनके बाद पता लगता। स्वामी आत्माराम साहबके अन्तर्धान होने का दुःख तो बहुत था; क्योंकि इस लोकमें उनके एकमात्र अवलम्ब वे ही थे; परन्तु उनके परधामगमनसे उनका सोया हुआ चित्त जग गया। छिपी हुई प्रीति भगवान् एवं सन्त सद्गुरुकी प्राप्तिके लिये तड़प उठा। भगवान्के गुणानुवाद का गान, नामकीर्तन, जप और जपजी साहबका विचार अहर्निश करने लगे।

जीवका हृदय एक ऐसा यन्त्र है जो अपने आकर्षणकेन्द्रके लिये सर्वदा आकृष्ट होता रहता है। नासमझीसे चलनेसे उसे बहुत भटकना और लम्बा रास्ता तय करना पड़ता है तथा समझदारीसे चलनेपर सुगमता हो जाती है। रास्ता तो छोटा हो ही जाता है। समस्त हृदयोंके आकर्षणकेन्द्र हैं एकमात्र भगवान्। उनके पास पहुँचे बिना किसीको

भी जलन और प्यास बुझ नहीं सकती । जो उनकी ओर चलते हैं, उन्हें ढूँढ़ते हैं, वे सीधे रास्तेपर हैं और जो कोई दूसरी दिशाको ढूँढ़ रहे हैं वे जा तो उन्हींकी ओर रहे हैं; परन्तु भटक रहे हैं । उनका रास्ता लम्बा हो गया है । जिनका हृदय शुद्ध होता है, वे सीधे भगवान्‌की ओर चलते हैं और उन्हें रास्ता बतानेके लिये सन्त सद्‌गुरुके रूपमें स्वयं भगवान् उनके साथ हो जाते हैं । सोलह-सत्रह वर्षकी अवस्थामें ही भक्तकोकिल दो साथियोंके साथ सन्त सद्‌गुरुकी प्राप्तिके लिये निकल पड़े । रास्तेके एक गाँवमें लोगोंके बहुत आग्रह करनेपर श्रीरामायण और श्रीव्रजविलासकी कथा सुनायी । उस गाँवके लोग भक्तकोकिलके मुखारविन्दसे भगवद्‌गुणानुवाद-रसका आस्वादन करके बहुत ही आनन्दित हुए और भेंटके रूपमें ढाईसौ रुपये देने लगे, भक्तकोकिलजीने नम्रतासे उनका आग्रह अस्वीकार करदिया । जो परमार्थपथपर अग्रसर होते हैं, उनकी दृष्टि लक्ष्मीके विलासपर कभी नहीं अटकती । एक साथीने कहा 'जब स्वयं ही रुपये मिल रहे हैं तब क्यों नहीं ले लेते ?' परन्तु उन्होंने फिर भी अस्वीकार किया और वह साथी वहाँसे लौट गया ।

भक्तकोकिलजीको इसी गाँवमें एक उच्च कोटिके सूफी फकीर मिले । वे अपने सङ्कल्पमात्रसे औरोंके हृदयमें रसका उल्लास एवं ह्रास कर सकते थे । बड़े

तपस्वी थे। भक्तकोकिलजीने उनसे पूछा–"प्रेमका क्या स्वरूप है ?" वे बोले–"मुझे तो तुम्हीं प्रेमके स्वरूप दीख पड़ते हो" ऐसा कहकर वे प्रेममुग्ध हो गये। उनके शरीरमें प्रेमके सात्त्विक भावके चिह्न प्रकट हो गये।

भक्तकोकिलजी एक दूसरे गाँवके पास एकान्तमें बैठकर भगवान्‌का भजन, ध्यान, करनेमें तल्लीन हो रहे थे। मुखारविन्दपर एक दिव्य ज्योति जगमगा रही थी। नेत्रोंमें आँसू और शरीरमे पुलकावली। उसी समय गाँवके पटवारी उधर आ निकले। भक्तकोकिलजीके मुखपर भजनकी जगमग ज्योति देखकर उनके हृदयमें एक अपूर्व भावका उदय हुआ, खिंच गये। पास जाकर उन्होंने पूछा-"आप क्यों रो रहे हैं राजकुमार ?" भक्तकोकिलजी बोले-"भूख लगी है।" किसकी भूख लगी है यह बात छिपा ली। पटवारीजीने समझा रोटीकी भूख है और उन्होंने कहा-"मैं अभी आपके लिये भोजन लाता हूँ।" वे गाँवमें चले गये और भक्तकोकिलजी भजन आनन्दमें निमग्न होगये।

पटवारीजीने आग्रह करके गाँवके बाहर बैठकमें भक्तकोकिलजीको रोक लिया। दस पन्द्रह दिन सत्सङ्गकी गुलाल उड़ती रही। पटवारीजी तो उसमें ऐसे रंग गये कि जीवनभर अनुरागकी लाली न छूट सकी और गहरी होती गयी। भक्त कोकिलजीके श्रद्धालु प्रेमियोंमें सबसे प्रथम गिने जानेका सौभाग्य इन्हींको प्राप्त है। इस गाँवमें जबतक भक्तकोकिलजी रहे

सत्सङ्गके अतिरिक्त सब समय एकान्तमें जप, कीर्तन, भजन, स्मरण, ध्यानके आनन्दमें मग्न रहे । इतने दिनोंमें ही इनका समाचार मीरपुरके लोगोंको मालूम हो गया और वे लेनेके लिये उस गाँवमें आ पहुँचे । भक्तकोकिलजीकी रुचि सन्त सद्गुरु की प्राप्ति किये विना मीरपुर लौटनेकी नहीं थी । हृदयमें वैराग्यका समुद्र उमड़ रहा था । इन दिनों उपनिषद्, गीता, वैराग्यशतक आदिका ही वे स्वाध्याय करते थे । न उस गाँव वालोंको पता चला और न मीरपुर वासियोंको । अपने साथीको भी वहाँ छोड़ दिया और रातको चुपकेसे वहाँसे रवाना हो गये । जिनके हृदयमें भगवत्प्राप्तिकी उत्कण्ठा जाग्रत होती है, गाँव-महल, कुल-परिवार, सग-सम्बन्धी, इष्टमित्र, मान-प्रतिष्ठा, यश कुछभी उनके मार्गमें अड़चन नहीं डाल सकते । जैसे गंगाजी मार्गके पहाड़ों, चट्टानों और खन्दकोंको चीरती फाड़ती समुद्रमें जा मिलती हैं, वैसे ही वे सब विघ्न बाधाओंको पारकरके अपने लक्ष्य स्थानपर पहुँच जाते हैं ।

श्रीसद्गुरुकी प्राप्ति

भक्तकोकिलजी दो चार महीनोंमें ही किसी अज्ञात प्रेरणासे खिंचे हुए-से एक डाक्टरके साथ कोट-कांगड़ामें जा पहुँचे । उन दिनों वहाँ भूकम्पके कारण त्राहि-त्राहि मच रही थी । लोग अपने घर-द्वार, सगे-सम्बन्धी और अन्न-वस्त्रोंसे भी वञ्चित हो गये थे । भगवान्

दीनबन्धु हैं इसलिये भक्तजनोंको दीनजन अपने कोई खास सम्बन्धी जान पड़ते हैं। जहाँ दीन होंगे, वहाँ भगवान् और भक्त भी होंगे। वहीं बैठकर भगवान् जीवोंको अपनी भक्ति और सेवाके लिये पुकारते हैं। भक्तकोकिलको वहाँ पहुँचकर भगवान्की सेवा करनेका अवसर तो मिला ही, उन सन्त-सद्गुरुकी भी प्राप्ति हुई जिनके लिये वर्षोंसे उनके प्राण आकुल हो रहे थे और जिनकी प्याससे छटपटाते हुए ही वे इधर-उधर भटक रहे थे।

कोट-कांगड़ामें भूकम्प होनेके बाद अनेकों सज्जन सत्पुरुष वहाँके दीन-दुखियोंकी सेवा करनेके लिये वहाँ आये हुए थे। सभी अपने-अपने शिविरोंमें ठहरकर अपनी शक्ति एवं रुचिके अनुसार सेवाकार्यमें संलग्न थे। एक दिन भक्तकोकिलजीको एक अभूतपूर्व आकर्षणका अनुभव हुआ। उनको ऐसा लगा कि जिसको मैं ढूँढ़ रहा हूँ, वह यहीं कहीं है। चकोरको चन्द्रमाकी ओर एवं मयूरको मेघकी ओर आकर्षित करनेके लिये शिक्षा नहीं देनी पड़ती। यह तो हृदयका स्वभाव ही है कि वह जिसको ढूँढ़ रहा है, उसके आसपास होनेपर वह एक दिव्य रसमय प्रणय-निमन्त्रणका आन्तर आवाहन सुनने लगता है। भक्तकोकिलजी सेवाकार्यके लिये समागत सत्पुरुषोंके शिविरोंके पाससे निकले तो उन्हें एक शिविरमें किसी दिव्य आश्चर्यमय प्रकाशका दर्शन हुआ। वे जान गये कि जिस सन्त सद्गुरुकी

खोजमें मैं हूँ वे यहीं हैं। यह शिविर था स्वामी श्रीअविनाशचन्द्रजी महाराजका जो बङ्गालसे भूकम्प-पीड़ित जनताकी सहायता करनेके लिये आये हुए थे। भक्तकोकिलजी खिंच गये और उनके शिविरके द्वारपर बैठकर गीतापाठ करने लगे। दूसरे दिन भी किया। तीसरे दिन परम दयालु सन्त महापुरुषने उन्हें भीतर बुलाकर पूछा—"क्यों बेटा, क्या कर रहे हो ?" भक्तकोकिल बोले-"गीतापाठ।"

सन्त–'तुम्हारे मस्तकमें श्रीअवधसरकारकी भक्ति झलक रही है।'

भक्तकोकिल–'आप जो आज्ञा करेंगे, वही करूँगा !'

श्रीअविनाशचन्द्रजी महाराजने भक्तकोकिलके हृदयकी रुझान, उनके जन्म-जन्मकी, युग-युगकी साध, साधना, प्रीति, भक्तिरस और रसकी स्थिति पहचान ली। उन्होंने भक्तकोकिलजीको वैसा ही उपदेश किया। फिर वे डाक्टरके पास नहीं रहे। तभीसे भक्तकोकिलजी उनकी ही सेवामें रहकर भगवान्की आराधना करने लगे।

सन्तशिरोमणि स्वामी श्रीअविनाशचन्द्रजी महाराज भगवान्के परम अनुरागी थे। भक्त-कोकिलजी सत्सङ्गमें कहा करते थे कि भगवान्के पूर्ण अनुरागके रंगमें रँगा हुआ यदि कोई हृदय मैंने देखा

है तो केवल उन्हींका। स्वामी श्रीअविनाशचन्द्रजी महाराजके प्रति भक्तकोकिलजीका बहुत ही ऊँचा भाव था। अखण्ड श्रद्धा थी। वे सम्पूर्ण रूपसे आत्म समर्पण करके उनकी सेवामें लग गये। यद्यपि उनकी सेवामें और भी बहुत-से लोग थे तथापि भक्तकोकिलकी चेष्टा यही रहती थी कि सब-की-सब सेवा मैं ही करूँ। स्नानके लिये जल भरना, शरीरमें तेल मालिश करना, स्नान कराना, वस्त्र धोना, पाँव दबाना, पंखा झलना, सब काम पूरे उत्साह एवं प्रीतिके साथ करते थे। स्वामी श्रीअविनाशचन्द्रजी स्नान करते-करते भावमें मग्न हो जाते थे और भगवान्की अद्भुत अश्रुत एवं अत्यन्त मधुर लीलाओंका अनुभव करते थे। उस समय भक्तकोकिलजी उनके पास ही रहकर उन्हें पंखा झलते रहते थे।

श्रीगुरुसेवा कभी निष्फल नहीं जाती। श्रीगुरुकी सेवा ही भगवान्की और अन्तरात्माकी सेवा है। सेवाकार्यमें सेव्यको उतना लाभ नहीं होता जितना सेवक को होता है। सेव्यकी सेवा तो कोई वेतनभोगी नौकर भी कर सकता है, परन्तु सेवकके अन्तःकरणका निर्माण, उसमें त्याग, तपस्या, सहिष्णुता, वैराग्य समता, एकाग्रता, सावधानी, प्रीति आदिका उदय केवल सेवासे ही हो सकता है। सेवकको यही सेवा करनेके लिये आवश्यकता न होनेपरभी गुरुजन

सेवा स्वीकार करते हैं। जिस समय सन्त श्रीअविनाशचन्द्र-जी भगवान्‌के भजनमें तन्मय हो जाते, भक्तकोकिलजी भी सेवा करते हुए उनकी तन्मयताका आनन्द लेते रहते।

एक दिन ऐसे ही अवसर पर एक दिव्य झाँकीके दर्शन हुए। वह यह थी—श्रीगङ्गाजीका तट है। रङ्ग-बिरङ्गे पुष्पोंसे लदे हरे-भरे वृक्षोंकी पंक्ति है। हरिण बछड़े आदि उछलकूद रहे हैं। गौएँ हरी-हरी घास चरकर जुगाली कर रही हैं। रङ्ग-बिरङ्गे शुक-पिकादि पक्षी चहक रहे हैं। अच्छा! यह तो कोई आश्रम है। अवश्य ही यह महर्षि वाल्मीकिजीका आश्रम है। भक्तकोकिलजीने देखा—इसी महर्षिके आश्रममें सर्वेश्वर हृदयेश्वरी पतिप्राणा जगज्जननी अवध-सरकार सतीगुरु श्रीजनकनन्दिनीजू अपने प्राणेश्वर प्रियतमके पुनर्विरहसे अत्यन्त व्याकुल हो रही हैं। उनके रोम-रोमसे अग्नि-स्फुलिंगके समान "श्रीराम" "श्रीराम"—इस अनाहत ध्वनि-के साथ बिरह-बोधक साम ऋचाएँ निकल रही हैं। निदाघ-की दहकती हुई गरमीमें अपने झुण्डसे बिछुड़ी हुई मृगीके समान विकल हो दीर्घ श्वास ले रही हैं। भक्तकोकिलजीके देखते ही देखते उनके मुखसे एक चीत्कार निकला और वे बेसुध होकर अपनी माता वसुन्धराकी गोदमें सो गयीं। वृक्षकी शाखाओं पर बैठे हंस-हंसिनी आदि पक्षियोंने नीचे उतरकर उन्हें चारों ओरसे घेर लिया और उनकी रक्षा करने लगे। धूम्रसार मेघोंका हृदय भी

द्रवित हो गया । उन्होंने श्रीस्वामिनीके ऊपर छायाकी और फुहियाँ बरसायीं । कोकिलने वात्सल्यसे भरकर-'श्रीराम' 'श्रीराम' उच्चारण किया । तापस-कुमारियोंने सचेत किया । वे प्रियतम राघवेन्द्रके विरहमें व्याकुल, क्षुधा-तृषासे जर्जरित, स्वजन-सम्बन्धियोंसे तिरस्कृत होकर व्यथित हृदयसे बार-बार अपने हृदयेश्वर का स्मरण करतीं और वाताहत लताके समान मूर्छित होकर पृथ्वीका आलिङ्गन करने लगतीं थीं ।

इस झाँकीके दर्शनसे भक्तकोकिलजीकी दशा ही कुछ और हो गयी । प्राण व्याकुल हो उठे, नेत्रोंमें आँसू छलक आये, शरीरमें रोमाञ्च हो आया, देहकी सुधि-बुधि जाती रही । श्रीअविनाशचन्द्रजी महाराजने भजनसे उठकर धैर्य धारण कराया तब कहीं जाकर भक्तकोकिलजी सावधान हुए । सन्त सद्गुरुने आज्ञाकी कि अब तुम इसी भावनाको धारण करो ।

मनुष्यके हृदयमें युग-युगके, जन्म-जन्मके, संस्कार सञ्चित रहते हैं । जिसके संस्कार साधनाके, भजनके भगवद्भक्तिके होते हैं; छिपायेसे छिपते नहीं । सन्त सद्गुरुका सान्निध्य प्राप्त होते ही वे उभर आते हैं । फिर जिसके साथ खेलनेका सङ्कल्प स्वयं भगवान्‌ने कर रखा हो उसके सम्बन्धमें तो कहना ही क्या है ! भगवान् कोई न कोई निमित्त बनाकर अथवा बिना

निमित्तके ही अपनी साधनाकी, प्रेमकी, सारी पूँजी उसे सौंप देते हैं। ऐसे भाग्यवान् के जीवनमें साधनाओंका ऐसा विकास होता है कि मानों वे स्वयं ही उसमें प्रकट होनेके लिये उत्सुक हों। स्वामी श्रीअविनाशचन्द्रजी महाराजने भक्तकोकिलजीको एक साधना बतायी। भक्तकोकिलजीने मानो पहलेसे ही पूरी कर रखी हो, तीन महीनेमें ही उसे पूर्ण कर दिया। भक्तकोकिलजीकी यह स्वाभाविक सिद्धि देखकर सन्त-सद्‌गुरुने कहा कि "इतनी उन्नति, इतनी सफलता तो और किसीको तीन वर्षमें भी नहीं मिल सकती थी।" जिसपर भगवान्‌की कृपा है, जो उनका अपना है, उसके लिये आश्चर्य और असम्भव क्या है!

सन्त सद्‌गुरु श्रीअविनाशचन्द्रजीने भक्तकोकिलजीसे कहा-"पहिले एक इष्टका निश्चय होना चाहिये अर्थात् एक परमात्माकी ही इच्छा होनी चाहिये। यदि इष्ट अर्थात् इच्छाके विषय अनेक होंगे तो एकाग्रता किसमें होगी? इष्टकी एकतासे ही ध्यान होता है। जो अलग अलग अनेक इष्टोंकी इच्छा होती है वह तो बाहरी नाम-रूपके भेदपर दृष्टि डालनेके कारण है। सब इष्ट मूलतः आनन्दरूपमें एक हैं। अपना इष्ट ही आनन्द है। सबके अन्तर्यामी कर्ता-धर्ता सर्वेश्वरसे प्रार्थना करनी चाहिये—यह बुद्धिमती जीव रूपिणी स्त्री अपने इष्टसे मिल जाय! विचार कर

इस बातका उत्तर दो कि कहनेवाला, सुननेवाला, और करनेवाला कौन है ?

भक्तकोकिलजी कुछ दिन कोटकांगड़ामें और फिर लाहौरमें श्रीस्वामी अविनाशचन्द्रजीके साथ रहे। भगवद्गुणानुवाद, भजन, सेवा आदिमें संलग्न रहनेके कारण आठ महीने कैसे बीत गये इसका पता ही नहीं चला। जब श्रीस्वामी अविनाशचन्द्रजी महाराज लाहौरसे बंगाल लौटने लगे तब उन्होंने भक्तकोकिल-जीको यह उपदेश किया—"अपने इष्टको सर्वश्रेष्ठ मानना परन्तु दूसरेके इष्टको छोटा समझकर निन्दा नहीं करना और किसी मजहबको सम्प्रदायको बुरा न मानना। जहाँ जो सचाई हो, ईमानदारी हो—उसको स्वीकार करना।" भक्तकोकिलजीने इन उपदेशोंको सर्वदाके लिये अपने हृदयमें धारण कर लिया।

एक ओर सन्त सद्गुरुकी आज्ञा और दूसरी ओर उनका वियोग ! इस विषम स्थिति पर विजय प्राप्त करनेके लिये भक्तकोकिलजीने सन्त सद्गुरुसे अपने सहारेके सम्बन्धमें प्रार्थना की। सद्गुरुने कहा—"श्रीगुरुग्रन्थसाहब ही सर्वश्रेष्ठ आश्रय हैं। तुम्हारी जो इच्छा होगी उन्हींके आश्रयसे पूर्ण होगी। कराचीमें ब्रह्मसमाजके स्तम्भ श्रीकेशवचन्द्रसेनके शिष्य श्रीनन्दलाल सेनजी हमारे मित्र रहते हैं। उनसे कभी कभी मिल लिया करना।"

मीरपुर-आगमन

भगवान् स्वच्छन्द लीलाविहारी हैं। जब जिस भक्तके साथ जैसी मौज हुई लीला कर ली। वे अपने भक्तको कभी लँगोटी बाबाके रूपमें देखकर खुश होते हैं, कभी स्वामीके रूपमें; कभी हँसते खेलते देखकर खुश होते हैं तो कभी रोते गाते। जब सन्तसद्गुरुसे विदा होकर मेहड़ग्राममें पहुँचे तब उन्हें रात्रिमें एक स्वप्न आया। स्वप्नमें स्वामी आत्माराम साहबजीने कहा—"मीरपुरके दरबारके महन्त स्वामी ज्ञानदासजीका❀ शरीर पूर्ण होगया है। अब तुम जाकर वहाँकी सेवाका भार सम्हालो!" भक्तकोकिलजीने रोहिड़ीके दरबार-साहबके महन्त गङ्गारामजीको चिट्ठी लिखकर पूछा। स्वप्न सत्य निकला। समाचार मिलनेसे लोग मेहड़में आकर श्रीभक्तकोकिलजीको रोहिड़ी ले गये। वहाँ मीरपुरके भक्तजन भी आगये और अतिशय प्रेम-श्रद्धासे आग्रह करने लगे कि आप मीरपुरमें चलकर दरबारकी सम्भाल स्वीकार करें। भक्तकोकिलजीने पहले

❀ स्वामी आत्माराम साहबके बाद दो वर्ष तक स्वामी श्रीराधाकृष्णदासजी महन्त रहे। उनके बाद यही स्वामी ज्ञानदासजी गद्दीके उत्तराधिकारी हुए।

अस्वीकार कर दिया, परन्तु जब लोग बहुत ही प्रेम पूर्ण आग्रह करने लगे तब उन्होंने कहा कि मेरी सेवा, पूजा, भजन, एकान्तवास, त्याग, वैराग्य आदिमें कोई किसी प्रकारका हस्तक्षेप न करे तो मैं दरबार-साहबकी सेवा कर सकता हूँ। सबने सहर्ष स्वीकृति दी। श्रीभक्तकोकिलजी मीरपुर लौट आये।

महन्तीका त्याग

जिसको भगवान्के सेवक होनेका पद प्राप्त होगया है उसको दूसरा कोई भी पद प्राप्त होनेसे प्रतिष्ठा या गौरवका अनुभव नहीं हो सकता। स्वयं लक्ष्मीपति जिसके अपने हैं वह संसार-लक्ष्मीके झूठे विलासोंको महत्त्व नहीं दे सकता। भक्तकोकिलजी मीरपुरके दरबार की सेवाके लिये लौट तो आये परन्तु उन्होंने गद्दीपर बैठनेकी रस्म पूरी नहीं करवायी। दिन-रात भजन, स्मरण, मानसी सेवा, पदगान, नामधुन आदिमें लगे रहते। भिन्न-भिन्न गाँवोंमें दरबारकी सेवाके लिये बड़ी बड़ी बन्धानें बँधी हुई थीं। दरबारके इन नये स्वामीने उनके सब बहीखातोंको एक दिन कुएँमें डाल दिया। इन बड़ी-बड़ी रकमोंके हिसाब-किताब नष्ट होनेसे दरबारका मुनीम तो पागल ही हो गया। श्रीस्वामीजीने इनकी अथवा लोगोंके कहने-सुननेकी कोई परवाह नहीं की। जिसके हृदयमें ईश्वरके प्रति

सच्चा विश्वास है, वह किसी औरके प्रति निर्भर नहीं रह सकता। उस समय श्रीस्वामीजीकी एकान्त निष्ठा इतनी प्रबल थी कि दो तीन वर्ष तक तो प्रायः ऊपरसे नीचे आते ही नहीं थे।

भगवद्विग्रहकी प्राप्ति

सन्त सद्गुरु स्वामी श्रीअविनाशचन्द्रजीसे विदा होकर मीरपुरमें आनेके बाद श्रीस्वामीके हृदयमें एक और पीड़ाका अनुभव होने लगा। भगवान्के लिये, भगवत्प्रेमके लिये व्याकुलता तो पहले ही थी, खाना, पीना, पहनना—कुछ भी नहीं रुचता। अब सन्त सद्गुरुसे अलग रहनेकी विरह-वेदना और भी जुड़ गयी। प्रायः ऊपर ही रहते, नींद भी बहुत कम लेते। कुछ थोड़ेसे चने अथवा दाखका पानी ले लेते। दिन-रात विरह-वेदनासे तड़पते रहते। इन्हीं दिनों श्रीस्वामीजीने एक स्वप्न देखा। स्वप्नमें सन्त सद्गुरु श्रीअविनाश-चन्द्रजी महाराज प्रकट हुए और उन्होंने आज्ञाकी कि जहाँ तुम प्रतिदिन स्नान करते हो वहाँ बेरके नीचे खोदनेसे तुम्हें अभीष्टकी प्राप्ति होगी। जागनेपर श्रीस्वामीजीने बड़े उल्लासके साथ वहाँकी धरती खोदी तो एक दिव्य सोनेकी डिबिया निकली। उसमें एक बहुत ही विलक्षण भोजपत्र पर श्रीजनकनन्दिनी सतीगुरु श्रीस्वामिनीजीकी मूर्ति अङ्कित थी। उनके दर्शनसे भक्तकोकिलजीका रोम-रोम प्रफुल्लित हो गया। परम

हर्षित होकर सिरपर धारण किया। श्रीस्वामीजी छोटी सी कुटियामें छोटेसे पालने पर छोटी-सी श्रीजनक-नन्दिनीजीको विराजमान करके हौले-हौले झोंटे देने लगे। जब कहीं बाहर जाते तब इन्हें अपने सिरपर धारण करते। इस प्रकार सन्त-सद्गुरुके वियोगका दुःख कुछ शान्त होगया; परन्तु भगवत्प्राप्तिकी व्याकुलता और भी दिन-दूनी रात-चौगुनी बढ़ने लगी।

उत्कण्ठाकी वृद्धि

भगवान् प्रत्येक जीवको अपनी ओर आकर्षित करते रहते हैं। किसीको कहीं भी कभी चैनसे नहीं बैठने देते, जबतक वह उनके पास पहुँच न जाय। परन्तु साधारण लोग उस आकर्षणको नहीं जानते-इसीसे भटकते रहते हैं। शुद्ध हृदयके जीव इस खिचावकी कशिशको, प्रणय-निमन्त्रणको पहिचानते हैं। उनको मालूम पड़ता है कि मेरे प्यारे प्रभु युग-युगसे बाँह फैलाये अपने हृदयका द्वार उन्मुक्त किये प्रेम भरी चितवनसे देखते हुए मुझे अपनी ओर आनेका इशारा कर रहे हैं। यह सब देखकर वह भी दौड़कर, उड़कर, बँधे हुए बछड़ेकी तरह, पंख हीन पक्षीकी तरह अपने परम प्रेमास्पदके पास एक ही साँसमें एक ही उड़ानमें पहुँच जाना चाहता है। उसकी यह लालसा, उत्कण्ठा ही विरह-वेदनाका रूप धारण कर लेती है और हर समय प्रीतमकी ओर अग्रसर होनेके लिये नयी व्यथा, नयी स्मृति, नयी कल्पनाओं और नये-नये अनुभवोंको

जन्म देती रहती है। यही भक्तका जीवन है। यही भक्तका भगवान्के लिये अभिसार है।

श्रीस्वामीकोकिलजीकी विरह-व्यथा बढ़ने लगी उनपर भगवान्के आकर्षणका इतना प्रभाव पड़ता, उनके शुद्ध हृदयमें उसकी ऐसी गहरी अनुभूति होती मानो शरीर और हृत्पिण्ड उस खिंचावके सहनेमें असमर्थ हैं ; कलेजा फटने-सा लगता, शरीर पसीजने लगता, कण-कण बिखरने लगते, नस-नाड़ियोंकी गति और रुधिराभिसरण भी ऊर्ध्वमुखी हो जाता। नसें फूलकर ऊपर चढ़ जातीं। जीवन आँखोंसे बाहर छलक पड़ता। आँसूसे कपड़े भीग जाते। शरीरकी सुधि नहीं रहती। हा स्वामिनी ! हा श्रीजानकी !! कहते कहते बेसुध होकर गिर पड़ते। कभी कभी विरह–आवेशमें सामने कोई दिव्य झाँकी देखकर दौड़ पड़ते, नाचते, गाते, हँसते, पुकारते, गुनगुनाते. बातचीत करते और ध्यानस्थ होकर चुपचाप बैठ जाते। कभी विरहकी स्फूर्तिसे व्याकुल हो उठते तो कभी संयोगकी स्फूर्तिसे आनन्दमग्न। मानो भगवान् अपने भक्तको प्रेमके झूलेमें बैठाकर संयोग और वियोगके झोंटे दे रहे हों !

श्रीजनकपुरकी यात्रा

भक्तके हृदयमें जब विरहकी ज्योति जागती है, दिलका दीया जलने लगता है, तब अपने प्रियतम

प्रभुका नाम, धाम, लीला और रूप यही चार उसके जीवनके आश्रय होते हैं। इन्हींके सहारे विरही जीता है। वह इन्हींका वर्णन करता है, श्रवण करता है, स्मरण करता है, गुनगुनाता है, इन्हींमें डूबता और उतराता है। बाहर भी यही, भीतर भी यही। कोकिल स्वामी दिनरात अपने प्रियतम प्रभुके स्मरण में संलग्न ही रहते। अब धाम-दर्शनकी उत्कण्ठा जाग्रत हुई। आपने सबसे पहले जगज्जननी सतीगुरु स्वामिनी श्रीजनकनन्दिनीकी जन्मभूमि विदेहपुरीकी यात्रा की। श्रीस्वामी कोकिलजीके साथ केवल एक सेवक था। रास्ते भर स्वामीजी अपने भावमें तन्मय रहे। कोई भी स्टेशन आता-"क्या यही श्रीजनकपुर है ?" ऐसा पूछते। कहीं भी श्रीयुगलसरकारका नाम दीखता तो प्रणाम करते। शरीर तो श्रीजनकपुरकी ओर जा ही रहा था, चित्तवृत्तिका प्रवाह भी उसी ओर जा रहा था।

दिव्य भाव

भगवान् श्रीरामचन्द्रकी आह्लादिनीशक्ति श्रीश्रीजूकी जन्मभूमि भी परम आह्लादमयी है। वहाँकी कोमलभूमि शीशेके भाँति स्वच्छ, विशाल सरोवर, फलोंसे लदे हुए आम और लीचीके बगीचे, रङ्ग-विरङ्गे युगल-सरकारके नामोंका उच्चारण करके चहकने वाले पक्षी, वहाँके सरल और कोमल प्रकृतिके भोले भाले निवासी

सबके-सब मनोहर हैं। श्रीस्वामी कोकिलजीका हृदय विदेह-नगरीके दर्शनसे अत्यन्त प्रफुल्लित होगया। वे वहाँ स्नान, दर्शन, ध्यान, स्मरण, विचरण आदिका आनन्द लेते रहे। जब वे श्रीसीतामढ़ीमें निवास कर रहे थे तो एक बड़ा ही आनन्दप्रद अनुभव हुआ। श्रीस्वामीजी मन्दिरमें दर्शन करने गये। दर्शन करनेके पश्चात् उन्हें ऐसा दीखने लगा कि विदेहराज श्रीजनक और माता श्रीसुनयनाजी गोदमें अपनी ललित-लड़ैती लाड़िली पुत्रीको लेकर यज्ञभूमिसे लौट रही हैं। गोदमें सद्योजाता भूमिनन्दिनी हैं। हैं ! यह क्या !! वर्षा होने लगी ! महारानी सुनयना और महाराज श्रीजनक नन्हीं-सी शिशुमूर्तिको गोदमें लिये एक अजानिवासमें प्रवेश कर गये। यज्ञमें समागत ऋषि-महर्षि, प्रजा-परिजनकी भीड़ आ जानेसे दोनों महलमें आगये। सब लोग दर्शनके लिये अत्यन्त उत्सुक होगये। माता श्रीसुनयना अपनी गोदमें श्रीभूमिनन्दिनीको छिपाये हुए हैं कि इस शिरीषकुसुम-सुकुमार सद्योजाता शिशुको कहीं किसीकी नजर न लग जाय। वे किसीको भी दर्शन नहीं करा रही हैं। श्रीकोकिलस्वामी एक ओर चुपचाप खड़े हैं। जब भीड़ छँट गयी तब सहचरीरूपमें कोकिलस्वामीने सखियोंसे, सुनयनामैयासे बड़ी आरजू-मिन्नतकी; परन्तु उस समय सुनयनामैयाकी ममता इतनी प्रबल हो रही थी कि उन्होंने स्वीकार नहीं किया। फिर कोकिल सहचरी अञ्जलिमें पुष्प लेकर प्रार्थना गीत गाने लगीं।

जुग जुग जिए तेरी बेटड़ी सुनयना रानी।
पार्थिवी प्यारी तेरे घरमें प्रगट भई श्रीवेदवती वेद बखानी ॥
अचल सुहाग भाग जस-भाजन सुखद सीय विज्ञानी।
जेहिं पद-कमल सेव मन-वच-क्रम उमा रमा ब्रह्माणी ॥
मुखड़ो दिखाय वैदेही कुंवरिको उन्मत सुख मस्तानी।
जावाँ कुर्बान श्रीजानकीचन्द्र जानी पै गरीब श्रीखण्डि सहदानी ॥

गरीब श्रीखण्डिदासी अर्थात् श्रीकोकिलसहचरीकी कोकिलके समान स्वरमें की हुई करुण सङ्गीतमयी प्रार्थना, रोमाञ्च, स्वरभङ्ग, वैवर्ण्य, तन्मयता आदि देखकर सारा रनिवास आश्चर्यचकित हो गया। ऐसा सनेह, ऐसी तन्मयता, ऐसी करुणा और कहाँ देखनेको मिल सकती है। महाराज श्रीविदेहका ध्यान भी भङ्ग हुआ। स्वयं उठकर आये। सुनयनामैयाको आज्ञा दी कि गरीबश्रीखण्डिदासीको लालीका दर्शन करा दो। माता सुनयना बड़े प्रेमसे, ममतासे कमलकी पंखुड़ियोंसे भी कोमल अपनी लाड़लीको गोदमें लेकर गरीबश्रीखण्डिदासीको दर्शन कराने लगीं। कोकिलसहचरीका हृदय स्नेह-सुधासे भर गया, आँखें उमड़ आयीं। उत्सुकता इतनी बढ़ी कि माता सुनयनाने झट उठाकर अपनी लालीको उनकी गोदमें दे दिया और बोली—'मेरी सुकुमार लालीको सम्हालकर रक्खो। कहीं इसके मृदुल-मृदुल छविछलकते अङ्गपर किसीकी आँखकी छाया न पड़ जाय!' गरीब श्रीखण्डि-

दासी आनन्दमग्न होकर श्रीसाकेतविहारिणी सर्वेश्वर हृदयेश्वरी सतीगुरु अपनी नित्य स्वामिनीको शिशुरूपमें गोदमें लेकर निर्निमेष निहार-निहारकर आशीर्वाद देने लगीं।

श्रीभूनन्दिनी सदा अजर अमर होवें झूलें हिंडोरे मझारी ॥
कोटि कल्प लगि कुशल मनावां यही मैं मनसा धारी।
उमा रमा शचि सावित्रीदेवी सरस्वती सत वारी ॥
नैनपुतरि इव बेटी वैदेहिकी करन सदा रखवारी।
सुख सौभाग्य दिनोंदिन दूनों गरीबश्रीखण्डि बलिहारी ॥

भक्तकोकिलजी निष्काम भावमें अनन्य निष्ठा रखते थे। अपने इष्टदेवसे उन्होंने कभी कुछ नहीं माँगा। वे सदा सर्वदा अपने इष्टदेवको आशीर्वाद ही देते थे। वे अपने सत्सङ्गियोंसे बार-बार कहा करते थे—'कुछ भी पानेके लिये भजन मत करो; यहाँ तककि उनका कृपाप्रसादभी मत चाहो। यदि दानके लिये भजन करोगे तो प्रियतमके सम्मुख जानेमें शर्मिन्दा होना पड़ेगा। उनके जीवनमें यह दिव्य भाव सर्वत्र देखनेमें आता है।

भक्तकोकिलजी लगभग एक महीने श्रीजनकपुरी एवं श्रीसीतामढ़ीमें रहे। जहाँ कहीं श्रीजनकनन्दिनीका नाम पुराने सरकारी कागजोंमें मिल जाता उसको प्रणाम करते, उठाते, प्रेमसे चूमते और सिरपर धारण

करते। हमेशा भावमें मग्न रहकर श्रीअवधेश्वर-हृदयेश्वरीकी बाल-लीलाओंका चिन्तन करते—

सिय छवि प्यारी लागे सुषमा सलौनी।

कर-पल्लव पद गहि मुख मेलत पलना लड़ेती झूलै लोनी ॥
शुक सारिका मयूर कोयलगन बोलनि सुनि किलकोंनी।
उझकि उझकि रहिजाति स्वामिनी तब थकि मृदु सुर रोनी॥
मातु उछंग गोय फनि मनि ज्यौं बाल-केलि दरसोनी।
कबहुँ निरखि ससि-किरन अजिरबर चरनि घुटुरुवन गौनी ॥
कबहुँ मातु पय प्याय लाय उर गाय गाय गुनभौनी।
मैथिलि बाल सदाँ जिउ जगमें न्हातनबार खिसौनी ॥
मुखससिकिरनि सुधा छबि पूरत पियत दृगन भर दौनी।
सुक्ल पक्ष ससिकला बढ़त ज्यौं त्यौं नित नव छवि होनी ॥
उरमिलि माण्डवि श्रुतकीरति बहिना सङ्गमिलि केलि करौनी।
पय पयोधि मिथिला कमला सी प्रगटीवैदेही बालिका क्षौनी ॥
जनकराज महाराज पितावर कीरति विमल भिगौनी।
श्रीनिमिवंश उजागरि नागरि सिधिदेवी पदरज धौनी ॥
गूंगे गुड़ ज्यों स्वादु सराहत गरीब श्रीखण्डि धरमौनी।
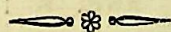
सत्संगका प्रारम्भ

ऊँचे-से-ऊँचा वेदान्त और गाढ़-से-गाढ़ प्रेमकी बातें सोची और कही जा सकती हैं; परन्तु व्यावहारिक जीवनमें उनका उतरना बहुत ही कठिन पड़ता है। उनकी सत्यतामें कोई सन्देह नहीं है, परन्तु जीवन भी एक सत्य है। इसकी ओरसे भी आँख बन्द नहीं की जा सकती। जो व्यक्ति अपने पारमार्थिक जीवनका निर्माण करना चाहते हैं, उनके लिये केवल दो ही बातें करनेकी हैं—सत्संग और भजन। इन्हींके द्वारा बुद्धि और मनके दोष दूर होते हैं। साधारण व्यक्ति भजन तो एकान्तमें बैठकर कर लेते हैं, परन्तु सत्सङ्गकी प्राप्ति होना उनके लिये भी कठिन है। सत्सङ्ग मिलना भगवान्‌की एक विशेष कृपा है। सन्तको पहिचाने बिना, उसपर श्रद्धा किये बिना सत्सङ्ग नहीं मिल सकता। यही पहिचानना और श्रद्धाका होना तो भगवान्‌की कृपाका अवतरण है। सत्सङ्गका आनन्द ब्रह्मानन्द और प्रेमानन्दसे भी बढ़कर है, क्योंकि यह दोनोंका ही उद्‌गमस्थान है। सत्सङ्ग एक ऐसा मानसरोवर है, जिससे सभी प्रकारकी आनन्द धारायें ब्रह्मपुत्रा, सिन्धु, सरयू, यमुना, गङ्गा आदि निकलती हैं। सत्सङ्ग ऐसी चिन्तामणि है, जो सम्पत्ति (प्रेम), प्रकाश (ज्ञान), ऐश्वर्यों (लीला) की जननी है। सत्सङ्ग कभी व्यर्थ नहीं जाता। मीरपुरके दरबारमें सदासे ही सत्सङ्गमें

बैठकर आपसमें भगवच्चर्चा करनेकी पद्धति चली आ रही थी। परन्तु वह भक्तकोकिलजीको एकान्त भजनसे खींच लानेके लिये एक भगवत्प्रेरणा—पूर्वयोजना थी। सन्तके बिना सत्संग कैसा? लोगोंके हृदयमें जो अभाव खटकता था, उसके पूर्ण होनेका अवसर आया। लोगोंके हृदयमें भगवत्प्रेरणा हुई। उन्होंने कोकिलसाईंसे प्रार्थना की कि आप दिन-रात तो अपने प्रियतम प्रभुके ध्यान, भजन, स्मरणमें लगे ही रहते हैं, थोड़ा-सा समय कृपा करके सत्संगके लिये भी निकालिये। एकान्तप्रिय भक्तकोकिलजीको पहले तो यह जनसंसर्गकी बात नहीं रुची परन्तु बहुत आग्रह करनेपर उन्होंने कभी-कभी सत्संगके समय ऊपरसे नीचे उतरना स्वीकार किया। पहले-पहल पाँच या छः दिनपर एकबार सत्संगमें आ जाते थे। जिस दिन भक्तकोकिलजी सत्संगमें आजाते सत्सङ्गियोंके आनन्दका पारावार न रहता। भगवद्भक्ति-सम्बन्धी अनोखी-अनोखी बातें सुनकर लोग आश्चर्यके समुद्रमें डूब जाते।

बात असलमें यह है कि सबके हृदयमें थोड़ी-बहुत कोमलता या द्रवता रहती है। संसारके सुख-दुःखके प्रसंगोंमें उसका अनुभव भी होता है; परन्तु उसमें भगवद्रस अथवा भगवद्भावका प्रतिबिम्ब नहीं पड़ता। रस और भावका उल्लास अथवा विकास सच्चे अर्थमें केवल सन्तके ही हृदयमें होता है। जब लोग किसी सन्तके आस-पास बैठते हैं, उनके सम्मुख

होते हैं, तब उन्हींके भावचन्द्रकी छाया सबके हृदय-सरोवरमें पड़ती है जिससे सब आह्लादित और चमत्कृत हो उठते हैं। विचार करके देखा जाय तो जो सत्सङ्गमें आनन्द आता है वह वहाँसे उठनेके बाद नहीं रहता। इससे यह सिद्ध होता है कि वह आनन्द सत्सङ्गियोंका नहीं, सन्तका है। भक्तकोकिलजी जब भक्तचरित्रका निरूपण करने लगते, एक-एक बात मानो प्रत्यक्ष करके दर्शा देते। भक्त श्रीजयदेवजीकी चरितावलीका वर्णन करते समय उनके मनोभावोंका ऐसा चित्रण करते कि गीतगोविन्दके सभी पदोंका समावेश उनमें हो जाता। वे किस मनःस्थिति में, किस भावमें क्या बोल रहे हैं—यह वर्णन करते-करते स्वयं तन्मय हो जाते। सबको देह-गेहकी विस्मृति हो जाती। भगवान् और भक्तके गुण, प्रभाव, लीला एवं प्रेमके रससे सराबोर हो जाते। सत्सङ्गी और उनकी प्रीति दोनों ही दिनोंदिन बढ़ने लगी। उनके हृदयका उत्साह, भोली-भाली श्रद्धा, भक्तचरित्रमें प्रीति देखकर भक्तकोकिलजी प्रतिदिन ही सत्सङ्गमें आने लगे और भक्त नरसी मेहता, गोस्वामी रूप-सनातन आदि प्रेमी भक्तोंके चरित्रकी कथा होने लगी। एक एक भक्तकी कथा दस-दस, पन्द्रह-पन्द्रह दिनतक चलती रहती। मीरपुरके घर-घरमें, जन-जनमें सोया आनन्द जाग उठा। घर-घरमें श्रीठाकुरपूजा और नाम-ध्वनि व्याप्त हो गयी। दस बजेके लगभग सत्सङ्ग जमता और लोगोंको रात बीतनेकी

याद तब आती जब प्रातःकाल गाँवकी स्त्रियाँ उठकर चक्की पीसने लगतीं थीं और एक भिन्न स्वरमें राग अलापना शुरू करतीं ।

द्वारका-यात्रा

प्रेम और काममें बहुत ही सूक्ष्म अन्तर है । अपने सुखकी इच्छा काम है । प्रियतमको सुख पहुँचानेकी लालसा में अपने आपको बलिदान कर देना और उनको मालूम तक न होने देना—यह प्रेमका एक छोटा-सा लक्षण है । छोटा-सा इसलिये कि प्रेम अनन्त है, अनिर्वचनीय है । उसको किसी शब्द या वाक्यके घेरेमें बाँधकर नहीं रखा जा सकता । प्रेम नम्रता है तो उद्दण्डता भी है, त्याग है तो ग्रहण भी, मनाना है तो मान करना भी है । इस अनन्त प्रेमका एक बहुत ही ऊँचा निखरा हुआ भाव है प्रियतमसे कुछ न चाहना । मैं उनसे उनको चाहता हूँ—इस भावको भी न रखना, वे मुझे अपनेको दें, अपनी प्रीति मुझे दें, उनको हाथ उठाकर मेरे लिये कुछ देना पड़े, मेरी इच्छा पूर्तिके लिये, तृप्तिके लिये उनको तकलीफ उठानी पड़े—इसकी क्या जरूरत है !

श्रीभक्तकोकिलजीके मनमें अपने प्रियतम प्रभुके सम्मुख जानेमें भी बड़ा संकोच होता था ! फिर वे मुझे अपनी प्रीति दें, मेरी प्रीतिके वश होकर कुछ

मेरे मनकी भी करें, जो सहज सुखस्वरूप हैं वे मेरी किसी क्रिया या भावकी ओर अपनी नजर घुमाकर देखनेकी तकलीफ उठावें—इसकी भी कोई आवश्यकता नहीं। वे अपने आनन्दमें मग्न रहें, कलोल करते रहें। मेरे कारण उनके सहज सुख-प्रवाहमें कोई विघ्न न पड़े। ऐसा ऊँचा भाव होनेपर भी मनमें प्रीतिकी अभिलाषा तो थी ही; क्योंकि प्रेमकी कोई इति-परमिति नहीं है। यह तो ऐसी प्यास है जो दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती जाती है। प्रेमका स्वरूपही है अतृप्ति, प्यास और वह कहीं-न-कहींसे अपनी खुराक ढूँढ़ निकालती है। प्रेमका धनी कौन है? प्रेमी! प्रियतम तो प्रेमका भूखा है। इसलिये प्रेमकी प्राप्ति प्रियतमसे नहीं, प्रेमीसे होती है। इसीसे हम देखते हैं कि श्रीभक्तकोकिलजी पहले तो द्वारिकामें प्रेममूर्ति श्रीरुक्मिणीजीके पास जाते हैं और बादमें परम प्रेमस्वरूपा श्रीकृष्णचन्द्र-आह्लादिनी वृन्दावनेश्वरी श्री श्रीजूकी शरणमें।

द्वारका-यात्रामें भक्तकोकिलजीके साथ केवल एक सेवक था। गोमती स्नान, समुद्र स्नान, द्वारका-धीशका दर्शन आदि करके वे अधिकांश एकान्तमें समुद्रके तटपर श्रीरुक्मिणीजीके प्राचीन मन्दिरमें ही रहते। श्रीवैदर्भीका एक-एक भाव स्मरण करके तन्मय होते रहते। श्रीविदर्भनन्दिनी अपने प्रियतम श्रीकृष्णकी

प्राप्तिके लिये किस प्रकार उत्सुक रहती थी. कुल-शील, मान, मर्यादा आदिका फन्दा तोड़कर किस प्रकार उन्होंने ब्राह्मणके हाथ अपना प्रणय-निमन्त्रण भेजा था, किस प्रकार वे अपने प्रियतमको लाड़ लड़ाती थीं—इन सब भावोंका स्मरण करते-करते जब श्रीकोकिल स्वामीको यह भाव होता कि आज दुर्वासाके शापके कारण वही श्रीविदर्भराजकुमारी नगरसे बाहर महलकी दासियोंकी चहल-पहलसे दूर, सुनसान एकान्तमें जहाँ समुद्रके हाहाकारके सिवा पक्षियोंकी चीं-चीं तक सुनायी नहीं पड़ती, अपने प्रियतम प्रभुसे बिछुड़ी रातके समय चक्रवाकीके समान विरह-ज्वरसे जीर्ण, व्याकुलताके हिमसे आक्रान्त, कमलिनीके समान मुरझायी हुई अपने सूने जीवनके क्षणको कल्पके समान काट रही हैं। श्रीकोकिलस्वामीको श्रीविदर्भनन्दिनीके साथ ही श्रीविदेहनन्दिनीके उस जीवनका स्मरण हो आता जो उन्होंने भगवान् श्रीरामसे अलग महर्षि वाल्मीकिके आश्रमपर दहकती हुई विरहकी आगमें व्याकुलताकी जलनसे जलते हुए, किन्तु कुन्दनकी तरह निखरते हुए जीवनको तड़प-तड़पकर व्यतीत किया था। इस भाव-सामान्यके कारण श्रीभक्तकोकिलजी कभी-कभी तो आठ-आठ घंटे तक भावमें डूबे ही रहते। बाहरकी किञ्चित् भी सुधि नहीं आती। कभी कभी श्रीविदर्भनन्दनीको अन्यमनस्क करनेके लिये गरीबिश्रीखण्डदासीके रूपमें अनेकों प्रकारके खेल दिखाते और उनकी विरह-यन्त्रणाको

किंचित् कम करनेका प्रयास करते । कभी-कभी ऐसा भाव भी आ जाता कि आवैदर्भी और द्वारकाधीश्वर एक ही हैं—मिले हुए ही हैं । केवल बाहर-बाहर दुर्वासाजीके शापकी मर्यादा रखनेके लिये अलग-अलग रहनेका स्वांग कर रहे हैं ।

कोई नया यात्री बगदादसे वृन्दावनकी यात्रा करे। रास्तेमें उसको बहुत-सी नयी चीजें दिखायी पड़ेंगी । कइयोंको देखकर आश्चर्यचकित हो जायगा—अरे ? यहतो बड़ा चमत्कार है! परन्तु यदि कोई रोजही उस रास्तेसे आता जाता रहे तो फिर वह चमत्कार नहीं मालूम पड़ेगा । एक स्वाभाविक बात हो जायगी । जब कोई साधक संसारसे भगवान्की ओर यात्रा करता है तब बीच-बीचमें ऐसी झाँकियाँ झलक जाती हैं, ऐसी-ऐसी ज्योतियाँ जगमगा उठती हैं,ऐसी-ऐसी घटनायें धटित हो जाती हैं; जिनको देख-सुनकर साधक भी चकित-स्तम्भित हो जाता है । संसारी और विमुख लोग तो वैसी बातोंपर सुगमतासे विश्वास भी नहीं करते हैं । परन्तु ऐसा होता अवश्य है । अबतक प्रत्येक अन्तर्मुख और ऊर्ध्वगामी होनेवाले साधकका यही अनुभव रहा है । यह चमत्कार अथवा सिद्धियाँ कुछ तो बहुत लुभावनी होती हैं और कुछ भयानक । यह दोनों विघ्न हैं और भगवत्कृपापात्र भक्तके जीवनमें प्रायः नहींके बराबर होते हैं । होते भी हैं तो भक्तपर उनका कोई प्रभाव नहीं

पड़ता । भक्तिमार्गमें तो सिद्धि अथवा चमत्कार वही कहने योग्य है जिस वस्तुसे, व्यक्तिसे, घटनासे, तथा भावसे भगवान्के प्रति विश्वास, स्मरण और प्रेमकी वृद्धि हो। भक्तकी अन्तर्मुखता बढ़नेपर प्रायः ही ऐसे चमत्कार दीखने लगते हैं ।

श्रीभक्तकोकिलजीके द्वारकामें निवास करते समय दो दिव्य घटनायें घटित हुईं । एक दिन श्रीभक्तकोकिलजी समुद्र तटपर सुनसानमें स्थित श्रीवैदर्भीके मन्दिरमें भावमग्न होकर श्रीकृष्णप्रिया पट्टमहिषी श्रीरुक्मिणी रानीसे इस प्रकार प्रार्थना कर रहे थे—"जगदाधार, परमसत्य भगवान् श्रीरामचन्द्रके हृदयमें सदा सर्वदा सतीगुरु परमहंस स्वामिनी विरहिणी श्रीवेदवतीके प्रति सत्य और अविचल प्रेम बना रहे और उनके नाम, रूप एवं स्नेहकी छटा छिटकी रहे । मैं अबोध बालिका हूँ । उनके सुन्दर सुहागभरे प्रफुल्लित मुखमण्डलसे युक्त श्रीविग्रहको अनुक्षण देखती रहूँ । मेरे तन, मन, वचन, प्राण, आत्मा एवं रोम-रोममें शुद्ध सात्त्विक स्नेह हो । हे स्वामिनी, मुझे कृपा कर आप यही दिव्य सिद्धि दीजिये । ऐसी ही श्रुति, मति, मन, बुद्धि प्रदान कीजिये कि उन्हींके सहारे मैं प्रसन्नतासे जिऊँ और उन्हींके सहारे मरूँ । यह बालिका गरीब श्रीखण्डिदासी बस इतना ही चाहती है कि अनन्त काल तक मैं श्रीवैदेही देवीकी उस वृन्दावल्लीकी छायामें जो उनके विरहके भावसे सराबोर

है-डूबी रहूँ । हे महालक्ष्मी ! आप वह रसभरी प्रीति, वह श्रुति, मति, गति मुझे प्रदान करो जिससे सुन्दरी सुहागिनी शुभलक्षण सद्गुरु स्वामिनी श्रीमैथिलीका विस्मरण मुझे कभी न हो । बस, मैं एकमात्र यही दिव्य सिद्धि चाहती हूँ ।" उसी समय एक दिव्य ब्राह्मण आया । उसने कहा—"तुम्हारी इच्छा पूर्ण हुई"—इतना कहकर वह अन्तर्धान हो गये । श्रीभक्त-कोकिलजीकी इच्छा पूर्ण हुई परन्तु भक्तोंकी भाषामें इच्छा पूर्ण होनेका अर्थ उसका और भी अधिकाधिक बढ़ना है ।

वैसे तो जहाँ भगवान् हैं वहीं उनका धाम भी है । वे सब जगह हैं इसलिये सब उनके धाम ही हैं; परन्तु भक्त लोग श्रीगुरु एवं शास्त्रके आदेशानुसार एक स्थानमें भगवद्धाम होनेकी भावना करते हैं और भक्तवत्सल प्रभु उनकी भावना पूर्ण भी करते हैं । यह कोई अनहोनी अथवा आश्चर्यकी बात नहीं है, क्योंकि धामकी व्यापकता, प्रभुकी भक्तवत्सलता और भक्तके सुदृढ़ भावोंको देखते हुए कुछ भी असम्भव नहीं है । श्रीभक्तकोकिलजी एक दिन अपने एकमात्र सेवकके साथ समुद्रतटपर विचरण कर रहे थे । भक्तकोकिलजीका चलना फिरना बैठना एक विशेष भावके अनुसार ही होता था । वे समुद्रकी ओर देखने लगे । उसका विशाल वक्षःस्थल, उत्ताल तरङ्ग

और उसके भीतर अगाध गम्भीरता। ऊपरकी चञ्चलता तो गम्भीरताको छिपानेके लिये एक झीना-सा आवरण है। परन्तु इस गम्भीरतापर परदा डालनेकी आवश्यकता ही क्या है? आवश्यकता है। इसी गम्भीरताके भीतर द्वारकाधीश्वरश्रीकृष्ण उनकी दिव्य नगरी द्वारका और उनके प्यारे प्रेमीगण निवास करते हैं। अच्छा; तो यह ऊपर से चञ्चल और भीतरसे गम्भीर समुद्र नहीं है। यह तो भगवान्का धाम है। श्रीलक्ष्मीकी जन्मभूमि, क्रीडा-स्थली और विहारभूमि है। बस, भक्तकोकिलजीको समुद्रका दीखना बंद होगया। भगवद्धाम दीखने लगा। वे भावावेश में समतल भूमिके समान ही चलते गये। सेवक वेचारा ठिठका हुआ-सा तटपर ही खड़ा रह गया, व्याकुल और मूर्छित होकर। श्रीभक्तकोकिलजीने दो-तीन घण्टे तक समुद्रमें रहकर क्या देखा, क्या अनुभव किया—यह बात उनके सिवा और कोई नहीं जानता। उन्होंने अपने एक प्रिय व्यक्तिको केवल इतना ही बताया था कि वहाँ दिव्य द्वारका का दर्शन हुआ। जब वे समुद्रसे बाहर निकले, अदृश्य से दृश्य हुए तब सेवकने केवल इतना ही देखा कि उनके कपड़े भींगे हुए नहीं हैं।

प्रेमियोंका समाज और उनका लीला-चिन्तन

जब वसन्तऋतु आती है भौंर भौंर आमके बौर अपना सौरभ दिग्-दिगन्तमें फैलाते हैं, फूलोंकी कलियाँ विकसित होती हैं, सारी प्रकृतिमें अपूर्व रस, मादक सुगन्ध फैल जाती है—तब वह किसीके छिपाये छिपती नहीं है। न भँवरोंको मधुपानका निमन्त्रण देना पड़ता है और न तो कोयलको 'कुहू-कुहू' के सङ्गीत गानेका। सब सुयोग अपने आप ही एक हो जाते हैं। मिठले बावलसाईं द्वारकासे लौटकर मीरपुर आ गये। उनके हृदयका प्याला प्रेमसे लबालब भरकर आँखोंके रास्ते छलक रहा था। उनके आसपास आनेवाले, उनका दर्शन करनेवाले एक ऐसा सुख, एक ऐसा स्वाद, एक ऐसा नशा अनुभव करते कि उन्हें छोड़कर हटना ही नहीं चाहते। जैसे खिले हुए कमलके आसपास भौंरे मँडराते रहते हैं, इसी प्रकार झुण्डके झुण्ड सत्सङ्गी श्रीभक्तकोकिलजीके चारो ओर मँडराने लगे।

भगवद्भक्ति भी गुप्त रखने की वस्तु है, जैसे कोई अमूल्य निधि हो। परन्तु इसे गुप्त कब तक रखा जा सकता है—जबतक अपनी याद हो। जब भक्तके हृदयसमुद्रमें भावावेशका ज्वार आता है तब उसकी लहरियाँ अपनेआप ही उछल उछलकर

तटभूमिको प्लावित करने लगती हैं। यह भी एक भगवान्‌की मौज है, यह भी उनका एक मनोरञ्जन है। यदि भक्तोंके द्वारा भगवान् अपनी भक्ति-सुधा-सीकरकी वर्षा न करते, उसके प्रेमके प्यालेको कभी कभी छलका न देते तो जगतमें फँसे हुए जीवोंको भक्तिरसके नमूनेका भी पता नहीं चलता। भक्तिके आनन्दमें भक्तका हृदय फट न जाय इसकेलिये भी उसका बाहर प्रवाहित होना आवश्यक रहता है और स्वयं भगवान् ही इसका ध्यान रखते हैं। श्रीभक्तकोकिलजीके भक्तिमय सङ्गीतकी 'कुहू' ध्वनिसे मीरपुर और पास पड़ोसके बहुत दूरतकके गाँवोंमें रहनेवाले सज्जनोंका हृदय मुखरित हो उठा। घर-घरमें ठाकुरकी पूजा, जन-जनके मुखमें नाम-ध्वनि। जिन लोगोंने कभी भगवद्‌गुणानुवाद, भगवन्नामतक नहीं सुना था, वे ही अब अश्रुपूरित नेत्र, पुलकावलीमण्डित शरीर और गद्‌गद हृदयसे भगवन्नामकी ध्वनि करने लगे।

नित्य सत्सङ्ग, नाम-ध्वनि और भजन-स्मरणके सिवा एक विशेष कार्यक्रम भी था। गुरुवारके दिन तो जैसे आनन्दकी बाढ़ ही आ जाती। सभी प्रेमी भक्ति-रसके आनन्दमें छक जाते, प्रेमानन्दमें लोट-पोट होने लगते। उस दिन सब लोग एकान्त अनुरागमें अलग अलग बैठते और श्रीकोकिल साईंकी कृपासे अपने-अपने भावके अनुसार प्रभुकी अद्भुत लीलाओंका

अनुभव करते। कभी करुणामें, कभी हास्यमें, कभी शृङ्गारमें, कभी शान्तमें। कभी-कभी दस-पाँच इकट्ठे होकर अलग बैठ जाते और भगवान्‌की लीला-कथाका आनन्द लेते। कभी दरबारमें, कभी श्रीरामबागमें। कभी मीरपुरसे बाहर जाते तो वहाँ भी ऐसा ही करते। सब लोग अलग अलग लीला-चर्चा एवं लीला-स्मरण करनेके अनन्तर एकान्तमें विराजमान श्रीभक्तकोकिलजीके पास आकर बैठ जाते और अपने-अपने अनुभव सुनाते। सब सत्सङ्गी सबके अनुभव सुनकर विशेष आनन्दमें मग्न हो जाते। रात्रिके समय सबलोग मिलजुलकर प्रेम और आनन्दमें मग्न होकर बड़े ऊँचे स्वरसे भगवन्नामकी ध्वनि करते; जिससे कई मीलतक वह प्रान्त गूँज उठता।

आज गुरुवार है। श्रीभक्तकोकिलजी मीरपुरके श्रीरामबागमें जो आम, अंजीर, कचनार शहतूत, पलाश आदि वृक्षोंसे हराभरा, फूलोंसे रङ्ग-विरङ्गा और फलोंसे झुका हुआ है; गुलाब, रायवेल, सोनजुही, चमेली और कुन्दोंके सौन्दर्य एवं सौरभसे मण्डित एवं भ्रमरोंके द्वारा मुखरित है, एक सघन सुन्दर साँवले तमाल वृक्षकी छायामें, दूसरे प्रेमी सत्सङ्गी छोटे-छोटे झुंडके रूप में इकट्ठे होकर आपसमें प्रभुकी लीला-कथा कर रहे हैं। किसीके नेत्रोंसे प्रेमाश्रुओंकी झड़ी लग रही है, कोई मधुर-मधुर चीत्कार कर रहे हैं, कोई व्याकुलतासे पृथ्वीपर लोट

रहा है, कोई प्रलाप कर रहा है, कोई हाराम! हाराम! कोई अचेत पड़ा है, कोई अपने भावराज्यमें मग्न होकर शरीरकी सुधि भूल रहा है। मधुर - मिलनका प्रसङ्ग आनेपर हर्षोल्लाससे गद्गद होकर सभी "जय - जय" की ध्वनि करने लगे।

सायंकालका समय है, एक ऊँचे स्थानपर सुन्दर आसनपर भक्तोंके भगवान् विराजमान हैं। भगवान्के पास ही एक ओर श्रीभक्तकोकिलजी विराजमान हैं और पास ही एक गुलदस्ता और तुलसीका गमला रक्खा हुआ है। श्रीभक्तकोकिलजी उन्हींको अपने दृष्टि-विन्दुका केन्द्र बनाकर भगवान्की अलौकिक लीलाओंका दर्शनकर आनन्द-मग्न हो रहे हैं। चारों ओर सत्सङ्गी-जन बैठे हुए हैं। प्रत्येक गुरुबारके समान ही सत्सङ्गियोंने अपने आजके भाव, अनुभव सुनाना प्रारम्भ किया।

यज्ञोपवीतमें श्रीकृष्णका मातृ-स्नेह

एक प्रेमी—(प्रेमसे प्रणाम कर) मेरे प्यारे झिठले बावल साईं! मैं सन्त सद्गुरुदेवके चरणकमलोंमें प्रणाम करके बाहरी संसारको छोड़कर अपने हृदयके मन्दिरमें गया। अरे! यह तो मथुराका राजमहल है। बड़ी धूम-धाम मच रही है। बाजे बज रहे हैं। स्त्रियाँ गीत गा रही है। ब्राह्मण मन्त्रोच्चारण कर रहे हैं। उग्रसेन

आदि बड़े-बड़े यदुबंशी भी पधारे हुए हैं। आज क्या बात है ? ओहो ! आनन्दकन्द श्रीव्रजचन्द्र प्यारेका आज यज्ञोपवीत संस्कार है। यह देवकीमैया बैठी हैं, यह रोहिणी मैया हैं। रनिवासमें कैसा उत्साह, कैसा हर्षोल्लास खेल रहा है ? वे हैं ब्रह्मचारीवेशमें प्यारे श्रीकृष्णकन्हैया ! पीलीलँगोटी, पीली कछौटी, पीला जनेऊ, हाथमें भिक्षाकी पीली झोली, साँवले सलोने अङ्गपर पीलेपनकी भी क्या अद्भुत छटा है ! ब्राह्मणोंने कहा— "बेटा ! अपनी मैयासे भिक्षा ले आओ।" श्यामसुन्दर तो केवल यशोदामैयाको मैयाके रूपमें जानते हैं। सभीत मृगशिशुके समान उनके नेत्र सब ओर दौड़ गये। परन्तु हाय ! हाय ! प्राणप्यारे, नन्ददुलारे, यशोदामैयाके नयन-तारे लालनको अपनी स्नेहमयी मैया तो कहीं दीखती ही नहीं। मैयाके लाड़ले शिशुका नवनीतसे भी कोमल हृदय पिघल गया। भरी सभामें "मैया, मैया" कहकर पुकार उठे। "मैया, तू कहाँ छिप गयी ? मैया तेरे मनमें कितनी लालसा, कितनी अभिलाषा थी कि मैं अपने लल्लाके जनेऊ कराऊँगी। मेरे लाला जब पीली लँगोटी पहनकर, ब्रह्मचारी वेशमें पहले-पहल मेरे सामने भिक्षाकी झोली फैलावेगा तो मैं उसे रत्नोंसे भर दूँगी। मैं आजसे पढ़नेकेलिये गुरुकुलको चला जाऊँगा। भिक्षा न सही, मुझे अपने चरणोंकी धूलि दे दे। मैया !! क्या तू मुझ परदेशी बालकको गोदीमें न लेगी ? कितने दिनोंसे

तूने मुझे कलेऊ नहीं कराया । माखन मिश्री नहीं खिलाया !!" ऐसा कहते कहते प्यारे मोहनके नेत्रोंसे आँसुओंकी झड़ी लग गयी । हाथसे झोली और दण्ड गिर गया । मैया देवकीने दौड़कर गोदमें ले लिया फिरभी प्यारे मोहनके नेत्रोंसे आँसूओं के मोती ढुलकते ही रहे । (प्यारे कन्हैयाकी यह व्याकुलता देख सुनकर सारी सभा रोने लगती है) । मेरे धैर्यका बाँध टूट गया । रोते-रोते अचेत हो गया । उसी समय कृपा-निधान श्रीस्वामीजी प्रकट हो गये और मुझे ढाढ़स बँधाकर कहने लगे कि 'प्यारे कन्हैया, कभी मैयासे अलग होते हैं ? देखो, देखो यह मैया यशोदाकी गोदमें लाला खेल रहा है ।' मैंने देखा, न मथुरा है, न राजमहल, न जनेऊ । लाला तो नंदगाँवमें मैयाकी गोदमें खेल रहा है । मैं हर्षसे विभोर हो उठा ।

नटखट कन्हैया

दूसरा प्रेमी—(श्रद्धासे शीश झुकाकर)—सच्चे बादशाह ! श्रीसद्गुरुदेवका मङ्गल मनाकर मैं ध्यानमें बैठा । देखा कि मैयाके आँगनमें बड़ी चहल-पहल है । व्रजेश्वरी श्रीयशोदा गोवत्स पूजनका उत्सव मना रही हैं । साँवरे सलोने मनमोहन व्रजराजकुमार खिरकसे बछड़ेको लानेके लिये आये । तत्काल ही मैं बछड़ा हो गया । श्यामसुन्दर पकड़कर घसीटते हुए मुझे

मैयाके पास ले आये। कृपानिधान श्रीस्वामीजी पूजन कराने के लिये श्रीगुरुरूपमें पहलेसे ही विराजमान हैं। मैं उछल-कूद रहा था। नटखट कन्हैया प्यारे भी कभी मेरी पीठपर हाथ फेरते, कभी मुझपर चढ़ने लगते। श्रीस्वामीजी बार-बार मना करते—'बेटा! पूजनके समय गोवत्सके ऊपर मत चढ़ो।' श्यामसुन्दर थोड़ी देर के लिते ठिठक जाते—फिर वही चञ्चलता। पूजन पूर्ण होनेपर प्यारे कन्हैयाने मैयासे खिलौने माँग, परन्तु श्रीगुरुदेवके सत्कारमें संलग्न होनेके कारण उन्होंने ध्यान न दिया। फिर तो क्या पूछना! कन्हैयाकी बन आयी। मुझे पकड़कर आलेके पास ले गये और मुझपर चढ़कर खिलौने उतरने लग। एक चञ्चल ग्वालेने जो धीरेसे मुझे सोंटी लगायी मैं खिसक गया और प्यारे कन्हैया आलेमें हाथ चिपटाकर व्याकुलतासे 'माँ, माँ' पुकारने लगे। मैया हक्की-बक्की होकर दौड़ी। सिरसे वस्त्र उतर गया। वेणीसे फूल झरने लग। शीघ्रतासे पहुँचकर लाड़ले कन्हैयाको गोदमें ले लिया और बोली—'ओ मेरे बाप, क्या ऊधम मचा रक्खा है? कहीं हाथ सरक जाता तो! खिलौनेके विना छिनभर भी पेटका पानी नहीं पचता है।' प्यारे कन्हैयाकी आँखोंमें डरके कारण पहलेसे ही आँसू ढुलक रहे थे—और मैयाकी छातीसे चिपट गये। मैं तो वह मधुर मूर्ति, भोली-भाली सूरत देखकर कुर्बान हो गया। (सारा सत्सङ्ग समाज आनन्दमें गद्गद हो गया)।

बटोही श्रीराम

तीसरा प्रेमी—(प्रेमसे नमस्कार कर) श्रीसन्त सद्गुरुदेव! आपके कृपा-प्रसादसे आज मैंने देखा कि वनका ऊबड़-खाबड़ कण्टकाकीर्ण पथ है। सूर्यकी प्रचण्ड किरणोंसे धरती तप रही है। ऐसे बीहड़ जङ्गलमें श्रीअयोध्याके लाड़ले राजकुमार श्रीयुगलधनी और श्रीलक्ष्मणलाल वनवासी वेशमें तालपत्रके छाते लगाये धीरे-धीरे दुर्गम मार्गसे आगे बढ़ रहे हैं। शरीर स्वेदसे लथपथ, मुरझाई हुई अंगकान्ति और प्याससे अधर, परमकोमलस्वभावा श्रीस्वामिनीजू अपने प्रियतमके मुखारविंद और वनवासी वेशको देखकर अपना दुःख भूल जाती हैं और परम प्रियतम प्राणेश्वरके दुःखसे व्याकुल होने लगती हैं। उनको घबड़ाते देखकर प्रेमपरवश श्रीरामभद्र अनुरागरञ्जित श्रीवचनोंसे आश्वासन देते हुए बोले–'अब क्या, यह रहा कालिन्दी पुलिन! कैसी सुन्दर वृक्ष-पंक्ति है मानो अपने कर-पल्लव हिला-हिलाकर हम लोगोंको प्रेम-निमन्त्रण दे रही है।' (सब रोते हैं)। यह दृश्य देखकर मैं अत्यन्त व्याकुल हो गया और प्रभुसे प्रार्थना करने लगा कि 'हमारे प्यारे साईंके जीवनधन परमप्रियतम श्रीयुगलधनीका कुशल हो, वे सर्वदा सुखी रहें, उनके चरणकमलोंके नीचेकी धरती मखमलसे भी कोमल बन जाय, धूप चाँदनी हो जाय और यह ताती-ताती लू सीरी-सीरी बन जाय,

हरियाली और पुष्पोंकी महकसे श्रीयुगल सुखी हों।' मैंने देखा कि सामने ही एक बरगदका विशाल वृक्ष है। उसकी घनी छायामें कोमल कुसुमोंके आसनपर युगल सरकार आसीन हैं। परस्पर एक दूसरेका पथश्रम मिटानेकेलिये एक दूसरेको पंखा झल रहे हैं। श्रीलक्ष्मणलालजी दूरसे जल लिये आ रहे हैं। एक ओरसे श्रीस्वामीजू सहचरी रूपमें मधुर फलोंकी झोली लिये, प्रेमके नशेमें झूमते हुए आ रहे हैं। श्रीयुगल-धनीका भोजन, पान, आनन्द-कलोल हँसी-खेल देखकर मैं तो आनन्दमत्त होकर 'साईं साईं' कहने लगा। उसी समय श्रीस्वामीजी कोकिलकण्ठसे मधुर-मधुर सङ्गीतका गान करने लगे। उनके प्रभावसे आकाशमें साँवले-साँवले सजल मेघ घिर आये और गुलाबजलके समान नन्हीं-नन्हीं फुहियाँ बरसाने लगे। मोर कूज-कूजकर नृत्य करने लगे। 'जय हो! जय हो!!' की ध्वनिसे वह बीहड़ वन गूँज उठा।

प्रेमोन्मादिनी श्रीयशोदा

चौथा प्रेमी—(जय जय मनाकर) मेरे निर्मल धनी! आपके कृपा-प्रसाद की कनी प्राप्त करके मेरी तो खूब बनी। मेरा मन संसारसे ऊपर उठकर नन्दगाँवकी गलियोंमें घूमने लगा, परन्तु वहाँ वह हर्षकी हरियाली नहीं थी जो प्यारे वनमालीकी चाल-

मराली देखकर व्रजवासियोंके हृदयोंमें होती थी। मैं धीरे-धीरे महलके पास पहुँचा। बड़ी सिंहपौरपर प्यारे कन्हैया की पगली मैया यशोदा माखन, मिश्री, पीताम्बर, कटि-काछनीकी नन्हीं-सी पोटली बगलमें छिपाये छटपटा रही हैं और देवरानी जिठानी, दासियाँ पकड़कर पूछ रही हैं–'इस दोपहरीमें कहाँ?' 'मेरा कन्हैया जहाँ!' 'बावरी मैया! वे तो मथुरा में हैं, कहीं यहीं थोड़े ही हैं।'

मैया–'हाँ, हाँ, मैं वहीं तो जा रही हूँ। मैं वहाँ जाकर महारानी देवकीसे आरजूमिन्नत करके उनकी दासी बन जाऊँगी। कोई न कोई सेवा करूँगी और कभी न कभी तो प्यारे कन्हैयाके चन्द्रमुखका दर्शन कर ही लिया करूँगी। भोला-भाला लाला मुझे पुकारेगा—'ओ मैयाकी दासी! ओ मैयाकी दासी!! आओ तुम्हें मेरी मैया बुला रही है।' उसके मीठे-मीठे वचन सुनकर मेरे प्राण ठण्डे हो जायंगे। उसके लिये मेरे प्राण छटपटा रहे हैं। मुझ अन्धीकी वही लकड़ी है। उसके बिना मैं क्या जीना क्या? हाय, हाय! अक्रूर, तू मेरा सहारा ही छीन ले गया।"

मैयाको ऐसा मालूम हुआ मानो वह मथुरामें महारानी देवकीके दरवाजेपर पहुँच गयी है। पुकारने लगी 'महारानीजी! मुझ वृद्धाकी एक विनती मान लो

मुझे अपने महलकी एक दासी बना लो । मैं तुम्हारे लाड़ले लालाके लिये दूध बिलोकर सद् माखन निकालूँगी आटा पीसूँगी, कपड़े धोऊँगी, आप जो कहेंगी सो करूँगी । तुम्हारे लाड़ले अमर हों, तुम्हारा सुहाग अचल हो । मैं तुमसे खानेके लिये भी कुछ नहीं चाहती । जूठन खाकर सुखसे रहूँगी । (सब रोते हैं) बस मैं चाहूँगी तो केवल इतना ही–तुम्हारे प्यारे लालाको महीनेमें एक बार केवल एक बार अपने गलेसे लगा लूँगी, छाती से चिपटा लूँगी । वे तुम्हारे हैं, तुम्हारे रहें । बस, इतनी कृपा करदो महारानी ! और कुछ नहीं चाहिये, मैया अधीर हो गिरने लगी । नंदगाँवकी सिंहपौरपर मैया अधीर होकर गिर ही रही थी कि आसपासकी स्त्रियोंने सम्भाल लिया । रोते-रोते सबकी घिग्घी बँध गयी । सब व्याकुल होकर 'कन्हैया ! कन्हैया !! पुकारने लगे । कुहराम मच गया । मैं भी कन्हैया ! कन्हैया !! चिल्ला उठा । देखा कि मेरे प्यारे बाबुल साईं नन्दबाबाके रूपमें कन्हैयाका हाथ हाथमें लिये भीतर आरहे हैं । आनन्दकी बाढ़ आ गयी । हर्षका कोलाहल मचगया कन्हैया आ गये ! कन्हैया आ गये !!

मैया—"आगया ! आ गया !! कहाँ आ गया ?"

साईंने झट आगे बढ़कर कहा कि यह है तुम्हारी जीवनमूरि । लो, अपने नीलमणिको लेकर प्यारसे, दुलारसे इनके मुखपर एक चुम्बनकी मुहर लगा दो।'

मैयाने—भूखी प्यासी मैयाने आनन्दोन्मत्त होकर झपटके कन्हैयाको अपनी गोदमें उठा लिया। अपने नीलमणिको चूमने लगी। सद्यः-प्रसूता गौके समान कन्हैयाको चाटने लगी। आकाशसे फूल बरसने लगे। 'कन्हैयाकी जय हो! नन्द बाबाकी जय हो!' की मङ्गल ध्वनिसे नन्दगाँव गूँज उठा। मैया युगल-सरकारको हिंडोलेमें बिठाकर झोंटे देने लगी—"युगल सरकारकी जय हो; मिठले बाबुल साईंकी जय हो।"

पुत्र-वियोगिनी श्रीकौशल्या

पाँचवाँ प्रेमी—(साईं को मधुर आशीष देकर) मेरे प्यारे साहिब! मैं साईंका मङ्गल मनाकर एकान्तमें जा बैठा। मनोवृत्ति संसारसे ऊपर उठ गयी, तब मैंने देखा वशिष्ठनन्दिनी श्रीसरयू नदीके तटपर एक छोटी-सी झोपड़ी है। राजमहलके ही उद्यानमें श्रीसरयूकी ओर यह पर्णकुटी बनवाकर श्रीकौशल्या मैया रहती हैं। अपने परम दुलारे, नयनोंके तारे, प्राणोंसे भी प्यारे श्रीरामचन्द्रके वियोगमें अपने बछड़ोंसे, बिछुड़ी गायके समान दुबला पतला शरीर, फटे-पुराने वस्त्र, बिछानेके लिये एक मामूली-सी चटाई। आज महारानी अपने वन-बटोही लालनके कुशल-मङ्गलके लिये तपस्विनी बन रही हैं। उनकी आँखोंमें अपने परम सुकुमार हृदयके सर्वस्व बच्चोंका तपस्वी रूप दीख रहा है। "हा राम! हा जनकनन्दिनी!

हा लाड़ले लक्ष्मण !" कहती हुई क्रन्दन कर रही हैं। उसी समय श्रीसुमित्रादेवी थोड़ेसे कन्द-मूल-फल लेकर आयीं और मैयाको खिलानेका प्रयत्न करने लगीं। श्रीकौशल्या मैया रो-रोकर कहने लगीं—"देखो बहिन, देखो! मेरे साँवरे, सलोने, सुकुमार राजकुमार धूपमें चलनेके कारण पसीने से लथपथ होकर छोटेसे वृक्षकी छायाके सहारे व्याकुल बैठे हैं। मेरे प्यारे रामभद्रके सुकोमल पाँवोंमें काँटे लग गये हैं। मेरी प्यारी वेटी मिथलेशकिशोरी उन्हें कितनी सावधानीसे निकाल रही हैं। शरीर धूलि-धूसरित हो रहा है। आज यह भोर ही से भूखे हैं, प्यासे हैं। इस बीहड़ वनमें जल-भी दुर्लभ, है, फल-फूलकी तो वात ही क्या। देखो, देखो वहन! इनके होंठ सूख रहे हैं। तुम सुनती नहीं हो? माँ माँ पुकारकर मुझे वुला रहे हैं। अब मुझसे नहीं रहा जाता। मैं तो अब अपने प्यारे दुलारे रघुवरके पास जाऊँगी। हाय हाय! तुमने मेरी कोखसे क्यों जन्म लिया? इसीके कारण तो तुम्हें इतने कष्ट उठाने पड़े। बहिन, मैं तो वहाँ जाऊँगी। मैया दौड़कर जाना चाहतीं है और सुमित्राजी समझा बुझाकर पाँव पकड़कर रोकनेकी कोशिश कर रही हैं। (सब रोते हैं) उसी समय श्रीकिशोरीजीका पाला हुआ मृग-शिशु छलाँग भरता हुआ आ पहुँचा और मैयाका पल्ला मुखमें पकड़कर खींचने लगा। मैया ने बड़े उल्लाससे उसे उठा लिया और हृदयसे लगाकर दुलारने लगीं।

मैयाके चेहरेपर कुछ सुखकी एक हलकी सी रेखा मालूम पड़ी, मानो युगल ही मिल गये हों। मृग-शिशुके शीशपर हाथ फेरने लगीं। लगातार छलकते हुए आँसुओंकी झड़ीसे वह मृगशिशु भींग गया। मैयाकी अत्यन्त व्याकुलता देखकर सुमित्रादेवीने कहा-अब हमारा मङ्गलदिवस बहुत समीप है। चौदह वर्षकी अवधिमें दो ही दिन तो बाकी हैं।" श्रीकौशल्यादेवी मानों विरहकी नींदसे जग गयीं-"अच्छा, मेरे प्यारे बच्चे आ रहे हैं? कहाँ हैं? किधर हैं?" इस प्रकार कहती दौड़ती छतपर चढ़ गयीं और अपने भूखे प्यासे नेत्रोंसे दक्षिणकी ओर देखने लगीं—"अरे! इधर तो कहीं नहीं दीखते! कहीं मेरे लाड़ले लाल नीचे तो नहीं आ गये?" उन्मादिनीके समान बड़ी शीघ्रतासे नीचेकी ओर दौड़ीं। विरह-दुर्बलता होनेके कारण गिर गयीं। मेरा रोम-रोम काँप उठा। सम्हालनेके लिये दौड़ा-"मैया ठहरो! मैया ठहरो!" सखियोंने आकर चेत कराया। बोलीं-"मेरे लाड़ले लाल आ गये क्या? मेरे दुलारे राम, मेरी पुत्रवधू और लक्ष्मणके साथ आ गये क्या?"

"हाँ मैया, आ रहे हैं?"

"आ रहे हैं??"

"हाँ मैया आ रहे हैं।" ऐसा सुनकर वनकी ओर दौड़ीं। सारा रनिवाँस दौड़ पड़ा। भावावेशमें मीलों चली गयीं। यह—यह मेरा राम है, यह मेरा

राम है! ऐसा कह कर एक श्याम तमालसे लिपटकर अचेत हो गयीं। उन्हें अचेत अवस्थामें ही उठाकर महलमें लाया गया। उसी समय पुष्पक विमानकी गड़गड़ाहट सुनायी पड़ी, आहट मिली। सुमित्रादेवी उन्हें सचेत करती हुई बोलीं—'दीदी, आ गये! आगये तेरे प्राण प्यारे बच्चे!! आगये हमारे जीवन-सर्वस्व! दीदी, दीदी! देखो!!' मैयाने नेत्र खोला—देखा कि चरणोंपर मस्तक झुका रहे हैं। निर्धनको अपना खोया धन मिल गया, मानो मुर्दा-शरीरमें प्राण आ गये हों। मैयाने अपने लाड़लोंको हृदयसे सटा लिया। "श्रीयुगलसरकारकी जय हो!" "श्रीकौशल्याकिशोर की जय हो!" "श्रीसुमित्रानन्दनकी जय हो!!" जय-जयकी ध्वनिसे महल गूँज उठा। मैंने देखा कि हमारे सन्तसद्गुरु प्यारे साईं श्रीयुगलसरकारको पुष्पहार पहना रहे हैं। फिर मैंने युगलसरकारको भोग लगा कर प्रसाद पाया और प्यारे साईंकी शरणमें आया।

गोलोकविहारीका व्रजागमन

छठवाँ प्रेमी—(जय हो! जय हो!) जुग-जुग जिओ मेरे प्यारे साईं! मधुर स्वामी, क्या सुनाऊँ? मैंने आज बड़ा ही अलौकिक आश्चर्यमय दृश्य देखा। आपके कृपाके राज्यमें विचरण करता हुआ मैं आज श्रीगोलोक धाममें पहुँचा। वहाँ विरजानदीके तटपर

श्रीगोलोकविहारी युगलसरकार गलवहियाँ दे टहल रहे थे और प्रेमसे झूमते हुए दोनों परस्पर एक दूसरेके करकमलों को चूम रहे थे। मैं भी चरणकमलोंके चिह्न देखती पीछे-पीछे चली। युगलसरकार तो 'परस्पर दोउ चकोर दोउ चन्दा' हैं ही, जब दोनों मिल रहे हों, घुल-घुलकर बातें कर रहे हों, नेत्रोंके प्यालोंसे एक-दूसरेके रूपामृतका पान कर रहे हों तब उन्हें इस बातका पता रहे कि हम कहाँ जा रहे हैं, यह भला कैसे सम्भव है? जब श्रीलक्ष्मीनारायणने अपने पार्षदों सहित आकर वन्दनाकी तब पता चला—अरे! यह तो वैकुण्ठ है। परस्पर शिष्टाचार कर आगे बढ़ रहे थे। ब्रह्मलोक गया, शिवलोक गया। आनन्दकन्द श्रीगोलोकविहारी; मधुरश्याम, श्रीकृष्ण एवं उनकी प्राणाधिका नित्य-आराधिका परम प्रेष्ठ श्रीस्वामिनीजू एक दिव्य सत्सङ्गलोकमें आगयीं। वहाँ एक दिव्य उद्यान था जिसमें पाँच रसोंके पँचरंङ्गे फूलोंसे लहलहाते हुए पाँच कुञ्ज थे। इस दिव्य शोभा-पुञ्ज कुञ्जको देखकर युगलसरकार मुग्ध हो गये और अत्यन्त भोलेपनसे सन्तरूप मालिनियोंसे प्रश्न किया—"अरी बड़भागिनी मालिनियो! यह सुन्दर, सुरभि, अद्भुत पुष्प कहाँसे आये हैं? इनकी भीनी-भीनी महक से तो हम लोग भी मस्त हो रहे हैं।" मालिनियाँ बोलीं—"प्यारे प्रभु! यह फूल नहीं हैं? यह तो प्रेमियोंके हृदयके नये-नये भाव जगमगा रहे हैं। उनकी काव्यमय सङ्गीतकी आलाप-पंक्ति ही पुष्पोंपर रेखाके

समान लिखी हुई हैं। बड़े-बड़े सन्त रसिक भ्रमर बन-बनकर उसे पढ़ रहे हैं और गुंजार कर रहे हैं।"

युगलसरकारने पूछा—"वे प्रेमी कहाँ हैं?"

मालिनियोंने कहा—"वे इस समय पृथ्वीपर प्रभु-गुणानुवादके जलसे इन भावमय पुष्पोंको सींच रहेहैं।"

यह सुनकर भोले-भाले प्रियतम उन प्रेमी सन्तोंका दर्शन करनेके लिये अत्यन्त उत्सुक, मुग्ध होगये और व्रज-मण्डलमें आगये। लगे प्रेमियोंको ढूँढ़ने। प्रियतमने जो प्यारी के हृदयकी ओर देखा तो उसमें कुछ प्यास मालूम पड़ी। वैसे तो श्रीप्रियाजूका हृदय प्यास रूप ही है और वह नित्य श्यामामृतका पान करते रहने पर भी बुझती नहीं है, बढ़ती ही जाती है—"प्यारीजूको रूप मानो प्यास ही को रूप है।" तथापि प्रियाजीकी प्यास प्रियतमसे सहन नहीं हुई। श्यामसुन्दर जल लेने श्रीवृन्दावन की ओर दौड़ पड़े। वियोगसे लगी प्यास तो मिलन से बुझती है; परन्तु मिलनमें लगी प्यास कैसे बुझे? वियोग से?

एक तो श्रीवृन्दावन स्वयं ही वन है। भूल ही यहाँका स्वरूप है। दूसरे यहाँकी गलियाँ बड़ी टेढ़ी-मेढ़ी, गोकुलगाँव को पैंड़ो ही न्यारो, तीसरे श्रीश्यामसुन्दर सीधे-सादे भोरे-भारे, चौथे प्रेमके नशे में चूर, पाँचवें श्रीप्रियाजीकी स्मृतिमें छके हुये, अतः नित्य-नूतन मार्गको पहचान न सके। एक वृक्षके नीचे श्रीप्रियाजीके ध्यानमें मग्न हो बैठ गये। यहाँ श्रीप्रियाजी प्रियतमको जाते देख ध्यानमग्न हो गयीं। उसी

समय बरसानेसे श्रीवृषभानुराय और नन्दगाँवसे श्रीनन्दराय बड़े सुन्दर घोड़ोंपर सवार होकर निकले। और दोमिल वनसे होकर अलग-अलग लौटने लगे। इधर श्रीवृषभानुरायने देखा कि एक नन्हीं-सी बालिका प्रेमसे नेत्र मूँदकर बैठी है। उधर श्रीनन्दरायने देखा कि एक वृक्षके नीचे साँवरा, सलोना कृष्णमृगछौना-सा बालक आँख मूँदे बैठा है। दोनोंही घोड़ों से उतर पड़े। दोनोंको अपने हृदयसे लगाया। स्नेहमें सराबोर हो गये। दोनों ही घोड़ोंपर चढ़ा-चढ़ाकर अपने-अपने घरोंमें ले आये। माताओंने आह्लादित होकर आरती उतारी। इधर श्रीकीर्तिरानी उधर श्रीयशोदा महारानी, दोनोंही दोनों शिशुकोंओं गोदमें लेकर परम आह्लादित हुईं। सारे व्रजमण्डल में धूम मचगयी। युगल अपनी माताओंकी गोदमें किलकने लगे। बरसानेमें लोग गाने लगे—"जय-जय श्रीवृषभानु-किशोरी।" उधर नन्दगाँवमें—"नन्दके आनन्द भयो जै कन्हैया-लालकी।" "नन्दमहर घर ढोटा जायो, बरसाने ते टीको आयो !!"

सेवापरायणा श्रीस्वामिनी

सातवाँ प्रेमी—(पृथ्वीपर मस्तक टेककर) प्राणप्यारे बाबुल ! श्रीगुरुसाहबके मन्दिरमें मस्तक झुकाकर सत्सङ्गमें जाकर बैठा। वहाँ यह कथा होरही थी—"महारानी श्रीजनकनन्दनी अपने वनवासी प्राणनाथकी सेवा करके उन्हें किसप्रकार सुख पहुँचा रही हैं ? उन्होंने प्रियतमके आनन्दके लिये पर्णकुटीरके चारों ओर गमलोंकी सुन्दर फुलवारी

बनवायी है। वे स्वयं अपने हाथों गोदावरीसे जलके कलश भर-भरकर उन्हें सींचती है—अपने प्रियतमके विराजमान होनेके लिये गोबरसे लिपी-पुती स्वच्छ वेदिका बनायी है। यह सुनकर मेरा मन बहुत व्याकुल हुआ। कहाँ तो साकेत-नाथकी प्राणेश्वरी प्राणवल्लभा अत्यन्त सुकुमारी श्रीश्रीजू अम्बा और कहाँ यह वनवासी जीवन! मँझली माँ पर बड़ा क्रोध आने लगा। फिर कथामें सुना कि श्रीमहारानीजी वहाँ वृक्षोंकी छायामें पक्षियोंके चुगनेके लिये वनका धान्य बिखेर देतीं और उनके वात्सल्य-स्नेहमें बँधे हुए पक्षी पर्ण-कुटीरके आसपासकी वृक्षावली छोड़कर कहीं नहीं जाते थे। महारानी श्रीजू सर्वदा उन्हें प्रभुके चरित्र और गुणकी मधुर पदावली पढ़ाती रहतीं। लाड़ले लक्ष्मण प्रातःकाल खुरपा, कुदाल लेकर कन्द-मूल-फलके लिये चले जाते। प्यारे राघवेन्द्र गोदावरीके पावन पुलिन पर ठण्डी, धीमी एवं सुगन्धित वायु लेनेके लिये टहलते। उस समय श्रीस्वामिनीजू बड़े प्रेम और सावधानी से पर्णकुटी को साफ करके कोमल-कोमल गुलाबी कोपलोंका आसन बनाती रहतीं। उधर श्रीराम-चन्द्रको दात्यूह पक्षीकी-"पुत्र, पुत्र" यह करुण पुकार सुनकर अपनी स्नेहमयी वृद्धा जननीकी मधुर स्मृति हो आयी और वे व्याकुल होकर मन-ही-मन कहने लगे—"हाय! हाय! मेरी मैयाको तो मेरे जन्मसे जितना सुख हुआ, उससे हजारगुना तो मेरे वियोगसे दुःख ही हुआ। मैंने तो उनकी कोई सेवा नहीं की। कोई हित नहीं किया। मुझसे अच्छा तो मैयाका पाला वह शुक पक्षी भी है जो अपने साथियोंसे कहता था कि मैयाको दुःख पहुँचानेवाले शत्रुओंकी जीभ

काटदो।" प्रभुके नेत्रोंसे आँसू झलक पड़े। वे घबड़ाकर पर्णकुटीकी वेदिकापर आ बैठे। उस समय श्रीजूमहाराजके सिखाये हुए विहङ्गोंने मधुर-मधुर कलरव से पद गा-गाकर उन्हें प्रसन्न किया। अपनी प्रियतमाकी यह शिक्षा कुशलता देखकर अनुरागमें भर गये और श्रीप्रियाजीकी ओर देखने लगे। प्रिया-प्रियतमकी प्रसन्नता, आनन्द और अनुराग देखकर मैं मग्न हो गया। ध्यान जम गया। मैंने देखा कि श्रीस्वामिनीजी गोदावरीके तटपर सुन्दर-सुन्दर रङ्ग-विरंगे पुष्पोंका चयन कर रही हैं। झोली भर गयी। गोदावरीजीसे कलशमें जल भी भर लिया और पर्णकुटीकी ओर चलीं। उसी समय श्रीजीका पाला हुआ मृगशावक छलाँग भरता हुआ आ पहुँचा और साड़ीका पल्ला मुखमें पकड़कर अपनी बड़ी-बड़ी आँखोंसे इशारा करने लगा कि यह जलका कलश मेरी पीठ पर रख दो। मैं ही ले चलूँगा। प्रेमविनोदिनी श्रीश्रीजू मृगशिशुके इस विचित्र अनुरागसे प्रसन्न हो गयीं और अपने करकमलोंसे कलशका भार सम्भालते हुए ही उसकी पीठपर रखे रखे पर्णकुटीके पास आ गयीं। श्रीरघुनन्दनदेवजू दूरसे ही यह विनोद देख रहे थे। समीप आनेपर हँसकर बोले—"प्यारीजी! सेवक तो बड़ा अच्छा है। इसका वेतन क्या है?" श्रीजीमहाराजने मुस्कराकर कहा—"प्रभुका कृपावलोकन! आपका दुलार प्राप्त करनेके लिये यह सारा भार अपनी पीठपर ले आया है।" प्रभुने आनन्दमें भरकर मृगशिशुको अपनी गोदमें कर लिया। अपने वल्कलसे उसका शरीर पोंछकर चूम लिया और बोले—"बेटा! अपनी माँकी सेवा करते

हुए सुखी रहो।"

मैं मन ही मन उस मृगशिशुके भाग्यकी सराहना करने लगा और आनन्दमग्न हो गया। उसी समय श्रीलक्ष्मण-लाल कन्द, मूल, फल लेकर आगये। युगल सरकार प्रसन्न होकर भोजन करने बैठे। उस समय हमारे प्यारे साईं ऋषिकुमारीके रूपमें हाथोंमें पटिया लिये आ गये और उस पर श्रीजूमहाराजके लिखाये हुए संस्कृत श्लोकोंको तोतली और मधुरवाणीमें गाने लगे। उन श्लोकोंको सुनकर युगल-सरकार और लक्ष्मणलाल हँस-हँसकर लोटपोट होने लगे।

ब्रजके विरही लोग विचारे

आठवाँ प्रेमी—(आँखोंसे आँसुओंकी झड़ी लग रही है, नमस्कार करते हुए)—

कृपानिधान साईं ! मैंने भक्तिकी भाँग पीकर सन्त-सद्गुरु साईंकी जय-जयकार मनायी और नीबूके पेड़के नीचे बैठकर ध्यान लगाया। नाम-जपकी एकाग्रता में बाह्य संसार खो गया और भगवान्‌की एक नवीन लीलाका दृश्य दिखा। मैंने देखा कि बाबा नन्दराय गोपमण्डली और ग्वालबालोंके साथ मथुरासे लौट रहे हैं, परन्तु प्यारे कन्हैयाके साथ न आने के कारण उदास, थके, चिन्तामग्न और दुःखी हो रहे हैं। वे सोच रहे हैं—"हाय हाय! प्यारे कन्हैयाके बिना मुझे अकेला देखकर महरिकी क्या दशा हो जायगी ? वह जब मुझसे पूछेगी मेरा लाला कहाँ है ?" तो मैं क्या उत्तर दूँगा ? वह सूना-सूना महल मैं कैसे देख सकूँगा ? हाय,

हाय ! वसुदेवने मेरी निधि लूट ली। मैं भाग्यहीन-सा होकर लौट रहा हूँ! एक-एक क्षणका जीना भार हो रहा है। अब मैं जीकर क्या करूँगा ?" बाबा नन्दराय अचेत होकर गिर पड़े। श्रीउपनन्द आदि गोपोंने और ग्वालवालोंने सङ्कीर्तन करना प्रारम्भ किया—"गोविन्द जय-जय गोपाल जय-जय, गोविन्द जय-जय गोपाल जय-जय।" वे कुछ-कुछ सचेत हुए। कुछ सावधान से होकर बोले—'भैया, तुम लोग अब मुझे छोड़ जाओ। मैं किसी को मुख दिखाने लायक नहीं हूँ। अब मैं इस जङ्गल में पड़ा रहूँगा और 'कृष्ण-कृष्ण' कहते हुए अपने जीवन का विसर्जन करूँगा। मेरे दादा वृषभानुसे 'जयश्रीकृष्ण' कहकर पालागन करना। बेटा सुबल, तू मेरी आज्ञा मानकर पुत्रवियोगिनी दुःखिनी (दुखिया) यशोदा की सेवा में संलग्न रहना। भला अब वह बेचारी कैसे जियेगी ? उसका तो इस बुढ़ापेमें एकमात्र सहारा हमारा प्यारा दुलारा लाड़ला कन्हैया ही है। श्रीयशोदाने मेरा विश्वासकर अपने जीवनकी सम्पत्ति, निधि मेरे हाथों सौंप दी, परन्तु मुझसे उसकी रक्षा न हो सकी। मथुरावासियोंने धोखा देकर लूट लिया। तुम सदा उसीके पास रहना। धैर्य बँधाते रहना। सुबल, तुम कन्हैयाकी मैयासे कहना कि कन्हैया तुम्हारा ही है, तुम्हारा ही होकर रहेगा। कन्हैया अब भी देवकीनन्दन नाम सुनकर रोने लगता है। वह तो बहुत ही भोला-भाला है। शहरके चतुरचिकनियाँ लोगोंने उसे फुसलाकर रख लिया है। वह कर भी क्या सकता था ?" ऐसा कहते-कहते बाबा नन्दराय पुनः अचेत हो गये। उसी

अवस्थामें गोप और ग्वालबाल उन्हें घर ले आये। यह दुःखमयी घटना देखकर मैयाको कुछ पूछनेका भी अवसर नहीं मिला। वे जड़कटे पेड़की तरह "हाय-हाय" करके धड़ामसे धरतीपर गिरपड़ीं। मैं भी रोता-रोता अचेत हो गया। (सब सत्सङ्गी रोते हैं)

मैंने उस अचेतावस्थामें देखा—महारानी श्रीयशोदा उन्मादिनी होकर घरके कोने-कोनेमें अपने कन्हैयाको ढूँढ़ रही हैं। श्रीरोहणीदेवी उन्हें सम्भाले हुए हैं। श्रीरोहिणीदेवी के सहारेसे मैया बैठी हुई हैं और उनके चरणोंमें सिर झुका-कर सुबलसखा रो-रोकर निवेदन कर रहा है—"अमर मैया, मीठी मैया! आप धैर्य धारण करो। मैं आपके चरण-कमलोंके रजकी शपथ लेकर कहता हूँ। मैं अभी मथुरा जाकर अवश्य-अवश्य प्यारे कन्हैयाको लेकर आऊँगा।" सुबल तत्काल मथुराके लिये चल पड़े। मैं भी 'दादा कन्हैया! दादा कन्हैया!' कहता हुआ उनके पीछे चल पड़ा।

अच्छा तो यह मथुरा है। नगरके दरवाजों पर पहरे-दार खड़े हैं। किसी भी गोप या ग्वालबालको भीतर जानेकी आज्ञा नहीं है। अब क्या किया जाय? झटपट सुबल दादा भिखारी बन गये और छोटा-सा तानपूरा हाथमें लेकर उस उद्यानमें जा पहुँचे जिसमें प्यारे कन्हैया प्रतिदिन टहलनेके लिये आते। सुबल वहाँ बैठकर तानपूरे पर श्रीकिशोरीजूके मधुर नामका गान करने लगे। उस 'श्रीराधे श्रीराधे' नाम में, इस मधुरसे मधुर अमृतमें न जाने क्या मोहनी शक्ति थी जिससे खिंचकर प्यारे श्यामसुन्दर उन्मत्त दशामें 'हा श्रीराधे'

'हा श्रीराधे' कहते हुए वहाँ आ पहुँचे। पीताम्बरकी सुध नहीं, बाल बिखरे और पाँव डगमग हो रहे हैं। वे भिखारी वेषधारी सुबलके पास आकर आर्त्तस्वर से बोले—"अरे भैया! तुम कौन हो? यहाँ कैसे आये? यह मधुर नाम तुमको किसने सिखाया? इस नीरस मथुरामें यह सरसनाम आज ही सुननेको मिला है। तुमने मुझे जिला दिया। तुम्हें जो अभिलाषा हो—वह वर माँग लो। जो इस मधुरनामका जप करता है, वह मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्यारा है। तुम्हारी क्या इच्छा है? मैं तुम्हारी प्रसन्नताके लिये सब कुछ कर सकता हूँ। यह मधुर नाम सुनकर मुझे अपनी प्राणप्रियाके मुखचन्द्रके दर्शनकी तीव्र उत्कण्ठा जग उठी है। मैं अब मथुरा में नहीं रह सकता।"

भिखारी सुबलने रोते हुए कहा—"तब सरकार, आप यहाँ क्यों रह रहे हैं? क्यों नहीं वहाँ जाते? आपकी प्यारी मैया और बूढ़े पिता मृतप्राय हो रहे हैं। वे जलसे बिछुड़ी मछलीकी तरह छटपटा रहे हैं। मैं आपसे भीख माँगता हूँ कि आप यदि सचमुच मुझपर प्रसन्न हैं, तो एक बार—केवल एकबार मेरे साथ चलकर उन्हें फिरसे जीवन दान दें।"

श्यामसुन्दरने पूछा—"भैया तुम कौन हो?" सुबलने अपना परिचय दिया। प्यारे कन्हैया और सुबल दोनों एक-दूसरेसे लिपट गये। बहुत देर तक दोनों जोर-जोरसे रोते रहे और धैर्य धारण करके श्रीवृन्दावनके लिये चल पड़े। श्रीवृन्दावनमें आकर बड़े आह्लादसे मीठी मैया और बाबासे

मिले। आनन्दका समुद्र उमड़ पड़ा। सारा व्रजमण्डल हरा भरा हो गया। श्रीयशोदामैया युगलको गोदमें बिठाकर माखन मिश्री खिलाने लगी। मैंने देखा—उसी समय हमारे प्यारे बाबुलसाईं अपने समाजके साथ मङ्गल बधाई देनेके लिये वहाँ आये। श्रीव्रजराज दम्पतिने प्यारे साईं को रत्नजटित सिंहासनपर विराजमान किया और बहुत-बहुत आदर सत्कार किया। श्रीस्वामीजू युगलसरकारको गोदमें बिठाकर दुलार करने लगे।

युगलसरकारकी जय हो !
बाबुल साईंकी सदा ही जय हो !

श्रीजनकपुरसे किशोरीजीकी विदाई

नवाँ प्रेमी—(उमङ्गसे आशीष देकर) श्रीमिहरवान मालिक! आपके कृपाप्रसादसे सारा सत्सङ्गसमाज रसराज के क्षीरसागरमें डूब-उतरा रहा है। मैं भी अपने साईंका मङ्गल मनाकर श्रीजनकपुरीके राजमहलमें जा पहुँचा। आज-तो यहाँका सब दृश्य ही बदल गया है। रनिवासके दास-दासियाँ सब अत्यन्त व्याकुल हैं। अपने-अपने काममें तो सब लगे हैं; परन्तु आँखोंसे आँसूकी बूँदें भी ढुलक रही हैं। अच्छा, आज श्रीस्वामिनीजीकी विदाई का दिन है। श्रीजनकनन्दनी अवधेश-पुत्रवधू श्रीकिशोरीजी दुलहिनके वेशमें सुन्दर सिंहासन पर विराजमान हैं। माता श्रीसुनयनाजी और राजपरिवारके सब लोग उनके पास बैठे हैं।

श्रीकृपानिधान स्वामीजू सहचरी रूपमें उनपर पंखा झल रहे हैं और मधुर-मधुर वचनोंसे आश्वासन दे रहे हैं। माता सुनयनाके नेत्रोंसे मोती बिखर रहे हैं और वे अपनी प्यारी सुकुमारी राजदुलारी प्रिय पुत्रीसे व्याकुलता मिश्रित स्वरसे कुछ कहती जा रही हैं। क्या कह रही हैं—"वैदेही, बेटा नेक अपनी माँकी ओर तो देखो! मुझे भूल न जाना लली? मुझ निर्धनीकी एक तुम्हीं धन हो। मुझ अन्धीकी एक तुम लकड़ी हो। इस वृद्धाकी तुम एकमात्र सहारा हो। तुम्हारे विना इस आँगनमें अँधेरा छा जायगा। सारा घर सूना-सूना हो जायगा। विना मणिके फणिके समान मेरे दिलका कोना-कोना तुम्हारे विना तड़प रहा है। यह घर तुम्हारे मधुर वचन और पवित्र लीलाओंसे भरा हुआ है। तुम्हारे विना मैं इसमें कैसे रहूँगी? तुम्हारी तोतली वाणीसे 'माँ, माँ' की मधुर गुञ्जार सुने विना मैं कैसे जीवन व्यतीत करूँगी? मैं सवेरे-सवेरे उठकर किसके लिये कलेऊ बनाऊँगी? किसको गोदमें बिठाकर खिलाऊँगी? इस आँगन में अपनी छोटी-छोटी बहिनोंके साथ कौन खेलेगा? किसकी मृदु मुस्कानकी मधुर चाँदनीसे मेरे घरके पशुपक्षी और जड़ तक चमक उठेंगे? हाय-हाय! अब मेरा समय कैसे कटेगा?" माता श्रीसुनयना देवी अधीर होकर धरती पर लोटने लगीं। श्रीकिशोरीजी 'माँ, माँ' कहकर उनसे लिपट गयीं और रोने लगीं। सखी-वेशमें साईं भी दौड़ आये और गुलाबजलसे सिंचन करके मैयाको सावधान करने लगे। सचेत होकर श्रीसुनयना मैया श्रीकिशोरीजीका मस्तक सूँघने लगीं और बार-बार हृदयसे लगाकर दुःखी होने लगीं। उनका दिल फटने लगा। "हाय

हाय ! आज तुम चली जाओगी बेटी ? घरके तोता मैना तो तुम्हारे लिये विकल हो रहे हैं । मैं क्या करूँ बेटी ?"

उसी समय विदेहनरेश भी वहाँ आगये । श्रीकिशोरीजी 'बाबा, बाबा' कहकर उनके हृदयसे सट गयीं । बाबाका विदेहपना बिसर गया । उनके ममता भरे आसुओंकी झड़ीसे श्रीजूकी ओढ़नी भीग गयी । वे सावधान होकर बोले, "मेरे लाल, अधीर मत होओ ! मैं शीघ्र ही लक्ष्मीनिधिको भेजकर तुम्हें बुला लूँगा !" उसी समय राजगुरु श्रीशतानन्दजीने कहा—"पिताजीने अपनी अनुरागकी अश्रुधारासे तुम्हारा अभिषेक किया है । सुहागिनी ! तुम्हारा सुहाग अविचल रहे । रथ पर बैठनेका यही शुभ मुहूर्त है, शीघ्रता करो !" पुनः एकबार सबसे मिलकर श्रीजू रथपर विराजमान हुईं । रथ चलते ही फिर वे माता-पिताके वियोगसे घबरा उठीं और 'माँ, माँ' पुकारने लगीं । अपनी बच्चीके शब्द सुनकर मैया और भी व्याकुल हो गयी और बछड़े से बिछुड़ी व्याकुल गौके समान डकराती हुई सखियोंसे अपना हाथ छुड़ाकर अत्यन्त व्याकुलतासे नंगेपाँव रथकी ओर दौड़ी । सिरके वस्त्रकी भी सम्भाल नहीं रही । उनकी यह दशा देखकर श्रीरामभद्र आतुरतासे रथसे उतर पड़े और उन्हें अपने साथ बिठा लिया । वे बार-बार प्यारसे अपनी बच्चीका मुख चूमने लगीं और रघुनन्दनदेवसे बोलीं—"बेटा ! मैं तब लौटके जाऊँगी जब तुम मुझे वचन दोगे कि मैं जानकीको अपनेसे अलग नहीं करूँगा, सब प्रकारसे उन्हें सुखी रखूँगा । मेरे सामने मेरी इस ललीसे मधुर भाषण करो ! मुझे सुख

पहुँचाओ।" श्रीरामभद्र बोले—"मैया, तुम्हारी आज्ञा मेरे सिर आँखोंपर है। यह तो मेरी प्राण हैं, आत्मा हैं। मैं इन्हें कभी अपनेसे अलग न करूँगा। इनका सुख ही मेरा सुख है। इनका जीवन ही मेरा जीवन है।" इसके बाद श्रीरामचन्द्रने स्वामिनीजीकी ओर देखकर कहा—'प्रिये, तुम इतनी अधीर क्यों हो रही हो? जैसी तुम्हारी मैया है, ऐसी ही मेरी मैया भी करुणा और स्नेहकी मूर्ति है, वात्सल्य स्नेहकी निधि है। उनका मधुर अनुराग प्राप्त करके बहुत क्या, उनके दर्शन संसर्ग और आलापसे ही तुम्हें बहुत सुख होगा।" इस प्रकार अपनी प्राणप्रियासे मधुर वचन कहकर सासको धैर्य बँधाया, सुखी किया। श्रीसुनयना मैयाने बड़े प्यारसे, दुलारसे अपनी पुत्री और जामाताको गले लगाया। कुछ खिलाया-पिलाया। जब श्रीरामभद्रने यह कहा कि—"मैया, हम दोनों सर्वदा तुम्हारी गोदमें खेलते रहेंगे, तब आनन्द और ममतासे उनका हृदय भर आया और वे आशीर्वाद देकर लौट आयीं।"

इसके बाद मैंने देखा और बड़े आश्चर्यसे देखा—अरे, यह तो जनकपुर नहीं, श्रीअयोध्या है। यहाँके घर-घरमें गली-गलीमें, राजमहलके कोने-कोनेमें, कण-कणमें आनन्दका समुद्र लहरा रहा है। महाभाग्यवती श्रीकौशल्यामैयाकी गोदमें उनकी शीलवती पुत्रवधू सतीगुरु श्रीवेदवतीजी अचल सुहागकी ज्योतिके रूपमें जगमगा रही हैं और हमारे प्यारे बाबुल साईं मङ्गलमयी खील और प्रसूनवर्षा करते हुए

युगलका मङ्गल मना रहे हैं। "यह युगल जोड़ी जुग-जुग जिये! इनके सुहाग-भाग अचल रहें!" इस प्रकार आशीर्वाद दे रहे हैं।

श्रीप्रियाजीको प्रियतमके इष्टदेवका दर्शन

दसवाँ प्रेमी—(सप्रेम वन्दन करके) परम पूज्य प्रिय स्वामीजी! मैं सद्गुरुदेवका मङ्गल मनाकर हरी-भरी वृन्दा-वल्लीमें जा बैठा। ऐसा मालूम पड़ा मानो श्रीवृन्दावन ही है। व्रज-वनके सुन्दर-सुन्दर, लोनी-लोनी, लहलही लताओंकी मनोहर झाँकी मेरी डहडही आँखोंके सामने झिलमिलाने लगी। यह तो बड़ा ही मनोहर, सघन छायासे मण्डित रङ्ग-बिरंगे पुष्पोंसे सुसज्जित एक अद्भुत निकुञ्ज है। इस निकुञ्जमें मधुर सुकुमार ठण्डी चाँदनी छिटक रही है मानो कोटि चन्द्रमा की हो। इस दिव्य सिंहासन पर श्रीकृष्णप्राणवल्लभा श्रीवृन्दावनमहारानी विराजमान हैं। उनके चरणोंकी सहज स्वाभाविक मधुर लालिमामें महावरकी लालिमा मिल गयी है और हरी-हरी दूब पर पड़कर एक विचित्र आनन्द प्रदान कर रही है। अच्छा, श्रीस्वामिनीजीके तलवोंमें यह कुछ अक्षर-से जान पड़ते हैं! यह क्या हैं? ओ हो! समझ गयी। यह तो गोपलसहस्रनाम है। हृदयमें आनन्दकी बाढ़ आ गयी। मेरा तन, मन सब उसमें डूबने-उतराने लगा। वाह वाह! यह देखो, चोर-जार-शिखामणि लिखा हुआ है। यह किसने लिख दिया है? समझ गयी, समझ गयी। स्वयं

प्रियतमने श्रीप्रियाजीके चरणकमलोंमें निवास करनेके लिये इसमें नाम लिख दिये हैं। मैं श्रीप्रियाजीके चरणकमलोंमें उन नामोंको पढ़ ही रही थी कि कहीं दूरसे श्रीप्रियाजीके नामकी मधुर-मधुर ध्वनि आयी मानो मेरे कानोंमें किसीने अमृत उँड़ेल दिया हो। उस प्रेमभरे आलापसे खिंचकर जिधरसे वह ध्वनि आ रही थी उधरके लिये ही श्रीप्रियाजी चल पड़ीं मानो धुरधामकी वंशीध्वनि सुनकर सुरत कलारी मतवाली होकर शब्दकी डोरी पर चढ़ी जा रही है। वे नन्ही-सी किन्तु हरी-भरी फूलोंसे सजधज कर खड़ी पहाड़ीके सिर पर चढ़ गयीं। वहाँ जाकर श्रीप्रियाजी देखती हैं कि प्यारे श्यामसुन्दरकी झोली सुन्दर-सुन्दर फूलोंसे भरी हुई है और वे प्रेममग्न होकर मधुर-मधुर सङ्गीत गाते जा रहे हैं। गाते-गाते उन्होंने अपनी पीत झँगुलियाकी जेबसे चाँदीके तागे और लाल पागेसे सोनेकी सुई निकाल ली और हार पिरोने लगे। सुकुमारी श्रीस्वामिनीजू प्रियतमके समीप जा पहुचीं और बोलीं—"हे साँवरे सलोने सुकुमार किशोर! किस देवता के लिये यह माला गूँथ रहे हो? लाओ, मैं तुमसे अच्छी गूँथ दूँ! हे मनमोहन, मधुरश्याम! आपकी यह भोरी-भारी सूरत, यह मधुर मनोहर मूर्ति मेरे मनको मोहित कर चुकी है। तुम्हारे लिये मेरा यह मन बावरा बना फिरता है। बताओ तो सही, तुम्हारे प्रेमपूर्ण कर-कमलोंका स्पर्श पाकर बड़भागी बना यह सुन्दर हार किस सुहागभरे देवताके कण्ठको सुशोभित करेगा?"

मुस्कराकर मनमोहनने कहा—"गौरी देवी ! आज मैं अपने हृदयमन्दिरमें सिंहासनासीन अपने इष्टदेवताको यह हार पहनाऊँगा। फूलोंका सुन्दर झूला बनाकर हरियाली तीजपर अपने हृदय-देवताको झुलाऊँगा !"

श्रीस्वामिनीजी उल्लाससे भरकर बोलीं—"मेरे प्यारे हृदयेश्वर ! तुम मुझे अपने हृदयेश्वरका दर्शन करा दो।" श्रीप्रियाजी थिरक के प्रियतमके पास पहुंच गयीं और बायें हाथसे उनकी दाहिनीभुजा पकड़कर मचलने लगीं—"देखूँगी, देखूँगी,देखूँगी!" दाहिने हाथसे हृदयसे उनकी अँगुलीका पल्ला हटाया और बोलीं—"मैं तो देखके मानूँगी कि मेरे प्रियतमके हृदयमें, नेत्रोंमें, रोम-रोममें कौन विराजमान है ! मैं अपना यह नौलखा हार अपने हृदयेश्वरके हृदयेश्वरके हृदय पर चढ़ाऊँगी।"

अपनी प्राणप्रियाके यह मधुर प्रेमामृतपूर्ण वचन सुनकर प्रियतमका रोम-रोम खिल उठा, दिल बाग-बाग हो गया। हर्षका समुद्र लहरा उठा। प्यारेने गद्गदकण्ठसे, मानो अपने प्यारे की मधुर स्मृतिमें डूबगये हों, अपने भावको छिपाते हुए कहा—"देवी ! मुझे क्षमा करो, मैं लाचार हूँ। अपना ठाकुर मैं तुम्हें नहीं दिखा सकता। ऐसा करनेसे वह रूठ जायगा।" प्रेममूर्ति श्रीस्वामिनीजीने कहा—"डरो मत प्यारे ! निर्भय होकर अपने आराध्यदेवका दर्शन कराओ। मैं उन्हें अपने स्नेह, शिष्टाचारसे मना लूँगी। ऐसा प्रसन्न करूँगी—ऐसा प्रसन्न करूँगी कि वे तुमसे कभी न रूठें।"

श्यामसुन्दरने कहा—"अच्छा प्रियाजी, कभी न रूठेंगे ? तुम ऐसा वायदा करती हो ? इस बातको भूलना मत ।'

श्रीप्रियाजीने कहा—"हाँ, नहीं रूठेंगे। तुम एकबार, केवल एकबार दिखा भर दो ।"

प्रियतमने प्रसन्न होकर अपने वक्षस्थलसे पीताम्बर हटा लिया और देवताका दर्शन कराते हुए बोले—"हे सरले ! देखो, मेरे दिलदारको देखो ! मेरे हृदय-सिंहासनपर प्रतिष्ठित देवताका दर्शन करो । मेरे हृदयकमलकाननका राजहंस देखो ! मेरी आँखोंकी ज्योति देखो ! मेरे प्राणोंकी आत्मा देखो ।"

मुग्धस्वभावा श्रीकिशोरीजीने अनुरागभरे नेत्रोंसे झाँककर देखा । उस समय श्रीप्रियाजीके रोम-रोमसे उत्सुकताकी निर्झरिणी झर रही थी। उन्होंने देखा—रत्नजटित सिंहासन पर सहस्रदलकमलकी पराग-मकरन्दपूरित कर्णिकापर प्रियतमको स्नेह-सुधा-तरङ्गिणीसे सराबोर करती हुई एक दिव्य मूर्ति विराजमान है—जिसके अङ्ग-अङ्गकी परछाईंके सामने रति आदि रूपगर्वीली नायिकाओंका सौन्दर्य चूर-चूर हो रहा है। उनकी वख्त-बुलन्द शानसे अनन्त प्रभाकरोंकी प्रभा आकाशमें भागती नजर आ रही है। श्रीगोलोकनाथके हृदयाधारकी ज्योति जगमग-जगमग झलमला रही है। स्नेह मूर्ति श्रीजू अत्यन्त अनुरागमें मुग्ध होकर वन्दना करने लगीं और अपना नौलखा हार उतारकर भेंट करने लगीं। मैंने उस समय देखा—श्रीस्वामीजी सहचरीरूपमें श्रीकिशोरीजीका भोरा-भारा अनुरागी स्वभाव देखकर हर्षमें गद्‌गद हो ताली बजाकर हँसने लगे। शब्द सुनकर श्रीजू सचेत हुईं और

सोचने लगीं—"मुझसे क्या भूल हुई है ? क्या मैं अपने-आपको भी पहचान न सकी ? क्या मैं अपने मुखसे अपनी प्रशंसा और अपने हाथों अपनी पूजा कर रही हूँ ?"

प्रियतमने पुनः मन्दिर-द्वारपर पीताम्बरका पट खींच लिया। श्रीप्रियाजी प्रियतमके हृदयमें अपने लिये ऐसा अनुराग, ऐसा आदर देखकर कृतज्ञताके भारसे झुक गयीं और प्रेमपूर्ण चितवनसे प्रियतमकी नजर बचा-बचाकर उनकी ओर देखने लगीं। श्यामसुन्दरने उनका सङ्कोच मिटानेके लिये उन्हें अपने भुजपाशमें बाँध लिया।

युगल सरकार की जय हो !

मिठले बाबुलसाईं की सदा ही जय हो !

श्रीवाल्मीकि आश्रममें विरहिणी वैदेही

ग्यारहवाँ प्रेमी—(सप्रेम प्रणामाभिवादनके पश्चात्) मीठे मालिक ? मेहरबान साईं ! मैं आपके श्रीचरणकमलोंका दर्शन करके एकान्तमें जा बैठा। मैं श्रीस्वामिनी साकेताधीश्वरी महारानी श्रीमिथिलेशनन्दनीजूके जीवनकी उन वेदना, व्यथा एवं व्याकुलतासे भरी घटनाओंके सम्बन्धमें सोचने लगा जो उनके उत्तरकालीन विरही-जीवनसे सम्बन्ध रखती हैं। आँखोंके सामने बीहड़ वनका वह सूना-सूना भयावना दृश्य छा गया। अभी-अभी लक्ष्मणलाल उन्हें छोड़कर चले गये हैं और अपने हृदयेश्वरकी स्वामिनी असहाय और अचेत अवस्थामें पड़ी हैं। सारा वन मानो काट खाना चाहता हो।

दावानलसे झुलस-झुलसकर बड़े-बड़े वृक्षोंके ठूँठ प्रेत पिशाच की भाँति सिर उठाये खड़े थे। हरियालीका नामोनिशान तक नहीं था। धरती कण्टकाकीर्ण, इधर उधर फुँफकारते तड़फड़ाते हुए सर्प, हिंसक जन्तुओंकी भयङ्कर गर्जना—सारा वन प्रलयकालीन महाश्मशानकी भाँति भय उत्पन्न कर रहा था।

यह दृश्य देखकर हृदय धक-धक करने लगा। वहीं देखा—"एक वृक्षकी विरल छायामें अपने झुण्डसे बिछुड़ी हरिणीके समान राजराजेश्वरके हृदयेश्वरकी सम्पत्ति श्रीस्वामिनीजी चारों ओर निहार-निहारकर विलाप कर रही हैं—"हा प्राणनाथ! हा प्राणनाथ!" इस प्रकार पुकारते पुकारते अचेत हो रही हैं। वहाँ न कोई दास और न कोई दासी, सहेलीकी तो भला चर्चा ही क्या? उनकी वह करुण-दशा, आर्त्त पुकार और बेहोशी पत्थरको भी पिघला देती है। उनकी वह असहाय दशा वनके पक्षी और पशु भी नहीं देख सके। सबका दिल पिघल गया। मयूरने अपने पिच्छ फैला-कर छाया की। शुक-सारिकायें पास जा-जाकर अपने मधुर-मधुर कलरवसे जगानेकी चेष्टा करने लगे। फिर भी जब वे सजग न हुईं तब अपने पङ्ख पानीसे भिगा भिगाकर उनके मुखपर छींटे देने लगे। बन्दर वनसे फल ले आये। सब स्वामिनीको चारों ओरसे घेरकर बैठ गये। जलके छींटे पड़नेसे, पक्षियोंके चहकनेसे मूर्च्छा कुछ कम हुई, नेत्र खुले। श्रीस्वामिनीजीने देखा अपना वन-परिवार! देखी अपनी दीनदशा! नेत्रोंसे आँसू ढुलक पड़े। लम्बी साँस चलने लगी।

वे व्यथित हृदयसे अपने प्राणनाथके चरणकमलोंका ध्यान करने लगीं। सूर्यदेवतासे स्वामिनीजीकी यह दशा नहीं देखी गयी। कुछ पश्चिमकी ओर भगे, अपने वंशजपर कुछ लाल-लाल हुए और समुद्रमें कूद पड़े। प्रकृतिने इस दृश्यको असह्य जानकर अन्धकारका एक बड़ा पर्दा डाल दिया। परन्तु इससे क्या ? स्वामिनीजीकी व्यथा तो बढ़ती ही गयी।

भयङ्कर अन्धकारमें कहीं-कहींसर्पोंकी मणि जगमगा रही थी। वे और भी विकल होकर 'प्राणनाथ ! हृदयेश्वर ! जीवनसर्वस्व !!" कह कहकर जोर-जोर से पुकारने लगीं। उनके विकलताभरे शब्दोंकी ध्वनि वनराजसिंहके कानोंमें पड़ी और उनके प्राण आकुल हो उठे। श्रीस्वामिनीजीकी विरह-वेदनाकी धारामें सिंहकी हिंसावृत्ति लुप्त हो गयी। वह दयासे द्रवित होकर श्रीस्वामिनीजीके निकट आया, प्रणाम किया; अश्रुपूर्ण नेत्र और गद्गद वाणीसे बोला—"माँ ! रात भयंकर है। आप मेरी सुरक्षित गुफामें चलिये। प्रातःकाल महर्षि वाल्मीकिजीके आश्रममें चलकर निवास करना।" श्रीस्वामिनीजी सिंहकी गुफामें आयीं। सिंह द्वारपर बैठकर पहरा देता रहा। श्रीस्वामिनीजीने सारी रात प्रियतमके विरहमें विलाप करते-करते व्यतीत की। कहाँ वह गन्दा स्थान और कहाँ राजमहलमें पवित्र वन, उद्यान, आश्रममें रहनेवाली श्रीस्वामिनीजी ! वहाँ एक गन्दे कोनेमें अयोध्याकी महारानी मिथिलाकी राजकुमारीको पड़े देखकर मेरा हृदय टूक-टूक होने लगा। (दहाड़ मारकर रोता है)।

प्रियतमके पुनः विछोहकी वह पहली रात युगके समान किसी तरह व्यतीतकी। सिंहके कहने पर वे बाहर निकलीं (सब प्रलाप करके रोते हैं)। अचानक महर्षि वाल्मीकिजी उधरसे निकले। यह एक अभूत, अकल्पित दृश्य देखकर महर्षिजी तो आश्चर्यचकित ही रह गये। हृदयमें दुःखका पारावार उमड़ उठा। श्रीस्वामिनीको प्रणाम करते देखकर बोले—"बेटी! धैर्य धारण करो। मैं सब कुछ जानता हूँ। तुम सर्वथा निर्दोष हो। ईश्वर पर भरोसा रखो, वे सब भला ही करते हैं। अब तुम चलकर मेरे आश्रमको पवित्र करो। वह समय शीघ्र ही आयेगा जब तुम्हें तुम्हारे प्राणनाथ मिलेंगे और परम अह्लादमय, मङ्गलमय दृश्य सामने आयेगा।" महर्षि बाल्मीकि उन्हें अपने आश्रममें ले आये। एक एकान्त कुटीमें विराजित कर पुनः आश्वासन देते हुए करुणापूर्ण वाणीसे बोले—"बेटी! इस आश्रमको तुम अपने पिताका ही घर मानना। किसी प्रकारका संकोच नहीं करना। मैं अपनी तपस्याके बलसे ऐसा यत्न करूँगा कि तुम्हारे प्राणाधार स्वामी शीघ्र से-शीघ्र तुम्हें मिल सकें।" समझा-बुझाकर महर्षि वाल्मीकि और कहीं चले गये। परन्तु श्रीअयोध्याधीश्वरी श्रीरघुनन्दन प्राणप्रिया श्रीश्रीजूकी व्याकुलता किसी प्रकार कम न हुई। वे प्राणप्यारेके वियोग की व्यथासे पीड़ित होकर पुकार-पुकारकर "हा स्वामी! हा प्राणनाथ! हा जीवनधन! इस प्रकार विलाप करने लगीं! "आपने अपने श्रीचरणकमलोंसे अलग करके मेरे निर्बल हृदय

पर कैसा आघात पहुँचाया ! मेरे जीवनको अन्धकारमें डाल दिया। हाय हाय ! मेरा यह हृदय वज्रका तो नहीं है ? एकके बाद यह दूसरा विछोह ! एकके अन्त होते-होते ही यह दूसरे का प्रारम्भ ! यह विकट वेदना मैं कैसे सहूँ ? परन्तु प्राण-प्रियतम ! आपका भी क्या दोष है ? आपको भी प्रजापालनका कठोर धर्म निभाना है। आपके पूर्वजोंने आपको यही आज्ञा दी है और आप उसका पालन भी कर रहे हो ! मैं ही अभागिनी हूँ। मेरे ही भाग्यमें वनवासका अमिट लेख है। मैं माताके उदरसे नहीं, वनकी धरतीसे पैदा हुई हूँ। मैं वन-पीहरी हूँ। यही मेरा मायका है। न मेरे माँ, न मेरे बाप। कोई भी तो मेरी सम्हाल करनेवाला नहीं है कि आज मैं कहाँ हूँ। इस बीहड़ वनमें मैं असहाय अकेली वनवासी, तपस्वी, ऋषि-मुनि और जीव-जन्तुओंके भरोसे उदास एवं निराश जीवन व्यतीत करूँगी। प्यारे स्वामी ! आप मेरी चिन्ता न करें—कभी न करें ! बिलकुल न करें !! मैं इस बीहड़ विपिन में रहूँगी। अपने पुर, परिवार, परिजनसे दूर-दूर बहुत दूर रहूँगी। आपके धर्मकी रक्षाके लिये, आपकी प्रजाका मनोरञ्जन करनेके लिये आपकी इस आज्ञाका—मर्मभेदिनी आज्ञा का—क्षण-क्षण शल्यकी भाँति चुभने वाली आज्ञाका पालन करूँगी ! करती रहूँगी। प्रिय ! आपके अनुरागके रङ्गमें रङ्गकर आपके कुशल-मङ्गल मनानेमें मग्न होकर, आपकी पवित्र स्मृतिमें सराबोर होकर यह दुखी जीवन काटूँगी, काटलूँगी। स्वामिन् ! क्या कभी आप मुझे अपनी चिरदासी समझकर स्मरण करेंगे ? ईश्वर आपको प्रसन्न रखे। आप सर्वदा आनन्दमें रहें।"

विलाप करते-करते दिन गया, साँझ आयी। सम्पूर्ण विश्व अन्धकारमें डूबता हुआ दिखायी देने लगा। विरह-पिशाचने अपने हाथ-पाँव फैलाये। अवश्य ही यह समय विरह-दुःखकी आगमें आहुतिके समान है। आँखोंके सामने उन दृश्योंका छाया-चित्र नाच उठा, जो प्रेमके मिलनके और मधुर क्रीडाके हैं। तन्मयता बढ़ी। वर्तमान अतीतमें समा गया। प्रियतमकी मधुर मूर्तिका आलिङ्गन करनेके लिये दौड़ पड़ीं, परन्तु विरह-दुर्बल शरीर मनोभावोंका साथ न दे पाया, वे लड़खड़ाकर गिर पड़ीं।

"मेरे सर्वस्व ! यदि तुम मिलना नहीं चाहते तो छिप-छिपकर प्रकट क्यों होते हो ? प्रकट होकर छिपते क्यों हो ? इस प्रकार तरसानेमें, तड़पानेमें, सोती हुई टीसको जगानेमें, रुलानेमें, छकानेमें क्या तुम्हें कोई मजा आता है प्यारे ?"

श्रीजीको बाह्य-विस्मरण हो गया। वे अचेत हो गयीं (सब रोते हैं)।

ऋषिपत्नियोंने आकर सम्भाला, चेत कराया और सहारा देकर उन्हें आश्रममें ले आयीं। चलते समय चरणोंके नूपुरकी रुनझुन सुनकर ऋषिपत्नियोंके सम्मुख श्रीजूके मनमें संकोचका भाव उदय हो आया और वे दबे पाँव धीरे-धीरे चलकर आश्रममें आयीं।

ऋषिपत्नियाँ आश्वासन और आशीर्वाद देने लगीं। उनके चले जानेके बाद संकोचभरी, करुणामूर्ति श्रीस्वामिनीजीके मनमें आया कि अब यहाँ इन लोगोंके बीचमें नूपुरकी

झंकार उचित नहीं है। वे उन्हें उतारने लगीं। नूपुरोंसे एक व्याकुल ध्वनि आयी "माँ, हम आपके चरणकमलोंके चिर-सेवक हैं। हमें अपने पदाम्बुजोंसे विलग न कीजिये।" वात्सल्यानुरागमूर्ति श्रीस्वामिनीजीने उन्हें धैर्य बंधाते हुए कहा-"तुम लोग व्याकुल न होओ। मैं इस समय तपस्विनी हूँ। तुम्हें धारण नहीं कर सकती। तुम इस वेदिकाके नीचे निवास करो और मुझे आशीर्वाद दो कि मैं शीघ्र ही अपने प्राणनाथ के चरणकमलोंकी सेवा प्राप्त करूँ। जब मुझे अपने प्राणप्रियतम, अपने जीवनधनकी सेवाका सौभाग्य प्राप्त होगा तब तो तुम भी मेरे साथ रहकर उनके मनोरञ्जनमें योगदान दोगे।"

श्रीस्वामिनीजीने व्याकुल होकर अपने श्रीचरणकमलों से नूपुरोंको उतारा और उन्हें वेदिकाके नीचे विराजमान कर दिया। उस समय उनकी वेदना मूर्तिमान् होकर नेत्रोंके मार्गसे बाहर ढुलकने लगी (सत्सङ्ग समाज अत्यन्त व्याकुल हो उठता है)।

एक प्रेमी—(अधीर होकर रोता हुआ) स्वामीजी! महाराज! श्रीरामचन्द्रने करुणामूर्ति परमप्रेममयी भोली-भाली सरल-स्वभावा श्रीमाताजीके साथ ऐसी निठुर कठोरता क्यों बरती? जानबूझकर उनके पवित्र स्नेह और परम मधुर कोमल स्वभावको समझकर भी वे ऐसे पत्थर दिल क्यों हो गये? क्या इससे उन्हें कोई बड़ा भारी सुख मिला? निरपराध निर्मल श्रीजूमहाराजको वनवास देनेमें उन्हें कौन सा सुयश, कौन सा लाभ मिला?

श्रीस्वामीजी—(व्याकुल स्वरसे) निर्दोष श्रीजूमहाराजको दुःख देकर उन्होंने कौन-सा सुख लूटा ? अपनेको भी तो दुःखी ही बना लिया ? अपनेको ही नहीं, अपने परम प्यारे सहृदय भक्तजनोंके हृदय पर भी एक कभी न पुरनेवाला छिद्र कर दिया। इस सम्बन्धमें एक संवाद सुनाता हूँ।

एक दिनकी बात है। महर्षि वाल्मीकिजीके आश्रममें विशाल वटवृक्षकी हरी-भरी झुकती झूमती शाखाओंपर झूला डालकर शारदा और वासन्तिकाकी कन्याएँ ग्रीष्मा और प्रावृट् झूल रही थीं। दोनों माताएँ भोजन बना रही थीं। उस समय ग्रीष्मा आगकी ओर देखकर बोली—"आगका ताप सहना सहज है। तलवारोंके बीचमें खड़े होकर लोहूलुहान होना भी सुगम है। जप-तप-नेम-समाधि भी सुगम है, परन्तु सखि ! सुखमय समय में अपने उस पुराने साथीसे भी नेह निबाहना कठिन है जो दीन दशामें साथ रहा हो। कुलीन और समर्थ पुरुषका भी ऐसा आचरण कृतघ्नताके सिवा और क्या हो सकता है ? उदाहरणके लिये महारानी श्रीजनकनन्दिनीको ही देखो ! वे महाराज श्रीरामचन्द्रकी बालसङ्गिनी, पतिभक्ता, सतीकुलशिरोमणि, साधुहृदया, सरलचित्ता, अनन्यभावा, दुःखसहचरी, और सुखमें संकोचयुक्त हैं। महाराज श्रीरामचन्द्र कुलीन, विशालबुद्धि, दीनहितकारी एवं अवधविहारी हैं। उन्होंने केवल नीच मनुष्योंके द्वारा की हुई निन्दा सुनकर सङ्कटके समय गह्वर वनमें उन्हें असहाय छोड़ दिया। श्रीवैदेही तो वनकी रानी हैं, वन पीहरी हैं। उन्हें राज-

महलकी कोई इच्छा नहीं थी। इन्होंने अतिथिके समान भय और प्रतिष्ठासे श्रीकौशल्याकी चरणछाया में आकर निवास किया; परन्तु कोपभरी छोटी रानी राजलक्ष्मी इतना भी सह न सकी। वह तो रघुनन्दनसे एकान्त आलिङ्गनकी इच्छा रखती है। इसीसे सतीगुरु स्वामिनी श्रीमैथिलीचन्द्रजीको यहाँ आना पड़ा। वह डाकिनी अपनी आँखोंको बाहर निकाल कर देखना चाहती थी, परन्तु सुन्दर सुहागभरी परमहंस साहिब पार्थिवचन्द्रके प्रफुल्लित लाल-पद-पङ्कजके प्रकाश बिना उन राजलक्ष्मीके प्यारे रामचन्द्रको दशों दिशाओंमें अन्धकार-ही-अन्धकार होगा। क्यों सखि ?"

प्रावृट् ने कहा—"प्यारी सखि! श्रीभूनन्दिनी साहिब-का मङ्गल मनाओ। अब इनके बिना अयोध्या सूनी है। न वहाँ वह सुषमा है, न वह सौभाग्य। यद्यपि यह इस समय विरहिणी हैं तथापि इनके सम्पर्क, आलाप और सेवासे हम धन्य-धन्य हो रही हैं। इनको अपनी गोदमें, अपनी छायामें लेकर यह वृक्षावली भी धन्य-धन्य हो गयी है। श्रीसद्गुरुदेव और ईश्वरकी कृपासे इनकी मधुर स्मृतिसे चुम्बित यह वृक्षावली ही हमारे हृदय, मस्तक और नेत्रोंमें अविचल निवास करती रहे—यही हमारी हार्दिक अभिलाषा है। सखि! तुमने सत्य ही कहा है कि आज श्रीरामचन्द्रके लिये दशों दिशाओंमें अन्धकार-ही-अन्धकार होगा। उन सूर्यकुलोद्भव वैदेहीबन्धु राजर्षि राघवका हृदय छिन्नभिन्न हो गया। रात दिन, आठोंपहर आँखोंसे आँसुओंकी धारा प्रवाहित होती रहती है। मेरी माता वासन्तिका पवनके

घोड़ेपर चढ़कर वहाँ गयी थीं और सब समाचार अपनी आँखों देख आयी हैं। उन्होंने वहाँ जाकर देखा—महाराज श्रीरामचन्द्र एकान्त भवनमें इस प्रकार व्याकुल हो रहे हैं जैसे किसीको सहस्र-सहस्र बिच्छुओंके डंक लग रहे हैं। शरीर काँप रहा है। आँखोंके सामने अँधेरा होनेके कारण कभी स्फटिककी दीवारसे कभी मणिमय खम्भोंसे टकरा जाते हैं। कभी हँसते हैं, कभी रोते हैं। अपनी प्यारी सास वसुन्धराको आलिङ्गनकर छटपटाते हैं। इधर-से-उधर लुढ़कते हैं। कभी-कभी अपने-आपही कहने लगते हैं—"कालागुरुचन्दनके धुएँ के धौरहरोंसे शोभायमान आश्रमोंमें वैखासकन्याओंके साथ क्रीडामें संलग्न मेरा हृदयेश्वर, मेरा प्यारा सखा मुझे प्रीति की परीक्षा में शठ समझकर, अकेला छोड़कर चला गया।" उसी समय कोकिल 'कुहू-कुहू' कूज उठी। महाराज श्रीरामचन्द्र उठ खड़े हुए और प्रेमभरी वाणीसे 'प्रिये, प्रिये' पुकारने लगे। 'हा प्रिये, हा प्रिये !' (सारी सत्सङ्ग सभामें रोदन)।

शारदा बोलीं—बेटी ! परम धर्मात्मा रामने कोई अपराध न होनेपर भी जो अपने प्राण-जीवन श्रीजानकी-चन्द्रको वनवास दिया है वह केवल लौकिक धर्मनीतिके पालन करनेके कारण ही है। मनसे तो वह कभी करोड़ कल्प-तक भी त्याग नहीं कर सकते हैं, क्योंकि उन हृदयलक्ष्मी श्रीसियास्वामिनीकी अमृतभरी रसाञ्जन दृष्टि, अङ्ग-प्रत्यङ्गकी कमनीय कोमलता, शीतलता, मनमोहनी मधुर मूर्ति, सरल सलज्ज फड़कते अधरवाली, गम्भीर मानमयी आदरणीय सतीगुरुकी पवित्र झांकी अनन्त युगोंतक उनकी दृष्टिसे बाहर नहीं निकल सकेगी।

वासन्तिकाने कहा—जान पड़ता है महाराज श्रीरामचन्द्रको श्रीजनकनन्दिनीके अनुपम सौन्दर्यके सामने अपनी छवि कुछ फीकी-फीकी छायाके समान मालूम पड़ी। इससे ईर्ष्यावश उन्होंने अपनेको अभिमानी कर लिया है, परन्तु इससे तो उन्हींको दुःख होगा, वेदना होगी, रोना पड़ेगा। उनके सुखका उपाय तो यही है कि जिस प्रकार आदर, श्रद्धा और प्रेमसे उन्होंने अपने हृदयमन्दिरमें श्रीमैथिलीचन्द्रके चरणकमलोंको विराजमान किया है वैसे ही फिर और किसी दूसरेको वहाँ पाँव न रखने दें तभी कृपाभरी स्वामिनीजीकी प्रसन्नता प्राप्त करेंगे।

ग्रीष्मा कहती है—महाराज श्रीरामचन्द्रकी आँखोंके सामने अपने विपत्संगी परमप्रियतम पार्थिवचन्द्रकी मूर्ति अखण्ड एकरस विराजमान रहती है। रङ्ग-बिरङ्गे नाना रसतरङ्गोंसे अनुरञ्जित भोली-भाली सरल सलोनी नवरङ्गी प्यारी-प्यारी सप्तद्वीपवती पृथ्वीका राज्यशासन करते हुए भी वे सुख और भोगको विषके समान समझते हैं। अपने प्रियतम सखाकी प्रतीक्षा करते-करते ही तारे गिन-गिनकर रात और घड़ी-पहर गिन-गिनकर दिन, दिन पर दिन, रात पर रात, पक्ष, महीने, सरदी, गरमी, शरद्, वसन्त व्यतीत कर रहे हैं। वे बेझरकी रोटी और छाछ खाते हैं। ठण्डा जल पीनेके लिये उठाते हैं, परन्तु श्वास और आसुओंके उत्तापसे वह उष्ण हो जाता है। अपनी परम प्रेयसी पमाकी विरहव्यथामें मग्न कौशलेश्वरकी सत्श्री वाह गुरु रक्षा करें। आओ सखि! अब नृत्य करके श्रीमैथिलीचन्द्र

दूलहके गुण गीत गा-गाकर इनके व्याकुल हृदयको प्रफुल्लित और आनन्दित करें।

मैथिलि, रघुवर तरु तुम बेली।

बिलग न होहुँ नवेली छिनभर मिली रहो मनमेली।
ज्यों श्रीराधा मनमोहनसों शिवसों उमा अलबेली॥
कमला कमलापतिसों निशिदिन करत रहत रसकेली।
त्यों राघवसों ओसोयसहेली बिहरे गल भुज मेली॥
अवध महलकी सरस नवेली तिरहुतकी जनमेली।
प्रात समय प्राची उदयाचल भुवनदीप दरशेली॥
फूलोंकी डाली करपल्लवमें महर्षि राम श्रीसिय चेली।
सुमन सरोवर वर वनवासिनि वैदेही, रँगरेली॥
करत सदा जीवे श्रीसिय स्वामिनि चन्द्रवदन चमकेली।
गरीबि श्रीखण्ड बलि बलि जाउँ मधु-मधु धार बहेली॥

इस प्रकार वनदेवियाँ निर्मल गुणोंका गान करके नृत्य करने लगीं; परन्तु उनके हृदयमें श्रीस्वामिनीजीके दुःखका स्मरण करके वेदनाका एक समुद्र उमड़ पड़ा। वे दुःखी हो गयीं। विचार करने लगीं—"अब कोई-न-कोई ऐसा उपाय करना चाहिये जिससे यह वियोगके दिन कभी न आवें। श्रीस्वामिनीजीकी क्या दशा है? इनका शरीर दिन-दिन स्वामीके सोचमें ढलता जा रहा है। यह वियोगसे पीड़ित हैं, विरहकी मूर्ति बन रही हैं। अब श्रीमैथिलीचन्द्रजी शीघ्र ही अपने व्याकुल स्वामीसे मिलकर सुखी हों इसकी क्या युक्ति है? इनकी क्षण-क्षण वर्द्धमान व्याकुलता, इनके शरीरका

दौर्बल्य देखकर हमारे प्राण दिनरात 'हाय-हाय' करते रहते हैं। अब देर करना ठीक नहीं है।"

तत्काल निश्चय हो गया। वनदेवी वासन्तिका अपने तपोबलसे सबकी आँखोंसे ओझल हो गयी और विरह-ज्वरसे व्याकुल श्रीरामचन्द्रसे एकान्तमें जा मिली। अचानक ही उन्हें देखकर महाराज रामचन्द्र उन्मत्त-से होकर बोले—"हा देवी! हा सखि! मेरे प्राण, मेरी जीवन-ज्योति कहाँ हैं? कुशलसे तो हैं न? क्या तुम उनका कोई सन्देश लायी हो? बताओ! बताओ!! मेरे ये दुःखी प्राण उनकी बातें सुननेके लिये सदा तड़पते रहते हैं!

वासन्तिकाकी आँखोंसे अश्रुधाराकी झड़ी लग गयी। बोली—"महाराज! प्रेममूर्ति स्वामिनीकी विरहव्यथाका वर्णन वाणीके सामर्थ्यसे बाहर है। अब बातोंका समय नहीं है। पलभरका विलम्ब भी अनर्थकारी है। अब वे इससे अधिक दुःख नहीं सह सकतीं। अब उनकी 'जीवन-ज्योति विरहकी आँधीका सामना नहीं कर सकती। उनका जीवन वृक्षके जीर्ण शीर्ण पल्लवकी भाँति लड़खड़ा रहा है। चलिये! मेरी बात मानिये। सोचविचार मत कीजिये। महाराज! उन्हें जीवनदान दीजिये।"

अब महाराजका सिंहासन डोल गया। उनका हठ, दृढ़ता, धैर्य और बाह्य निष्ठुरता काफूर हो गयी। पुष्पक विमानसे तुरन्त महर्षि वाल्मीकिके आश्रमपर आ पहुँचे। वासन्तिकाने उन्हें पासकी गुफामें विराजमान करके श्रीस्वामिनीको यह शुभ समाचार सुनाया। सुनते ही मानो कानोंमें

किसीने अमृत उँड़ेल दिया हो। शरीरके दुर्बल और सामर्थ्य-हीन होनेपर भी हर्षावेगसे प्रफुल्लित होकर प्रेमके आवेशमें अपनेको भूलकर नयी चेतना, नयी स्फूर्ति और नये उमङ्गसे भरकर अपने प्यारे जीवनधन हृदयेश्वरके दर्शन हेतु प्रेमकी भूखी स्वामिनी—"मेरे स्वामी आये! मेरे प्राण आये! मेरे सर्वस्व आये!! मेरे प्रियतम,मेरे स्वामी,मेरे हृदयेश्वर! तुम कहाँ हो? कहाँ हो?" इस प्रकार प्रलाप करती हुई महाराज श्रीरामचन्द्र जिस गुफामें विराजमान थे, उसके द्वारपर जा पहुँचीं मानो आनन्दके,प्रेमके दो समुद्रोंका सङ्गम हो गया हो?

यह वर्णन करते-करते कोकिल स्वामी भावमग्न होकर गा उठे—

मैथिलि तेरे आवन पै बलि जैये।
आवौ घर पार्थिवचन्द्र प्यारे हृदय निकुंज बसैये।
गुरु परमेश्वर तेरी पति राखी सुख सहजसेती घर ऐये॥
आनन्द मङ्गल गुण गाउँ सहज धुनि अविचल राज कमैये।
द्वेषी तुम्हरे 'अमर' आप निवारे विरह विपत विनसैये॥
सेज सुहावनी सुख पति नींदमें राघव राम रिझैये।
प्रकट कियो तेरो जसु परमेश्वर दुष्ट दुश्मनहिं लजैये॥
तेरो जय-जयकार सकल भूमण्डल मुख उज्जल विगसैये॥
आनँदघन प्रभु अचरज कीया गुरुनानकपै बलि बलि जैये॥

प्रेममूर्ति श्रीकिशोरीजीको अपने चरणोंपर गिरते देखकर उनकी यह दीन दशा, यह शील-स्वभाव, यह विरह-कृश शरीर देखकर महाराज श्रीरामचन्द्र अत्यन्त करुणासे

व्याकुल हो उठे, तड़प उठे। दोनों विशाल भुजाओंसे खींचकर हृदयसे लगा लिया। विकल होते, प्रलाप करते, दृढ़ बाहु-पाशमें बाँधते और फिर आश्चर्यचकित होकर देखते कि यह स्वप्न है या सत्य है ? वनदेवीने उन्हें चेत कराया। सजग हुए। एक सिंहासनपर युगलसरकार विराजमान हुए। वन-देवियाँ आरती सजाकर नाच-नाचकर मङ्गलगान गाने लगीं। वनके वृक्ष, लता, पत्र, पशु-पक्षी, एक-एक कण आनन्दमय मधुमय, मङ्गलमय हो गया। मधुर-मधुर फलोंका भोग लगा। प्रसादवितरण हुआ। गीत गाये जाने लगे—

आनँद भयो आँगनमें आये आनँदकन्द।
लौं लालनसे लाई रसिकन मणि रघुचन्द॥
ततसुख सिय साहब सदा सन्तोंमें सिरताज।
मगन अमर रसमें सदा मैथिलिचन्द्र महाराज॥
सरल शील शुचि साधुतासे भरी सती गुरु साथ।
रग-रगसे आशीष हो रसिकनमणि रघुराय॥

नामसंकीर्तनकी धूम

भगवत्प्रेमकी वृद्धिके लिये सत्सङ्ग, ध्यान, स्मरण, कथा-प्रवचन एवं लीलाचिन्तन सभी आवश्यक और उपयोगी हैं, परन्तु नाम-जप और नाम-सङ्कीर्तन सभी साधनोंका शिर-मौर है और सबका निचोड़ है। नामधुनसे सोती चेतना जागती है। विक्षिप्त प्राण स्थिर होते हैं। मनके प्रमाद आलस्य, निद्रा आदि तमोगुणी दोष दूर हो जाते हैं। तन्म-

यताकी वृद्धिसे मनकी घुड़दौड़ मिटजाती है। स्थिरता और पवित्रता की वृद्धिसे नामके द्वारा भगवान् और उनकी लीलाकी स्मृति होती है। स्मृतिसे लीलाका प्रादुर्भाव होता है। लीलाके प्रादुर्भावसे सहज ही प्रेमका ऊर्ध्व स्रोत खुल जाता है। नाम एक ऐसा चुम्बक है जो जीवको मृत्युलोकसे खींचकर अपने प्रियतम प्रभुके लोकमें पहुँचा देता है।

बृहस्पतिवारको जब कथा-सत्संगका आनन्दसमुद्र उमड़ उठता तब कुछ समयके बाद भोजन आदिसे निवृत्त होकर सब सत्संगी सन्त कोकिलजीके पास जुड़ जाते और एक भक्त आगे-आगे और उसके पीछे सब भक्त मिलकर पद-गान करते तथा उस मधुर आनन्दमें लोटपोट हो जाते। भावावेशमें मग्न होकर उठ खड़े होते। नाच उठते और वे ही क्यों, उनके रोम-रोम, नस-नस रसकी वृद्धिसे फूल उठती। ऊँचे स्वरसे नामकी ध्वनि बाहरी वातावरणको ही नहीं, लोगोंकी मनोवृत्तियोंपर भी काबू पा लेती। भेरी और करतालोंके शब्दसे आकाश गूँज उठता। नामकी उस मधुर ध्वनिमें भक्तगण अपने शरीरकी सुधबुध खो बैठते। आत्म-विस्मृत होकर गिर पड़ते। सेवामें नियुक्त लोग खींचकर उन्हें बाहर लाते, चेतना लाभ कराते। परन्तु सजग होनेपर वे फिर पूर्ववत् उत्ताल तालकी तरङ्गमें बह जाते और उद्दाम नृत्यमें मग्न हो जाते। मण्डपसे बाहर खड़े मोहमदके प्यारे मुसलमान लोग भी नामध्वनिकी मधुरतासे आकृष्ट होकर नाचने लगते। जिस समय सब लोग नाम-ध्वनिमें मग्न हो जाते, मण्डपके ऊपर दिव्य किरणें छा जातीं और एक

झिलमिल-झिलमिल प्रकाश होने लगता। इस दिव्य ज्योतिको देखकर बाहरी लोग भी आश्चर्यचकित हो जाते। उस समय सन्त कोकिलजी अपने आसनपर ही खड़े होकर अपने चरण-कमलोंसे धीरे-धीरे ताल देने लगते। उनका यह मधुर लास्य देखकर भक्तमण्डलीका उत्साह बढ़ जाता और सन्त कोकिल-जीकी स्थिर और खुली दृष्टि एक दिव्य आनन्दका अनुभव करने लगती थी। जिन लोगोंने देखा है उनकी आँखोंके सामने वह बात अब भी ज्योंकी त्यों है कि उस समय प्यारे साईंके मुखारविन्दपर एक दिव्य ज्योति छिटक जाती मानों हृदयका आनन्द छलककर बाहर आ गया है और भक्तोंपर बरसकर उन्हें उन्मत्त बना रहा है।

सन्त कोकिलजी नाम-जप, कीर्त्तन, लीला, ध्यान, प्रवचनके सिवा उपनिषद्, योगवासिष्ठ आदि वेदान्तग्रन्थोंका भी स्वाध्याय करते थे। इनमें उनका पूरा प्रवेश था। समय-समयपर उन्हें समाधि लग जाती थी और जिज्ञासु जनोंको तत्वविषयक श्रवण भी कराते थे। उन्होंने बृहदारण्यक उपनिषद्, पञ्चदशी आदि वेदान्तके ग्रन्थ हिन्दीमें लिखे और लिखवाये। निरोधसमाधि किस प्रकार सिद्ध होती है इसके सम्बन्धमें उन्होंने एक ग्रन्थ भी लिखा है।

———

हरिद्वारमें 'सोऽहं'का त्याग

सन्त कोकिलजी एकबार दो-तीन सेवकोंके साथ हरिद्वार गये। हरिद्वार ज्ञानभूमि है। वहाँके पहाड़, जङ्गल, गङ्गाजीका जल सभी चित्तको शान्ति देनेवाले हैं। हरिद्वारके दर्शनसे गङ्गास्नानसे श्रीस्वामीजीको बड़ा आनन्द हुआ। श्रीस्वामीजीके साथ थलेके महात्मा श्रीटहेल्यारामजी साहब थे। उनका श्रीस्वामीजीमें सद्गुरुका भाव था; परन्तु श्रीस्वामीजी उन्हें अपना सखा ही मानते थे। श्रीस्वामीजी पर उनकी अतिशय श्रद्धा एवं प्रीति थी। एक दिन गङ्गास्नान करनेके अनन्तर टहेल्यारामजीने कहा—"श्रीस्वामीजी, तीर्थ स्थानमें आकर सब लोग कुछ-न-कुछ छोड़ते हैं। हम भी यहाँ कुछ-न-कुछ त्याग करें।"

श्रीस्वामीजीने कहा—"पहले तुम छोड़ो तो फिर मैं भी छोड़ूँगा।"

टहेल्यारामजी बोले—"आजसे मैं ईश्वरकृपासे प्रतिज्ञा करता हूँ कि झूठ कभी नहीं बोलूँगा।"

श्रीस्वामीजी—"अच्छा, मैं अब आजसे अभेदवादकी चर्चा छोड़ता हूँ।"

फिर टहेल्यारामजी बोले—"आप पहले कह देते तो मैं भी यही छोड़ता।"

श्रीस्वामीजी घूमते फिरते कनखल आये। सेवकोंसे भगवत्सम्बन्धी बातचीत होती रही। एक सेवकने कहा—"श्रीस्वामीजी! आजतो ध्यान—स्मरण बिलकुल नहीं हुआ। हरिकी पौड़ी का दृश्य दिल-दिमागमें भर गया है। आँख बन्द करो तो वही दिखता है। अब मैं कलसे वहाँ नहीं जाऊँगा।"

श्रीस्वामीजी बोले—"निर्मल अन्तःकरण भी दो तरहके होते हैं—एक स्फटिकके समान और दूसरा हीरेके समान। दोनों ही स्वच्छ और प्रकाशित होते हैं. परन्तु एक बाहरकी परछाईं ग्रहण करता है और दूसरा नहीं। वह तो दूसरोंपर अपनी किरणें डालता है। बाहरके संस्कारोंकी छाप न लेना ही हीरेका काम है। भक्तका हृदय हीरेका-सा होना चाहिये, स्फटिकका सा नहीं। तापसे कोयला भी हीरा हो जाता है। भगवत्प्राप्तिके लिये चित्तमें जितना ही ताप हो उतना ही वह शुद्ध, पक्क और ठोस बनता है। फिर किसी दूसरेके प्रतिबिम्ब उसमें नहीं पड़ते और उसकी भाव-रश्मियोंका प्रकाश सबके ऊपर पड़ने लगता है।

व्रजागमन

भगवान् सर्वत्र हैं; परन्तु सबमें कैसे हैं, क्या हैं, सबके साथ उनका क्या सम्बन्ध है यह बात जीवको सुगमतासे नहीं जान पड़ती। इसीसे परमकृपालु सर्वेश्वरने अपने गुप्त धामको जीवोंके कल्याणके लिये प्रकट कर दिया है। धाम उसे कहते हैं जिसकी रजसे, पत्थरसे, पेड़से, पानीसे, रोशनीसे, गरमीसे, ठण्डसे, हवासे, आसमानसे, पशुसे, पक्षीसे, मनुष्यसे अर्थात् सब वस्तुओंसे अपने प्यारे प्रभुका सीधा सम्बन्ध दीख पड़े। मुरलीमनोहर पीताम्बरधारी साँवरे सलोने व्रजराजकुमारका सीधा सम्बन्ध व्रजभूमिकी प्रत्येक वस्तुके साथ है। इसीसे यह उनकी नित्यलीलाभूमि है। यहाँकी रजमें वे लोटे हैं। यहाँके पत्थरपर वे बैठे हैं। यहाँके वृक्षोंपर वे चढ़े हैं। होलीके दिनोंमें यहाँके गधेपर भी वे सवार हुए हैं। यहाँके पक्षियोंके साथ वे चहके हैं। यहाँकी गायोंके बछड़े बने हैं और ग्वालिनियोंके बच्चे। सबके शिरोमणि तो सदासे ही हैं। यहाँ चोर-जार-शिखामणिका पद भी स्वीकार करके अपनेको गौरवान्वित अनुभव करते हैं। यहाँकी झाड़ियोंमें, झुरमुटोंमें घूमते हुए प्रेमीलोग अब भी गाते रहते हैं—

यहीं कहूँ स्याम काहू कुञ्जमें रमत ह्वै हैं,
भुजभरि भेंटिबेकौं हिय उमहत है।

व्रजभूमिका जितना सम्बन्ध श्रीकृष्णसे है उतना ही बल्कि एक अर्थमें उससे भी अधिक सम्बन्ध उनके प्रेमियोंसे

है। वास्तवमें व्रजभूमि प्रेमभूमि है और इसके धनीधोरी प्रेमी हैं। यहाँ प्रेमी दाता हैं और श्रीकृष्ण ग्रहीता। और सर्वत्र श्रीकृष्ण दाता हैं तथा भक्तजन ग्रहीता। इसीसे जो प्रेमके सच्चे इच्छुक हैं उनके मनमें इस धामके दर्शनकी इच्छा होती है और वे यहाँ आकर प्रेमरत्नकी पिटारी प्राप्त करते हैं।

सन्त कोकिलजीके मनमें व्रजभूमिके दर्शनकी उत्कट इच्छा रहा करती थी। जब वे द्वारिकामें थे तब भी विदर्भ-राजकुमारी श्रीकृष्णपट्टमहिषी श्रीरुक्मिणीसे और कुछ नहीं चाहते थे, केवल शुद्ध प्रीति ही चाहते; मानो अब उसकी पूर्णताका समय आ गया। जो बात मनमें रहती है सो एक-न-एक दिन प्रकट होकर रहती है। श्रीस्वामीजी कुछ भक्तोंके साथ श्रीवृन्दावनधाम आगये।

अच्छा, तो यह वृन्दावन है। इसके प्रत्येक कण आनन्द और प्रेमके मूर्तस्वरूप हैं। जैसे श्रीवृषभानुनन्दिनी श्यामसुन्दरको प्रेमसे परिवेष्ठित रखती हैं वैसे ही भानुनन्दिनीजी वृन्दा-वनको तीन ओरसे। ब्रह्मा, उद्धव आदि बड़े बड़े प्रेमी भक्त और देवता वृक्षों एवं लताओंके रूपमें यहाँ निवास करते हैं और अपने नीचेकी ओर विहार करते हुए युगलकिशोरको भर आँख देखते हैं। अपनी छाया, पत्र, पुष्प, फल, अंकुर, सुगन्धि, निर्यास आदिसे उनकी सेवा करते हैं। उन्हींकी भुजाओंके आश्रित होकर रङ्गबिरङ्गे पक्षी कलरव करते रहते हैं। भावसे देखनेपर इस वृन्दाबनकी प्रत्येक वस्तुमें एक मधुर नृत्य, प्रेमपूर्ण सङ्गीत और अद्भुत आकर्षण मिलता है।

श्रीअवधसरकार और श्रीव्रजसरकारका मधुरमिलन

श्रीस्वामीजी जब श्रीवृन्दावन आये, प्रभुके नाम और भक्तिसे परिपूर्ण उनके चरणचिह्नोंसे अंकित मधुर लीलाओंकी स्मृतिमें मग्न इस पवित्र व्रजभूमिको देखकर अत्यन्त आनन्दित हुए। यमुनाके तटपर सुन्दर-सुन्दर वृक्षपंक्तियोंको चूमते हुए नीलकान्त जलको देखकर श्रीस्वामीजी भावावेशमें मग्न हो गये। उनके नेत्रोंके सामने श्रीयुगलप्रियतम श्रीसियारामजीका वह लीलाविहार छा गया जो उन्होंने यमुनातटपर किया था उन्होंने देखा कि यमुनातटपर वनवासी श्रीसियारामचन्द्र एवं लक्ष्मण विराजमान हैं। श्रीमहाराज वृन्दावनकी शोभाका वर्णन कर रहे हैं—"प्रिय! यह देखो, कलिन्दनन्दिनीका कल-कल निनादी प्रवाह! इसकी प्रखर धारामें सैकड़ों वृक्ष खण्ड-खण्ड होकर बहते है। शिखण्डी कूद रहे हैं। वनवासी, तपस्वी मृगेन्द्रवनिताके स्तन का दुग्ध पान करते हैं। कर्पूरधवल और श्यामल बालुकाओंका पुलिन! घासोंकी हरियाली तो ऐसी है मानो मखमली कालीन बिछ रहे हों! सामने ही वसन्त-सरसी है जिसमें कुमुदिनी खिल रही है। लक्ष्मण, यह कोकिल-कलकण्ठ-कूजित हंसनिनादित श्रीअयोध्या ही श्रीधरणिनन्दिनीको प्रसन्न करनेके लिये यहाँ आयी जान पड़ती है। देखो, यह घनी और शीतल छायावाला वृक्ष मधु-स्रावी है। स्वच्छ जलपर छोटी-छोटी तरङ्गें कितनी मनोहर मालूम पड़ती हैं! रायवेलाकी भीनी-भीनी महक बटोहियोंको कितना सुख देती है! यह है मधुकरबधूनिपीत कमलवन!"

महाराज श्रीरामचन्द्रके मुखारविन्दसे सुखद यमुना-तटकी महिमा सुनकर श्रीसन्तकोकिलजीके मनमें यह भाव उदय हुआ कि व्रजविहारी वृन्दावनेश्वर यमुनातटविलासी श्रीश्यामाश्यामजू अपने पवित्र प्रदेशमें आये हुए हमारे वन-वासी सम्राट् श्रीसियारामका आतिथ्य-सत्कार करनेके लिये आ रहे हैं। सचमुच गहवर वृक्षावलीसे दिव्यज्योति छिटकाते हुए, आनन्द बिखेरते हुए प्रेमोन्मत्त प्रिया प्रियतम शत-शत सखियोंके साथ दही, दूध, माखन, मिश्री, फल-फूल भेंट ले आये और बड़े उल्लाससे श्यामज्योति श्यामसे और गौरज्योति गौरसे मिलकर एक हो गयी।

शिष्टाचारके अनन्तर श्रीरामचन्द्रके वनवासी वेशकी छबि देखते हुए श्रीकृष्णचन्द्रने कहा—"अहोभाग्य, अहो-भाग्य सरकार! आप इसी वनमें निवास कीजिये। यह तो आपका ही है। इससे पिताजीकी आज्ञाका पालन भी हो जायगा और हम सब नाच-गाकर, वंशी बजाकर आपका मनोरञ्जन करके सुखपूर्वक अवधिके दिन बितायेंगे। हमारे लिये तो यह बड़े ही सुख और सौभाग्यकी बात है।"

महाराज श्रीरामचन्द्रजीने मुसकराकर श्रीकृष्णचन्द्रका आलिङ्गन किया और बोले—"प्रियसखे! हम तुम तो एक ही हैं। यहाँ रहना तो अयोध्यावासके समान ही है। बनवास कैसे होगा? यह सब तो लीलामात्र ही है। तुम यहाँ लीला करो, मैं जरा दक्षिणकी ओर हो आऊँ। दोनों मुसकराये और आलिङ्गनपाशमें बँधकर एक हो गये

दूसरी ओर श्रीवृषभानुनन्दिनी बड़े प्रेमसे, आदरसे श्रीभानुकुलभानुकी प्राणप्रिया श्रीकिशोरीजीका स्वागत सत्कार करके बोलीं—"आपके दर्शनसे मेरे हृदयमें आनन्दकी बाढ़ आ गयी है। आप यह कभी न सोचें कि मैं वनमें आयी हूँ। हमें सुख और सौभाग्य देनेके लिये ही आपने वनमें आगमनका बहाना बनाया है। आजका दिन धन्य है, धन्य है। आज उन्मुक्त हृदयसे आपसे मिलनेका अवसर मिला है। अब आप सब यहीं—इसे ही अपना घर समझकर विराजें।"

प्रेममूर्ति श्रीलाड़िलीजी श्रीमैथिलिचन्द्रको अपनी गोदमें बैठाकर बार-बार आलिङ्गन करने लगीं और अपने अंचलसे उनके पथश्रमजन्य स्वेद-बिन्दुओंको पोंछने लगीं और माधुर्यमें डूबकर आशीर्वाद-संगीत गाने लगीं।

श्रीमैथिलि तेरे आवन पै बलिजाऊँ।

जुग-जुग जिओ श्रीजानकी जीजी मुरली मधुर सुनाऊँ॥
जुग-जुग जिओ श्रीजानकी अद्दी (बहिन)।
राज करो रसनिधि राघवसे अचल चँवर छत्र गद्दी॥
क्रोड़ कालिन्दी सिन्धु सरसुती तेरे पदमें पवित्र विष्णपदी।
विष्णु, विधाता, शङ्करने तेरे लाड़से पदवी लधीं (प्राप्तकी)॥
उमा रमा शचि सावित्री देवी पदकंज सेवा कँदी (करेगी)।
रसभरी राधा आशीष करत है गरीब श्रीखण्ड तो सँदी (तुम्हारी है)।

यह समाज देखकर श्रीभक्तकोकिलजी आनन्दमें मग्न होकर श्रीवृन्दावनेश्वरी एवं श्रीअवधेश्वर-हृदयेश्वरी युगल स्वामिनियोंको अपने अन्तर्हृदयसे आशीर्वाद देने लगे; क्योंकि

गरीबिश्रीखण्ड इन्हींकी चिर सेविका हैं। उनका सम्पूर्ण जीवन और रोम-रोम आशीर्वादरूप ही है। हे श्रीस्वामिनीजू! वृन्दावन-निकुञ्जेश्वरी आपको आशीर्वाद देती हुई हमारी सिफारिश कर रही हैं कि यह गरीबिश्रीखण्ड हमारे व्रजधाम में रहकर चिरकाल तक आपकी सेवामें संलग्न रहे। इसी समय आनन्दकन्द व्रजचन्द श्रीकृष्णचन्द्र सखाओंसे उठवाकर भोजन-सामग्री वहाँ ले आये। यमुनाके तटपर दोनों स्वामी एवं दोनों स्वामिनी साथ-साथ बैठकर आरोगने लगे और दोनोमें यमुनाजल भर-भरके पीने लगे। सखियाँ सितारपर मधुर-मधुर सङ्गीत गाने लगीं। सभीने मधुर प्रसाद पाया।

एक मित्रको मानसी सेवाका उपदेश

भक्त कोकिलजी एक मित्रको साथ लेकर सन्तोंका दर्शन करनेके लिये गये। मदनमोहनजीके मन्दिरके पास बङ्गाली महात्माओंका दर्शन करनेके समय अपने मित्रको तो बाहर बिठा दिया और आप स्वयं भीतर गये। स्वामीजीने सब महात्माओंको फल-फूल भेंट करके बड़ी नम्रतासे दण्डवत् प्रणाम किया। उनके पूछने पर बताया—"मैं सिन्धका रहने वाला एक गरीब गृहस्थ हूँ। आप सब सन्त हैं। मुझे ऐसा आशीर्वाद दीजिये कि मुझे प्रभुका सच्चा अनुराग प्राप्त हो।" स्वामीजीकी निर्मल श्रद्धा और अद्भुत नम्रता देखकर महात्मा बहुत प्रसन्न हुए और बड़े प्यारसे मस्तकपर हाथ रखकर आशीर्वाद देने लगे—"श्रीकृष्णे मतिः श्रीकृष्णे मतिः श्रीकृष्णे मतिः!" श्रीस्वामीजीने लौटकर अपने मित्रसे कहा—"सन्त

कृपाभरे बैठे हैं। दर्शन करके आशीर्वाद ले आओ।" वह वहाँ गया और तुरन्त लौट आया और बोला—"स्वामीजी, उन लोगोंने तो आशीर्वाद दिया नहीं, उल्टे मेरे पाँव पड़ने लग।" श्रीस्वामीजीने कहा—"तुमने अपना बड़प्पन बताया होगा।"

मित्र—मैंने अपनेको साधु बताया।

स्वामीजी—बस, यही कारण है। गुरुजनोंके सामने सदा नम्र होकर जाना चाहिये।

एक दिन एकान्त में उसी मित्रने प्रश्न किया कि "स्वामी, कृपा करके मेरे लिये कोई अन्तरङ्ग भाव बतलाइये जिसके अनुसार मैं युगलसरकारकी सेवा करूँ!

साईंने कहा—"तुम यह भाव करो कि मैं युगलसरकारके पुष्पोद्यानके मालीका बालक हूँ। मेरा नाम मौलू है और रोज सुन्दर-सुन्दर पुष्प चुनके, उन्हें सजाकर, माला बनाकर राजमहलमें ले जाता हूँ। वहाँ रनिवासके द्वारपर बालिका श्रीखण्डदासी मिलती है और मुझसे शृङ्गार-सामग्रीकी डलिया लेकर मुझे एक चपत रसीद कर देती है।

मित्र बोले—आप यहाँ तो मुझे चपत लगाते ही हैं, वहाँ भी यही पुरस्कार मिलता रहेगा?

श्रीस्वामीजीका अभिप्राय यही था कि मधुररसके जो अन्तरङ्ग भाव हैं उनमें एकाएक सबकी स्थिति नहीं हो सकती सेवा छोटा बनकर शुरू कीजाती है और कृपालु स्वामी अपने विश्वासपात्र और सच्चे सेवकको स्वयं ही

अन्तरङ्ग बना लेते हैं। इसी से पहले किसी अन्तरङ्ग मधुर भावका उपदेश न करके मालीके बालकका भाव दिया गया।

बरसानेमें

व्रजमें वैसे तो एक-से-एक बढ़कर महावन, ब्रह्माण्ड-घाट, गोवर्धन, कामवन, नन्दगाँव आदि स्थान हैं, कुञ्ज हैं, सरोवरहैं; परन्तु बरसानेके सम्बन्धमें तो यहाँके वे भोले-भाले व्रजवासी जो सरोवरोंमें मुँह लगाकर पानी पी लेते हैं, रसिया गा-गाकर नाचते हैं—

"जो रस बरस रह्यो बरसाने, सो रस तीन लोकमें नायँ ?"

"मीठो लगत बरसानेकी गलियाँ,
जहँ विहरत श्रीराधाकी अलियाँ।"

वहाँके सीधे-सादे सरल प्रकृतिके लोगोंको देखकर श्रीस्वामीजी बहुत प्रसन्न हो गये। तब वह गाँव बहुत ही छोटा-सा था। मन्दिर भी एक छोटे-से चबूतरेके समान था। एक पुजारी सेवा-पूजा करके चला जाता था। बाँसकी लकड़ियों का किवाड़ था मानो श्रीवृन्दावनाधीश्वरीने अपना समस्त ऐश्वर्य छिपा रखा हो। उस एकान्त स्थानमें टीलेके ऊपर हरा-भरा वृक्षावलीसे ढके हुए छोटेसे मन्दिरमें श्रीस्वामीजी जाते और भावावेशमें छः छः घण्टे तक मग्न रहते। बाहरकी सुधि-बुधि सब भूल जाती। वे कभी लीला-चिन्तनमें तन्मय हो जाते और कभी श्रीवृन्दावनेश्वरीसे विनय करते।"

"हे कृपानिधे ! मैं दीन हूँ, आर्त हूँ, भीत हूँ, भूखी हूँ, बलहीन हूँ. परन्तु तुम्हारी शरणमें आयी हुई हूँ। आप कृपा

करके श्रीपार्थिविचन्द्रके चरणोंमें मुझे परा-प्रीतिका दान कीजिये, क्योंकि मेरे लिये वही परम सुख है, परमानन्द है।

उस प्रमोदविपिनमें जिसमें शुक-शुकी, कोकिल, मोर, चकोर कलरव करते हैं श्रीपार्थिविचन्द्र स्वच्छन्द भावसे अहर्निश प्यारसे भरी रुचिसे रोचित रहकर आनन्दक्रीडामें संलग्न रहें और मेरा हृदय उनके श्रीचरणकमलोंमें लोट-पोट हुआ करे।

हे देवि ! श्रीपार्थिविचन्द्रके स्नानमें, मृगमदादि विले-पनमें, देवार्चनमें, वीहड़वनमें, केलि-शयनमें, विनोदवार्तामें उनकी सब लीलाओंमें उनके ललित-ललित चरणकमलोंमें मैं अपना हृदय लुटाती फिरूँ !

हे स्निग्धे मुग्धे शशिमुखि स्वामिनी श्रीराधे ! प्राणोंकी स्वामिनी ! मेरी रक्षा करो ! इस बच्चीको परमसुखप्रदा परा-प्रीति श्रीपार्थिविचन्द्रके प्रति प्रदान करो।

आनन्दिनी भूनन्दिनीके श्रीचरणकमलोंकी मुझे जूती बना दो। गरीबिश्रीखण्डिका सर्व आनन्द श्रीमैथिली-चन्द्र ही हों।"

श्रीस्वामीजी जिस समय व्रजमें विराजमान थे उस समय मीरपुरमें रहनेवाले भक्तोंको एक दिव्य चमत्कारका अनुभव होता था। बात यह थी कि मीरपुरमें श्रीस्वामीजी का एक अपना निजी मन्दिर है। उसमें श्रीअवधेश्वरी मिथि-लेशकुमारी श्रीजूमहाराजकी मूर्ति विराजमान थी। उस मन्दिरकी सब सेवा श्रीस्वामीजी अपने हाथों ही करते थे।

वहाँकी झाड़ू तक वे स्वयं ही देते थे। उस मन्दिरमें जानेकी आज्ञा किसीके लिये भी नहीं थी। यदि कभी किसी प्रेमीको मन्दिरका दर्शन कराते तो निष्कामताकी प्रतिज्ञा लेनेपर। मस्तक झुकानेको भी मना कर देते थे और कहते थे कि हमारे श्रीमैथिलिचन्द्रजीको आशीर्वाद करो—"जुग-जुग जियो श्रीमैथिलिस्वामिनि ! अचल हों तुम्हारे सुहाग भाग !"

जिस समय श्रीस्वामीजी मीरपुरसे कहीं बाहर चले जाते थे—जैसे व्रजमें ही आये, तब भी उस मन्दिरसे अचानक ही प्रातःकाल सितारपर मधुर सङ्गीत सुनायी पड़ता था जिसे सुनकर भक्तमण्डली आश्चर्यचकित हो जाती थी। एक प्रेमीको तो खिड़कीके रास्ते प्रतिदिन श्रीस्वामीजीका दर्शन भी प्राप्त होता था।

कोकिलभावका प्राकट्य

जीव भगवान्का नित्य दास है। भगवान्के साथ इसका एक अखण्ड सम्बन्ध है और इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि उसके बिना यह रह ही नहीं सकता। वह कभी मिटता नहीं; केवल विस्मृतिका एक परदा आ जाता है और यह भूला-सा, भटका-सा संसारमें इधर-से-उधर दौड़ने लग जाता है। जिस समय भगवत्कृपासे श्रवण, कीर्तन, स्मरण, दैन्य, विज्ञापना, लालसा, ध्यान, व्याकुलता और भावसे यह विस्मृतिका परदा हट जाता है उसी समय अपने स्वतःसिद्ध नित्यसम्बन्धकी चाँदनी हृदयाकाशमें फैल जाती है। सच्ची

कोकिल भाव में मग्न साईं

बात तो यह है कि इस संसारके सब जीव उसी समयकी उसी भावके प्राकट्यकी आशा लिये अपनी अस्वाभाविक स्थितिसे पीडित होकर भटक रहे हैं, छटपटा रहे हैं. चाहे वे साधक हों या असाधक। उस सम्बन्धके प्रकट हुए बिना कोई भी स्थिर नहीं हो सकता; कोई भी चैनसे नहीं बैठ सकता।

भक्त कोकिलजीका भगवान्से जो नित्य सम्बन्ध है वह क्या है ? कबसे है ? कब गुप्त रहा ? कब प्रकट रहा? इसको तो केवल भगवान् ही जानते हैं। स्वयं भक्त कोकिलजी भी यह सब कुछ बतानेमें असमर्थ हैं; परन्तु देखा यह गया कि जब वे व्रजभूमिसे लौटकर मीरपुर आये तब उनकी दशा अत्यन्त स्थिर एवं निश्चयात्मक भावमय हो गयी। मानो श्रीबरसानेमें दीर्घकालतक एकान्तमें श्रीस्वामिनी वृषभानु-नन्दिनी से जो कुछ उन्होंने बातचीत की थी, लालसा की थी वह पूर्ण हो गयी। एक विशेष भावका जो न जाने कबसे छिपा हुआ था, आविर्भाव हो गया।

यह बात पहले ही कही जा चुकी है कि भक्त कोकिलजी को श्रीभूनन्दनीके उस स्वरूप और लीलाकी सेवा प्राप्त हुई थी जो उन्होंने पुनर्वनवासके समय महर्षि वाल्मीकिजीके आश्रममें प्रकट की थी। जब जब श्रीस्वामीजीके हृदयमें इस भावका उदय होता कि श्रीरघुनन्दन रामभद्रजू महाराज प्रजापालनका भार अपने ऊपर लेकर भीतर-ही-भीतर श्रीजनकनन्दिनीके निर्वासन और विरहके कारण अत्यन्त व्यथित, पीडित, व्याकुल हो रहे हैं और इधर श्रीजनकनन्दिनी

परमसुकुमारी पतिप्राणा सतीगुरु सन्तस्वभावा श्रीवैदेही भी अपने प्राणप्रियतमके विरहमें अत्यन्त व्याकुल होकर जलसे अलग हुई मछलीकी भाँति छटपटा रही हैं, तब उनका हृदय व्याकुल हो जाता और उनका रोम-रोम मनका कोना-कोना इन दोनोंके मिलनके लिये, इन दोनोंको सुखी करनेके लिये आतुर हो उठता।

इस भावके उद्रेककी दशामें यह अपने मानवरूपको, दासी या सखी रूपका भी अतिक्रमण कर जाते और एक सुन्दर कोकिलके रूपमें उड़कर श्रीप्रियाजूके पाससे श्रीप्रियतमके पास और श्रीप्रियतमके पाससे श्रीप्रियाजीके पास आ-जाकर एक-दूसरेका सन्देश आदान-प्रदान करते। यह कोकिलभाव इतना दृढ़ और स्थिर देखा गया कि स्वामीजी लगभग सत्रह वर्षतक इसीमें तन्मय रहे।

एक दृष्टिसे विचार करें तो मालूम पड़ता है कि कोकिलका भाव बहुत ही मधुर एवं सेवाके अनुरूप है। यह संयोग और वियोग एवं ऐश्वर्य और माधुर्यकी सभी प्रकारकी लीलाओंमें उपयोगी है। कोकिलका स्वर विरहके समय मिलनकी उत्कण्ठा उत्पन्न करता है, मानको घटाता है, दूरीको कम करता है। संयोगके समय कोकिलका पञ्चम स्वर रसकी वृद्धि करता है। यह शृङ्गाररसका उद्दीपन है। कोकिल अपना ही पक्षी है इसलिये शृङ्गारकी अन्तरङ्गसे अन्तरङ्ग-लीलामें भी युगलसरकारको उनसे सङ्कोच नहीं है। पक्षी होनेके कारण इतनी स्वतन्त्रता है कि किसी भी महल या

कुञ्जमें प्रवेश करनेमें कोई रुकावट नहीं है। एक स्थानसे दूसरे स्थानमें जाने आनेमें विमानकी या महीनोंके समयकी जरूरत नहीं है। कोकिल निष्काम होती है। रोटी-कपड़ेकी समस्या हल नहीं करनी पड़ती। कहीं कुछ खा लिया और सेवामें सावधान रही। लङ्गोटीकी जरूरत नहीं। घर नहीं बनाना पड़ता। वृक्ष उन्हें बहुत प्यारे होते हैं, क्योंकि उन्हें उनमें युगलरूप माधुरीका दर्शन होता है। अधिकांश झुरमुटोंमें छिपी रहती हैं। श्रीजूमहाराज उनके अङ्गका रङ्ग देखकर प्रसन्न होते हैं। उनका सङ्गीत सुनकर युगलसरकार प्रसन्न होते हैं। जब कोकिल कभी कुहू-कुहू करने लगती है तब श्रीजूमहाराज उनकी मधुर तानके साथ अपना कण्ठ स्वर मिलाती हैं।
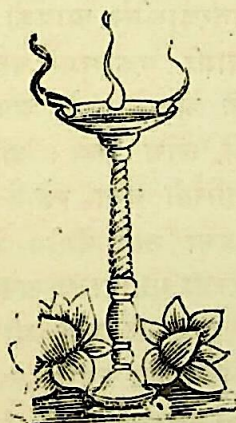
युगलसरकारके संदेशका आदान-प्रदान

कोकिलभावमें निमग्न होकर श्रीभक्तकोकिलजी वाल्मीकि आश्रममें श्रीभूनन्दिनीका दुःख न देख सके। वे उसी पीड़ाका, दुःखका अनुभव करते हुए एक ही साँसमें उड़कर श्रीअवधमें जा पहुँचे और श्रीप्रियाजीका सन्देश प्रियतम श्रीरामचन्द्रसे कहने लगे।

"हे बापू! हे कौशलेश्वर! क्या आप जानते हैं—इस समय सतीशिरोमणि माता श्रीमैथिलि व्याकुलताके समुद्रमें डूब रही हैं और कातरवाणीसे आपको ही पुकार रही हैं—"हे प्राणनाथ, हे स्वामी! एक समय वह था जब राजलक्ष्मी का परित्याग करके आपने मुझे अपनी सङ्गिनी बनाया। वनमें, विजनमें मुझे साथ रखा। अब आप उसीके रङ्गमें रँगकर मुझे वनवासिनी बना रहे हैं। ऐसा ही सही। मैं आपको कोई उलाहना नहीं देती। मेरी तो बस इतनी ही प्रार्थना है कि जैसे राजा महाराजा अपने राज्यके तपस्वियों-की रक्षा करते हैं, वैसे ही मुझे भी अपने राज्यकी एक तपस्विनी समझकर सँभालते रहना"

स्वामी! आप प्रीतिकी रीति जानते हैं, महाकुलीन हैं। आपने छोटेपनसे ही मुझ लताको आश्रय देकर अपनी जिस

कृपादृष्टि, स्नेहसे सींचा था, केवल उस स्नेह-धाराका प्रवाह बन्द न करना। उस अनुराग रङ्गको उँड़ेलना। मेरे इस स्निग्ध और मुग्ध हृदयपर यह करारी चोट न करना।

प्रियतम ! मैं इस जन्ममें आपकी सेवा कुछ भी नहीं कर सकी, मुझे क्षमा करना ! आपका स्वभाव कृपा-कोमल है। स्वामी ! यह तो मेरे भाग्यका ही दोष है। अब मैं इस आश्रम में वास करके सूर्यमें दृष्टि लगाकर तपस्या करूँगी और यह वर माँगूँगी कि जन्मान्तरमें आपके श्रीचरणकमलोंकी सेवा प्राप्त हो और कभी वियोग न हो।

कहाँ तो मेरा जन्म हुआ और कहाँ लालन-पालन ! दुःखके लिये ही मानो मैं माँकी गोदमें आयी थी। उस प्रसन्नता और सौभाग्यकी एक झलक भी आयी मेरे स्वामी, जब मैं आपके साथ मिली। परन्तु यह भी एक भाग्यका फेर है। मेरी जीवन-वेलिको वनमें ही कुम्हलाना था।

हे प्राणेश्वर ! मैं आपके साथ एक बार पहले भी इस वनमें आ चुकी हूँ। जान पड़ता था कि यही स्वर्ग है। आज वही मैं हूँ और वही वन है; परन्तु यह काटनेको दौड़ता है। आपके साथ भूख, प्यास और थकान भी कितनी मधुर थी। वे कष्ट कष्ट नहीं थे, वे दुःख दुःख नहीं थे। अरण्यजीवनकी वह सादगी हमारे अनुरागके रङ्ग और रससे रँगीली और अत्यन्त मधुर हो गयी थी। दण्डकवनकी मरुभूमि प्रणय-रसके समुद्रसे परिपूर्ण हो गयी थी और भावकी लहरें हिलोरें लेती रहती थीं। हमारे प्रेमकी मधुरतासे पशु-पक्षी भी मधुर

हो गये थे। गोदावरीकी जलक्रीडा, हाथियोंपर चढ़कर वन-विहार, हरिणोंके साथ उछल-कूद, मयूरोंके साथ नृत्य, कोकिलके साथ कुहू-कुहू, वृक्षोंमें छिपकर आँखमिचौनी खेलना यह सब आज एक स्वप्न है। परन्तु यह स्वप्न ही इस दुःखी जीवनको बहलानेका सहारा है। जब कभी अचानक यह टूट जाता है, तब मैं अपनेको आपसे दूर पाती हूँ और एक विकट वेदना पिशाचिनीकी भाँति मुझे निगलनेके लिये दौड़ पड़ती है। क्या आप इससे मेरी रक्षा न करेंगे ?

प्यारे प्राणवल्लभ ! आप मेरे लिये कोई चिन्ता न करें। मेरे दिन और रातें आपकी स्मृतिके सहारे अच्छी तरह कट रही हैं। मैं न आप पर अविश्वास करती हूँ और न तो मेरे मनमें कोई आशा ही है। हमारे कुलदेव श्रीरङ्गभगवान् आपकी सदा सर्वदा रक्षा करें, यह उनसे प्रार्थना है। आप सर्वदा धर्ममें स्थित होकर अपनी प्यारी प्रजाको सुखी कीजिये।"

कोकिलभावमें मग्न होकर स्वामीजीने कहा—"महाराज, आपकी आँखोंके सामने ही आपने ही अग्निपरीक्षा ली, तब भी विश्वास नहीं हुआ ? क्या सतीगुरु श्रीविदेहनन्दिनीके कुछ ऐसे प्रारब्ध हैं जिन्हें आप भी अपने पुण्यबलसे नहीं मिटा सकते ? पहले जिन ऋषिपत्नियोंको उन्होंने अभयदान दिया था, अब वे उन्हींकी कृपा-याचना करके उन्हींके आश्रयसे अपना जीवन-निर्वाह कर रही हैं। क्या आपको उन नन्हें-नन्हें फूलसे सुकुमार शिशुओंका स्मरण नहीं होता, जिन्हें जन्मसे

ही आपके कृपा-वात्सल्यके सुखका दर्शन न हुआ ? आप उन्हें अपने प्रेम-तरङ्गित उत्सङ्गमें लेकर प्यारके रङ्गसे सराबोर कर दीजिये । उन प्यारके भूखे भोले-भाले शिशुओंको प्यारका अमृत शीघ्रसे शीघ्र पिलाइये महाराज ! यही मेरी अन्तरङ्ग लालसा, अभिलाषा है ।"

महाराज श्रीरामचन्द्रने भक्तकोकिलजीके भाव-राज्यमें प्रकट होकर श्रीप्रियाजीके लिये कुछ आश्वासनके सन्देश कहे । उन्हें सुनकर भक्तकोकिलजीको कुछ सन्तोष हुआ । और वे भावमें ही महर्षि वाल्मीकिके आश्रममें पहुँचे । उन्होंने श्रीसतीशिरोमणि स्वामिनीसे प्राणप्यारेके सन्देश कहने प्रारम्भ किये ।

"प्राणप्रिये श्रीपार्थिवि ! मेरे नेत्रोंके सामने तुम्हारा भोला-भाला सलोना सुषमामण्डित मुखारविन्द विराज रहा है । प्राणेश्वरी मैथिलि ! आपके पूर्ण-शारदेन्दु प्रकाशके अतिरिक्त मेरे लिये दशों दिशाओंमें अन्धकार छा रहा है । क्या यह राज्यलक्ष्मी मुझे कोई सुख पहुँचा रही है ? नहीं, नहीं, यह तो सहस्र सर्पोंके समान मुझे काट रही है ! आपकी वियोगाग्निसे मेरा हृदय दग्ध हो रहा है । प्राणप्रिये ! मैं अयोध्याकी कोटि-कोटि राज्यलक्ष्मी तुम्हारे चरणोंके धूलि-कण पर न्यौछावर कर सकता हूँ । हृदयेश्वरि ! मैं क्या कभी तुम्हें भूल सकता हूँ । मेरे मनमें, तनमें, प्राणमें, रग-रगमें, रोम-रोममें तुम्हारे मधुर स्नेहका स्रोत अखण्ड धारासे प्रवाहित हो रहा है । मेरा रोम-रोम तुम्हें पुकार रहा है ।

प्यारी विपिनसङ्गिनी श्रीवैदेही! तुम्हारा श्रीविग्रह सर्वदा अजर-अमर रहे। तपस्विनी वनदेवियाँ तुम्हारे चरण-कमलोंकी अनुगामिनी होकर सेवा करती रहें। सर्वदा श्रीभवानीशङ्कर आपकी रक्षा करें। हमारे प्यारे शिशु परमेश्वरके कृपा-कटाक्षसे सुरक्षित रहें। जब मेरे हृदयमें उनकी स्मृति करवट बदलती है, मेरी आँखोंके आँसुओंका बाँध टूट जाता है। वे ही तो रघुवंशके रक्षक होंगे। मेरी प्राणप्रिय, आप चिन्तातुर न हों। क्या चन्द्रमा अपनी चाँदनीको, दूध अपनी धवलताको, आत्मा अपनी अमरताको छोड़ सकता है? कभी नहीं। मैं तुम्हें नहीं छोड़ सकता। मैं तुमसे अलग नहीं रह सकता। तुम्हारी अमृतवाणी सुननेके लिये ही, तुम्हारी रूपमाधुरीसे अपनी प्यास बुझानेके लिये यह प्यासे प्राण बाहर-भीतर आते-जाते रहते हैं।

मैं वज्रसे भी कठोर हूँ। मैंने तुम्हारा हृदय तो छेद डाला, परन्तु कभी तुम्हारा आभूषण नहीं बना। मेरे द्वारा दिये दुःखको तुमने सुख माना। मैंने कभी तुम्हारी भवें चढ़ी और फड़कते हुए ओंठ नहीं देखे। वाणीमें कर्कशता और चलनेमें पाँवकी ध्वनि भी नहीं सुनी। तुम्हारे वे पवित्र गुण, तुम्हारी वह सौम्य आकृति, जिन्हें देखकर मैं आनन्दसे भर जाता था आज मेरे हृदयको व्यथित कर रहे हैं। आज न तुम्हारे साथ पुरजन हैं, न परिजन; न सखी-सहेली, न दासी। तुम असहाय हो; परन्तु उमा, रमा, शचि, सावित्री आदि देवियाँ तुम्हारी सर्वदा रक्षा करें। शुक, हंस,

सारस आदि वन-पक्षी तुम्हें सुख दें। तुम्हारी कीर्ति त्रिभुवन में छायी रहे।

आपके सुन्दर श्रीविग्रहपर काषायवस्त्र हैं। जटाके रूपमें परिवर्तित वेणी और हाथमें कमण्डलु. आपतो साक्षात् कोई महर्षि हैं। आपकी जय हो, जय हो! आपके जय-जयकारसे अखण्ड भूमण्डल गूँज उठे। तुम्हारी कीर्ति सर्वत्र छायी रहे। अमर ललनाओंके मधुर सङ्गीतमें तुम्हारा सुयश भरा रहे।

वनवासी स्वामी! आपका भाव वैष्णवी, ब्रह्माणी, शिवा और शचि से भी विलक्षण है। प्रमोदवनकी गहवर गलियोंमें तुम्हारे चरणनूपुरकी ध्वनि-सी सुनकर मैं पागलके सदृश हो जाता हूँ और तुम्हें ढूँढ़ने लगता हूँ। हे परदेशी पक्षी! तुम्हारे सुन्दर वनके पशु-पक्षी अब उल्लासहीन हो गये हैं और तुम्हारे प्यारे-प्यारे लता-वृक्ष कुम्हला गये हैं। मेरे सौभाग्यकी पवित्र पोती प्रिय मैथिलि, मैं सदा वैकुण्ठेश्वर रङ्गनाथसे यही प्रार्थना करता रहता हूँ कि वह सुखमय समय शीघ्र आवे, जब तुम्हारे मुखचन्द्रकी सुधामयी वचन-ज्योत्स्नासे मेरे हृदयका कोना-कोना आलोकित एवं सराबोर हो जाय, प्रमोदवन लहलहा उठे।

हे राम-हृदयेश! हरि-गुरु-ईश-कृपासे वह दिन शीघ्र ही आवेगा, जब मेरे कन्धे पर तुम्हारी भुजलता खिल रही होगी। वनवासी मुनिवर्य! वनका वह दृश्य तुम्हें स्मरण होगा, जब तुम एक रीछशिशुको तकिया बनाकर लेट रही थीं। वहाँ आनेपर मेरे हाथमें धनुषबाण देखकर रीछ-पत्नी गरजकर

दौड़ पड़ी और हे वेदवती वीरेन्द्र ! बड़ी निर्भयतासे एक हाथसे मुझे और एक हाथसे रीछनीको रोककर वह बच्चा तुमने रीछनीको दे दिया था। तुम्हारी वह वीर झाँकी कभी मेरी आँखोंसे ओझल नहीं होती। यह दुःखदराज्य कहाँ और वह अरण्यवासका सुख कहाँ ? परन्तु भरतके साथ की हुई प्रतिज्ञाका बन्धन सचमुच ही मेरे लिये बन्धन सिद्ध हुआ।

प्रिय पार्थिवि ! आज तुम्हारे चन्द्रमुखसे मधुर-मधुर वचन-रचनाके श्रवणसे वञ्चित होकर सन्देश सुन रहा हूँ। क्या हमारे भाग्यकी यही अन्तिम झाँकी है ? नहीं, नहीं ! यह दुर्दिन भी कभी-न-कभी पूरे होंगे। अभी तो इस दुःखी जीवनके लिये तुम्हारे सन्देश ही एकमात्र आधार हैं। उन्हींके लिये कान खुले हैं और आकुल हैं। जिसके द्वारा तुम्हारे प्यारे-प्यारे सन्देश, तुम्हारी लीला, तुम्हारे मधुर नाम सुननेको मिलते हैं, वह सदा मेरे सिर आँखों पर रहें। वह मेरी आँखोंकी पुतली हैं, सिरकी मुकुटमणि हैं।

भावमें मग्न श्रीभक्तकोकिलजीने श्रीस्वामिनीजीको सम्बोधित करके कहा—"हे परमप्रिय स्वामिनीजू ! आपके प्रियतम आठों पहर आपके ध्यान में डूबे रहते हैं। आप उनके रोम-रोममें समायी हुई हैं। वे आपकी दुःखभरी दीन दशाकी कल्पना करके अत्यन्त व्याकुल हो जाते हैं। उनके प्राण आपके विरह-तापसे तप्त होकर भागते हैं, फिर आशाकी फुहियोंसे सींचकर लौट आते हैं। यही उनका श्वासोच्छ्वास है। वे एकान्त महलमें अकेले हाप्रिये ! हा-प्रिये ! का आर्त नाद करते रहते हैं।

आपके दिव्य गुणोंकी स्मृति ही उनका जीवन है। वे रात दिन विष-बुझे बाणसे घायल मनुष्यके समान उन्मत्त हो कराहते रहते हैं। एक दर्दभरी टीस, एक कर्कश कसक और हृदयद्राविनी हूक क्षण-क्षणपर उठती ही रहती है। वे पिता, गुरुकी प्रबल आज्ञारूप क्षत्रियधर्म राज्यशासनको बड़े ही कष्टसे पूर्ण कर रहे हैं। उनके हृदयमें आपका अनुराग दिन-दूना रात-चौगुना बढ़ता ही रहता है। समुद्रमें छिपी बड़वाग्निके समान आपकी विरहाग्नि इनके हृदयको प्रतिपल वेदना से जलाती रहती है। वे टूटे दिलसे लम्बी साँस खींचते हुए आपकी विरह-वेदनामें तन्मय रहते हैं। आपकी स्वर्णमयी प्रतिमा ही उनके जीवनका एकमात्र अवलम्बन है। वे खान-पान आदिमें सर्वदा आपकी मूर्त्तिको अपने साथ ही विराज-मान करते हैं। मेरी ज्ञानमूर्ति जीजी, आप धैर्य न छोड़ो। प्रियतम क्षणभर भी आपको अपनेसे विलग नहीं मानते हैं। वे आपकी श्रीमूर्तिका आलिङ्गन करके अश्रुधारासे अभिषिक्त करते हैं। हाथमें दूधका पात्र लेकर आपकी श्रीमूर्तिके मुखसे लगाते हैं और कहते हैं—"प्राणप्रिये, पार्थिवि! तुम कितने दिनोंसे कुछ खाती-पीती नहीं हो! तुम्हारा शरीर कृश हो रहा है! इस मिश्रीमिश्रित सुस्वादु सुन्दर अमृतमय दुग्ध का पान करो! क्या तुम मुझसे रूठ गयी हो? क्या प्रेमकी तन्मयतामें तुम्हें मेरी बात सुनायी नहीं पड़ती? क्या तुम मन-ही-मन वनविहारमे इतनी मग्न हो गयी हो कि मुझे भी भूल गयी हो?"

इस प्रकार वे आपकी प्रतिमासे बड़ी देरतक बातें करते रहते हैं और आपकी मधुर वाणी न सुनकर मन-ही-मन कहने लगते हैं—'प्राणाधिके ! रूठनेका तो तुम्हारा स्वभाव ही नहीं है। तुम कृपा-कोमल प्रेम-सौन्दर्यकी मूर्ति हो। मैंने सौ-सौ अपराध किये, परन्तु वे तुम्हें कभी अपराध ही नहीं मालूम पड़े। तुम तो मुझे पलभरकेलिये भी व्याकुल नहीं देख सकतीं। मेरी प्रसन्नताकेलिये अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देती हो !

आज तुम्हारा वही राम महलकी चहारदीवारीमें कैदी-सा असहाय अकेला दिन-रात विलाप कर रहा है, परन्तु तुम अपने मुखचन्द्रसे वचनामृतके दो बूँद भी नहीं देतीं ! मैंने तुममें इतनी निठुरता तो कभी नहीं देखी थी। अच्छा ठीक है। मैं समझ गया। मेरी विरहभीरु भामिनी, स्वामिनी ! मैं समझ गया। विरहकी अकारण कल्पनासे संयोगमें ही तुम्हें वियोग मालूम पड़ने लगा है और तुम स्तब्ध होकर स्वर्णमयी प्रतिमा-सी हो गयी हो। मैं राजकाजमें मन लगाता हूँ; क्या इसीसे तुम्हें विरहकी कल्पना हो गयी है ? मुझे क्षमा करो ! प्रेममयी, मुझे क्षमा करो ! यह राज्यलक्ष्मी तुम्हारी सेविका है, सौत नहीं। यह प्रजापालन तुम्हारी सन्तानको खिलाना है तुम्हारी उपेक्षा नहीं। यह तुम्हें नहीं सुहाता है ? इससे भी तुम्हें विरहकी कल्पना होती है तो लो, मैं इसे भी छोड़ता हूँ। मैं एक पलके लिये भी तुम्हें अपनी आँखोंसे ओझल नहीं करूँगा। एकमात्र तुम्हीं मेरे हृदयकी आधार हो, मेरे हृदयकी मणि हो, मेरे हृदयका हार हो।

प्यारी पार्थिवि, बोलो ! भोली-भाली प्रिये, विरह कहाँ है ? आओ, परस्पर दुःख-सुखकी बातें करके हृदय हल्का करें। आओ ! आओ !! हम दोनों मिलकर एक नया संसार बसायें। जहाँ प्रेम-ही-प्रेम हो, आनन्द-ही-आनन्द हो चलकर वहाँ रहें। जहाँ प्रेमियोंके मधुर मिलनसे कोई ईर्ष्या करनेवाला न हो। जहाँ दो दिलोंको कोई अलग करनेवाला न हो। बोलो, बोलो ! आओ ! आओ !! मेरे हृदयसे लग जाओ। हम गलबहियाँ डाले डाले प्रेमसे झूमते हुए उस नेह-नगरमें चलकर अनन्त क्रीडा करें !"

मेरी प्यारी अम्बा ! इस प्रकार आपके प्राणप्यारे विरह और मिलनके समुद्रमें डूबते उतराते, भावकी उत्ताल तरङ्गोंमें लहराते, स्मृतिकी धारामें सराबोर रहते हैं। कभी-कभी तो आपके ध्यानमें इतने तन्मय हो जाते हैं कि वे स्वयं आपके रूप ही हो जाते हैं और अपने आपको ही ढूँढ़ने लग जाते हैं। आपके वनवासको, सुखको, दुःखको, मिलनको विरहको अपना मानकर 'हा प्राणप्यारे, कहाँ हो ? कहाँ हो' इस प्रकार विलाप करने लगते हैं। जब आपके भावमें विरह-जन्य तन्मयता भाव आता है तब वे फिर अपने भावमें मग्न होकर 'प्रिये, प्रिये' पुकारने लगते हैं। भाव पर भावका उदय होता रहता है। एक भाव दबा, दूसरा उभर आया, दूसरा भाव दबा तो पहला उभर आया। अपने असली स्वरूपकी सम्भाल क्षणभरके लिये भी नहीं होती ! उनका श्रीरामभाव तो आपकी पूजा है ही, उनका श्रीजानकीभाव भी आपकी पूजा ही है।

सचमुच वे आपके पुजारी ही हैं वे आठों पहर आपकी पूजा ही करते रहते हैं। कभी आरती उतारते हैं, कभी वस्त्राभूषण धारण कराते हैं, कभी अपने कर कमलोंसे आपके सीमन्तमें सिन्दूर भरते हैं मानों आपके प्रेमरँगमें रँगी बुद्धिको सबके सामने मूर्तिमान कर देते हैं। आप उनके प्रेम-मन्दिरकी अधिष्ठात्री देवी हैं। आप दोनों एक-दूसरेसे कभी अलग नहीं हैं। आपकी परस्पर प्रीति परावस्थारूप एवं अविनाशी है। उसमें स्वसहित, सर्वस्वसहित हृदयका समर्पण है।

आप दोनोंका तन-मन-प्राण-वचन-गुण-रूप-शील-खान-पान-पहिराव सब एक है। 'एक सरूप सदा द्वै नाम'—ऐसा दाम्पत्य अनुराग, ऐसी एकरस अखण्ड प्रीति त्रिभुवनमें और उसके बाहर भी कहीं नहीं है। सर्वभाँति एक होनेके कारण आप युगल धनी सदा मिले ही हुए हैं।

आपका यह स्नेहसम्बन्ध कोटि कल्पों तक अमर रहे। हे कोटि सन्तोंके समान क्षमाशील स्वामिन्! आप कदाचित् चिन्तातुर न हों। मेरा यह अमोघ आशीष है कि जैसे श्रीमहादेवसे श्रीपार्वतीजू (श्रीपार्वतीजीका आधा शरीर पर अधिकार है), श्रीवैकुण्ठेश्वरसे श्रीलक्ष्मीजू (श्रीलक्ष्मीजीका हृदय पर अधिकार है), श्रीकृष्णचन्द्रसे श्रीराधिकाजू (श्रीराधामाधव अभिन्न हैं) मिलकर शोभा पाती हैं उससे भी अधिक आप अपने प्रियतमसे मिलकर सुख, हर्ष, सौभाग्य प्राप्त करोगी।

अग्नेः स्वाहा यथा देवी शचीवेन्द्रस्य शोभन ॥
मैथिली कौशलेन्द्रेण प्रक्रीडतु ममाशिषः ॥
चिरंजीवतु वैदेही मैथिली मधुरप्रिय ॥
सदा रक्षतु-उमाशम्भुः बाह्य न्तर्जयमंगलम् ॥
अवनिरमरसिन्धुः धर्मशिवब्रह्मइन्द्रः
स च गणपति गिरिजा छन्दसांपति मुनीन्द्रः ।
लक्ष्मीश्वरवरप्रद वैकुण्ठचन्द्रः
विस्तृति कल्याणमैथिलि रामचन्द्रः ॥ ●

अमरगुरुकी कृपासे आपपर हर्ष आनन्द सुखोंके मेघ बरसते रहें, आपके दुःख, शोक ईश्वर मुझे भुगतायें। आपको कभी गरमी-सरदी व्याप्त न हो। सर्वदा वसन्त बहार छायी रहे। हर्षकी चाँदनी छिटकी रहे। दुःखके दुर्दिन कभी पास न आयें। वैरियोंकी आशा कभी सफल न हो। सर्व देवी-देवता आपकी रक्षा करें। आपका एक भी बाल कभी भी, कैसे भी बाँका न हो। दुःख सुखमें सम स्वभावा मेरी सौम्य स्वामिनी ! आपका यह सुन्दर श्रीविग्रह अजर अमर हो। आपके वास-स्थानमें सुख-सौभाग्यका अचल निवास हो। आप अपने स्वामीका अविचल अखण्ड, अनन्त, अपार अनुराग प्राप्त करें। आप जुग-जुग जियें। आपके यशकी ज्योति युग-युगमें जगमगाती रहे।

मेरे स्वामी, परमप्यारे पार्थिवचन्द्र ! आपके छविपूर्ण मुखशशिकी किरणसुधा सर्वदा प्यासा चकोर बनकर प्रियतम पान करता रहे।

● ये श्लोक श्रीभक्तकोकिलजीके लिखे हैं। ज्यों-के-त्यों उद्धृत किये जा रहे हैं।

हे मिथिला-पयोधिकी सुन्दर कमला ! शुक्लपक्षकी शशिकलाके समान आपका सौभाग्य दिनदूना रात चौगुना बढ़ता रहे। करुणारसभरे वचन वाली सखी श्रीजानकी! आपके चरणकमलयुगलकी और दिव्य मुखारविन्दकी अखण्ड ज्योति अयोध्याके राजमहलमें छायी रहे। वह स्थान सर्वदा आमोदित और प्रफुल्लित रहकर स्वर्गीय वायुकी सुगन्धिसे मह-मह महकता रहे।

श्रीपार्थिवि ! जैसे परमपावन श्रीगङ्गाजी सदा-सर्वदा जलनिधिसे मिली और मिलती रहती है वैसे ही आप श्रीराघव-रत्नाकरसे मिली और मिलती रहें। जैसे कविता और रस, पद और सङ्गीत मिलकर सहृदय सत्संगियोंके हृदयको आह्लादित करते हैं, वैसे ही आप युगल जोड़ी परस्पर एक दूसरेसे सम्मिलित रहकर आनन्दित हों। युगलकी प्रेम-लता नित्यनिरन्तर स्निग्ध, अंकुरित, पल्लवित, पुष्पित एवं फलित होकर लहलहाती रहें। आपके हास-विलास, लीला-विनोद, सुखसौभाग्यकी अवढरदानी भगवान् भवानीशङ्कर त्रिकालमें अपने अखण्ड कर कमलोंसे रक्षा करते रहें।

सन्तोषमूर्ति मेरी स्वामिनी ! सदा प्रियतमके साथ प्रसन्न रहो। मेरी अमोघ आशीष कभी निष्फल नहीं होगी। मैं रात-दिन, घड़ी-घड़ी, पल-पल, श्वास-श्वास, रोम-रोम, रग-रगसे तुम्हें आशीष देती हूँ। मेरी दिलकी धड़कन, मेरे शरीर की सभी नाड़ियोंका स्पन्दन तुम्हारे आशीर्वादका सङ्गीत गाता रहे। वृक्षोंके एक-एक पत्ते, पक्षियोंके कलरव, पृथ्वीके

कण-कण, समुद्रकी लहरें, नदियों और झरनोंके कल-कल निनाद, आकाशके सितारे, पवनके झकोरे, वर्षाकी एक-एक बूँद और अनन्त ब्रह्माण्डोंमें व्याप्त शब्द-ब्रह्म आपके प्रति आशीषसे परिपूर्ण हो जायँ। आपके उन्नत और विशाल भालपर सिन्दूरबिन्दुका सौभाग्य-भाजन तिलक सदा अमर द्युतिसे दमकता रहे। आप अपने मधुर वचनरूप हिंडोलेमें प्रियतमको झुलाती हुई उनके विशाल हृदयमण्डलपर आनन्द में भरी अनन्त कल्पोंतक अखण्ड राज्य करें, यही गरीबि श्रीखण्डिकोकिलाकी अमर आशीष है।

गम्भीर प्रेम

इस प्रकार भक्तकोकिलजी अपने भावराज्यमें मग्न रह कर कभी महर्षि वाल्मीकिजीके आश्रममें उपस्थित होकर श्रीरामभद्रकी प्राणप्रिया विरहव्यथासे पीड़ित श्रीजनकनन्दिनीजूको सन्देश सुनाते, आशीर्वाद देते, आश्वासन देते तो कभी उसी रूपमें श्रीअयोध्यामें पहुँचकर श्रीजनकनन्दिनीके शुद्ध प्रेम, विरह-विलाप, शुभाकांक्षा आदिका वर्णन करते। उस समय युगलसरकारके बीचमें सम्पर्क एवं आलापका सुख-सम्बन्ध बनाये रखनेमें भक्तकोकिलजी ही प्रेम-सूत्र बन रहे थे, मानो वे दो परस्पर बिछुड़ी कड़ियोंको जोड़ रहे हों, बेसुरे सङ्गीतको सम्भाल रहे हों, अधूरी कविताको पूरी कर रहे हों, और वियोगकी कड़वी ओषधिको भी सन्देशके आदान-प्रदान रूपमधु-मिश्रीके सुयोगसे मधुर बना रहे हों।

यद्यपि श्रीभक्तकोकिलजीके अन्तःकरणमें युगलसरकार के तत्त्व, रहस्य, गुण, प्रभाव, प्रताप, लीला, प्रेमसम्बन्ध आदिके सम्बन्धमें कोई भेदबुद्धि नहीं थी, वे दोनोंको एक प्राण दो देही ही मानते जानते थे तथापि कोकिलसखीके चित्तमें सतीशिरोमणि पार्थिवी विदेहनन्दिनीकी ओर अधिक झुकाव था। जब वे श्रीप्रियाजीके वियोग दुःख, तपस्वी जीवन और उनका वनदेवियोंके समान अकेले वनमें असहाय घूमना देखते, उनके शरीरपर काषायवस्त्र, शरीरकी कृशता और विवर्णता, आखोंमें आँसू, बार-बार स्तब्धता, तारे गिन-गिन रात काट देना, उद्वेग आदि देखते तब वे भावावेशमें अयोध्यानरेश श्रीराम चन्द्रके पास पहुँचकर उन्हें उनकी निष्ठुरताका उपालम्भ देने लग जाते।

ऐ कौशलदेशके कर्ता धर्ता! आपका हृदय तो अत्यन्त कोमल है। उस निरपराध सतीशिरोमणिको वनमें अकेली छोड़ते समय आपके हृदयमें क्यों पीड़ा नहीं हुई? हमारी भोली-भाली सतीशिरोमणि स्वामिनीने आपके प्रेममें उन्मत्त होकर संसारके सारे सम्बन्धोंको, सुखोंको ठुकरा दिया। आपके साथ वनमें रहकर कठोर-से-कठोर दुःखोंको सहन किया। पाँवमें काँटे लग रहे हैं, चलते-चलते थक चुकी हैं, भूख-प्याससे मुख कुम्हला रहा है फिरभी आपकी ओर देखकर मुसकरा रही हैं। उनके दिलमें हमेशा यही डर रहता था कि मेरा दुःख सुनकर मेरे स्वामीको चिन्ता हो जायगी। यह तो मेरे लिये पहले ही चिन्ता करते थे और वनमें आनेके लिये रोकते थे। मैं स्वयं ही हठकरके आयी हूँ। मेरी चिन्ता का भार इनके ऊपर नहीं पड़ना चाहिये।

हे कौशलाधीश ! मेरी नम्र और शील-संकोचसे दबी स्वामिनीने आपके लिये अपना आपा भुला दिया। लाड़-प्यार तककी इच्छा न की। आपको सुखी करनेके लिये अपना सर्वस्व बलिदान कर दिया और आप उनके लिये इस तुच्छ संसार-कीर्तिको भी नहीं छोड़ सके ? उनकी सेवा, उनके सौजन्य, उनके उपकार एक साथ भुला दिये ? क्या उनके अटूट प्रेमका यही पुरस्कार है ? आपकी वे मीठी-मीठी बातें, प्रेमकी प्रतिज्ञायें क्या केवल ऊपरी ही थीं ?

पुष्पवाटिकाका वह प्रथम मिलन स्मरण कीजिये महाराज, उसकी एक-एक झाँकी दिव्य है। आपने वह अनूप रूपराशि, वह अलौकिक छवि अपने हृदयमन्दिर में विराजमान करके लक्ष्मणजीसे कहा था—"प्यारे भाई, यह राजकुमारी पवित्रता और प्रेमकी प्रतिमा है। यही श्रीपार्थिवचन्द्र हमारे हृदयसिंहासनकी अधीश्वरी हैं। मैं सर्वदा पुजारी बनकर इनकी पूजा करता रहूँगा। हृदयमें बस एक यही लालसा है कि सारे संसारको भुलाकर, समस्त सुखोंका तिरस्कार करके अपने इस प्यारे सखाके साथ अनन्त काल तक इसी वृन्दावलीमें निवास करूँ।"

राजाधिराज ! आपके वे प्यारे-प्यारे वचन जिनके साक्षी स्वयं आपका हृदय, लक्ष्मण, आपकी प्यारी सास वसुन्धरा, जनकपुरकी वृन्दावली और आपकी परमकृपापात्र यह कोकिला सखी भी है, उन्हें स्मरण कीजिये। आपके उस मधुर एवं कोमल हृदयमें यह कठोरताकी कड़वाहट कहाँसे

आ गयी ? विवाहके बाद बराबर मिलन होनेपर भी आपकी व्याकुलता बढ़ती ही जाती थी और यह कहते रहते थे—

इन नयनोंने प्रीति लगाई।
छिन बिछुरन नाहिं सुहाई॥

दरस परस रस बरसत निसि दिन तऊ न प्यास बुझाई।
इन अँखियनकी बान अनोखी चूमत रहत लुनाई॥
पीवत हू न अघात चटोरी छलकत रहत सदाई।
हारचो, बिसरी ज्ञान गठरिया निरखि प्रियामुख भाई॥
हहरत हृदय सुने निबहे ना इकरस प्रीति सुहाई।
आउ आउ हियँ लागु एकु रहु कहत प्रियहिं उर लाई॥

एक वह समय था जब आप क्षणभरके वियोगकी कल्पनासे विवर्ण और व्याकुल हो जाते थे। वही आप और वही आपका कोमल हृदय; परन्तु दिन-पर-दिन, रात-पर-रात व्यतीत हो रही है। यह कठोर परिवर्तन कहाँसे आ गया? बालसङ्गिनी सतीगुरु आपकी अनन्य सेविका, सुख-दुःखकी सखी, शान्ति-सुखकी दात्री, परममधुर श्रीस्वामिनीजीको आपने केवल अपनी निन्दा सुनकर छोड़ दिया, यह आप जैसे स्वामी, सखा, स्नेहमूर्ति एवं परमप्रेमी प्रियतमके योग्य नहीं था। क्या प्रभाके विना सूर्य, ज्योत्स्नाके विना चन्द्रमा रह सकता है? आप मिश्री हैं, वे मिठास। आप अमृत हैं, वे स्वाद। आप सङ्गीत हैं, वे कविता। आप ज्ञान हैं, वे आनन्द। आप स्वयं ही अपनेको देख लीजिये। उन आह्लादिनीके विना आपका अस्तित्व और ज्ञान दुःखमय हो रहा

है। सारे महलमें आर्तनाद है। सारी अयोध्या श्रीहीन है। आज जब आपकी आह्लादिनी आनन्दमूर्ति ही आपसे दूर हैं, तब यहाँ कौन सुखी रह सकता है। आप स्वयं ही इस तापकी सृष्टि करके उसमें तप्त हो रहे हैं। आपका वह समुद्र से भी गहरा और आकाशसे भी विशाल अनुराग जब स्मरण आता है, हृदय टूक-टूक हो जाता है।

दण्डकवनका वह करुण दृश्य भला कौन भूल सकता है? जिस समय आपके प्राण विरह-व्यथासे जर्जर होकर कराह रहे थे, आपके उच्छ्वास और प्रलापके तापसे सारे वन, पर्वत 'हाय-हाय' करने लग थे, पशु-पक्षी व्याकुल हो रहे थे, वृक्ष और लताओंसे भी अश्रुधारा वह रही थी। नदी-नाले सूख रहे थे और पत्थरकी चट्टानें गल-गलकर बह रही थीं। आपके वे विरहसे व्याकुल वचन 'हा सिये! हा जानकी' आजभी हमारे कानोंमें और दिशा-विदिशाओंमें गूँज रहे हैं। वही आप हैं और वही हैं श्रीजनकनन्दिनी। आज अपने हाथों यह विकट दण्ड देते, यह कठोरता करते आपका वह अनुराग आपके हृदयके किस कोनेमें जा छिपा है! क्या वह भी एक दिखावा था? मेरा हृदय यह स्वीकार नहीं करता।

मेरे प्यारे स्वामी राघवेन्द्र! मेरे प्राण सूख रहे हैं। यह दुःखमय दृश्य क्यों, कैसे घटित हुआ? हे धर्मात्मन्! हे अवधेश्वर! आपतो अपनी प्रतिज्ञा पालनकरनेमें अत्यन्त दृढ़ हैं। अपनीकीहुई प्रतिज्ञा का स्मरण करो! मधुर-मिलनके उस दिव्य दृश्यका स्मरण करो! अग्निपरीक्षा हो

चुकनेपर प्रसन्नमुख, उज्ज्वल कीर्ति स्वामिनीके सहित पुष्पक विमान पर बैठकर अयोध्याके मार्गमें कोमल. शीलस्वभावा, स्निग्ध, मुग्ध, नतमुखी प्रियाजीको सम्बोधित करके आपने भरे हृदयसे अपनी पवित्र प्रियतमाके प्रति की हुई कठोरता और कटुवचनोंकेलिये क्षमा माँगी थी । पश्चात्तापसे तप्त होकर उबलते एवं उफनते हुए अनुरागसे श्रीप्रियाजीके कर-कमल अपने करपल्लवोंमें लेकर कहा था—"चिरस्नेहमयी देवी ! मेरी नित्य सहचरि ! आपने अपने प्रेम-समुद्रकी लहरों-में मेरे कठोर बर्ताव और कटु वचनोंको बहा दिया और भुला दिया। उसके चिह्न भी अपने हृदयमें नहीं रखे। धन्य हो क्षमामूर्ति देवि, धन्य हो ! मेरे पवित्र प्राण ! मेरी अन्तरात्मा की भी अन्तरात्मा ! तुमने मेरे लिये सब कुछ किया, सारे दुःख सहे, प्रेमके अपूर्व आदर्शका निर्वाह किया; और मैं तो चूक पर चूक करता गया, चोट पर चोट पहुँचाता रहा। मुझ अपराधीके प्रति आपका यह अगाध प्रेम देखकर मैं तो उसमें डूब गया हूँ। जन्म-जन्मके लिये ऋणी हूँ। तुम्हीं हो मेरी जीवन-ज्योति, तुम्हीं हो मेरी प्राणात्मा। मैं क्षणभरके लिये भी तुमसे अलग होकर जीवित नहीं रह सकता। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मेरा हृदय और मेरी आँख—यही तुम्हारे अचल सिंहासन हैं। यह सर्वदा तुम्हारे लिये बिछे रहेंगे।"

भक्तकोकिलने भावावेशमें कहा—"सत्यप्रतिज्ञ ! क्या अब आप अपनी प्रतिज्ञाकी भी रक्षा नहीं करोगे ? पहले वियोगमें तो विवशता भी थी। क्या अब भी वैसा ही कोई कारण है ?"

राजराजेश्वर! जब वनसे लौटकर अयोध्यामें राजसिंहासनपर आसीन हुए थे, आपको राजसिंहासन प्यारा नहीं लगता था। राजलक्ष्मी मानो काटने दौड़ रही हो। बार-बार राजमहलमें आकर एकान्तमें श्रीप्रियाजीका सम्पर्क, आलाप, स्पर्श और मिलन ही प्यारा लगता था। राजकाजके कारण क्षणभरके लिये भी राजदरबारकी भीड़भाड़में जाना भार-सा मालूम पड़ता था। बार-बार वनके प्यारे-प्यारे, मधुर-मधुर जीवनकी स्मृति आती थी और अनुरागके रँगमें रँग हुए वचनपुष्पोंकी झड़ी लगी रहती थी। "प्रिये, प्रिये! मुझे तो राजमहलसे और राजकाजके कोलाहलसे अच्छे वे ही दिन लगते हैं जो हमने चित्रकूटके सुन्दर सुखद प्रदेशमें प्रेम और आनन्दसे भरकर नयी-नयी उमङ्ग, नयी-नयी तरङ्ग, नये-नये राग-रङ्गके झूलोंपर झूल-झूलकर; मस्तीमें झूम-झूमकर व्यतीत किये थे। हमारे प्रणय-जीवनके शैशवकी वह कमनीय कहानी स्मृति-पटपर आ-आकर नये-नये चित्र अंकित कर जाती है, नयी-नयी झाँकी दिखा जाती है। वियोग नहीं, भ्रम नहीं, मान नहीं। स्मरण करो उस दिनकी बात, जब हम तुम चित्रकूटकी पर्णकुटीमें पुष्पशय्यापर एकसाथ शयन कर रहे थे। तुम एक हाथसे गलबहियाँ डाले हुई थीं और तुम्हारा दूसरा हाथ अपने हृदयपर था। पूछनेपर तुमने कहा था कि एक हाथसे तो बाहर पकड़े हुए हूँ और दूसरे हाथसे भीतर, जिससे नींद आनेपर कहीं निकल न भागो।" तुम्हारी वह काव्यमयी उक्ति युक्ति सुनकर मैं खिलखिलाकर हँस पड़ा। तुमने भी योग दिया। लता, वृक्ष उन्मत्त होकर झूम उठे। पक्षी चहक उठे। मृगपशु छलाँग भरने लगे।

अहा ! अब वह स्वतन्त्रता कहाँ है ? वह अमृतघूँटी, वहीं सञ्जीवनी बूटी, वह जीवन-रसायन, वह इन्द्रियोंका सन्तर्पण, मैं क्षणभरके लिये भी तुम्हारा विरह नहीं सह-सकता । मैं इस प्रकार कहता और तुम निद्राके मिस अधखुली नेत्रकलीसे भीतर-ही-भीतर मेरा शृङ्गार करती रहतीं । तुम्हारे प्राणोंके द्वारा बिखरती हुई आन्तरिक प्रेमकी सुगन्ध सूँघकर मैं मतवाला हो जाता, रोम-रोममें नशेकी खुमारी होती, इन्द्रियाँ शान्त होतीं, वासनायें लुप्त हो जातीं, चेतना चकरा जाती, मैं निश्चय ही न कर पाता कि यह सुख है या दुःख, मोह है या निद्रा, कोई विषका दौरा है या मूर्च्छाने ईर्ष्यावश कर दिया है आक्रमण । कहीं यह कोई प्रेमका ही निराला रंग-ढंग तो नहीं है ! आह ! वे प्यारके दिन, प्यारकी रातें कहाँ गयीं ? चलो, चलो वहीं चलें जहाँ न राज्यका उत्तरदायित्व हो, न कोई सेवक हो न सखा । बस, तुम और मैं, वही चित्रकूट, वही वृक्षपंक्ति, वही कालागुरुका वृक्ष, वही मन्दाकिनीका कल-कल कलरव ।"

कोकिला सखीने कहा—"स्वामिन ! मुझे तो सन्देह होता है-वही आप हैं या कोई दूसरे ? हमें यह क्या देखना पड़ रहा है ?

क्या आपको अब उस पञ्चवटीका भी स्मरण नहीं आता जहाँ आपका प्यार अनन्त को चूम रहा था । अपने करकमलोंसे रङ्गबिरङ्गे पुष्पोंका चयन, फिर सुन्दर-सुन्दर आभूषणोंका निर्माण और स्वयं ही श्रीप्रियाजीके अङ्ग-प्रत्यङ्गों

में धारण कराना, वनदेवीके रूपमें सजाकर इष्टदेवीके रूपमें पूजना! क्या यह सब एक साधारण-सा स्वप्न था? क्या यह छिछली धाराकी छोटी-छोटी तरङ्गें थीं? क्या यह प्रेम-आवेशके विवर्तमात्र थे? इनमें कोई सचाई, कोई गहराई नहीं थी?

क्या आपको वह भी भूल गया, जब गोदावरीकी गोदमें आप दोनों नीलकमल और स्वर्णकमलके समान खिल रहे थे। आपके सौन्दर्यमाधुर्यसे चकित विस्मित होकर अपनी चाँदनी छिटकनेकी परवाह न करके चन्द्रमा सातवें आसमान की ओर भागा जा रहा था और आप दोनोंने परस्पर गोदावरी पार करनेकी होड़ लगायी थी। क्या आपको अपने उस पनकी भी याद नहीं रही जो आपने जीतनेवालेके लिये सदाकेलिये स्वामी और हारनेवालेके लिये सदाकेलिये दास होनेका बदा था? क्या आपको श्रीस्वामिनीजीके तैरनेका वह कौशल भी स्मरण न रहा जब वे आपकी अपेक्षा अधिक वेगसे आगे निकल जातीं और श्यामकमलको पकड़कर आपके वहाँ पहुंचनेकी प्रतीक्षा करतीं, आप पास आ जाते तो जल उलीचती हुई आगे बढ़ जातीं और आपसे पहले ही वे उस पार पहुँच गयी थीं? कृतज्ञ स्वामी! यह बात तो सर्वथा आपके स्वरूपके अनुरूप नहीं है कि आप वह श्रीप्रियाजीकी जीत और अपनी वह प्रतिज्ञा भी भूल जायँ जो आपने उस समय की थी। आपने क्या कहा था—"देवि! आपकी जय हो! मैं स्वीकार करता हूँ कि मेरी हृदयेश्वरीकी जीत हुई है मैं सर्वदाके लिये आपके आधीन हूँ। छायाकी

भाँति सदा आपके साथ रहूँगा। उस समय श्रीप्रियाजीने सकुचकर आपके झुके सिर और बँधे हाथको उठाकर बड़े प्रेम और आदरसे अपने हृदयसे लगा लिया। बोलीं—"आपकी मैं चिरदासी हूँ। मुझे सर्वदा इन चरणोंकी सेवाका सौभाग्य मिलता रहे यही मेरी जीत है।"

परम कोमलहृदय स्वामी! आज मैं यह क्या देख रही हूँ? मुझे जब आपके वे वचन याद आते हैं जो आपने श्रीप्रियाजीके हृदयसे लगे ही लगे कहे थे—"प्रिये, तुम्हीं मेरी शोभा हो और तुम्हीं मेरी सुख-शान्ति। मैं तुम्हें पाकर सब कुछ भूल गया। तुम्हीं मेरे विश्रामस्थान हो। सम्पूर्ण सृष्टि तुम्हारे ही सौन्दर्यसे सुन्दर हो रही है। तुम आकाश हो, मैं छाया; तुम ज्योति हो, मैं जीवन; तुम चेतना हो, मैं शरीर; तुम आनन्द हो, मैं प्रेम; तुम्हारे विना मैं क्या?" क्या अब इन बातोंका भी स्मरण दिलाना होगा?

मेरे सहृदय स्वामी! एक दिन वह था—गोधूलिकी मङ्गलमयी वेला। विदेहनगरीका राजप्रासाद। वशिष्ठ विश्वामित्रादि महर्षियोंकी उपस्थिति। समान समधी। गाजे-बाजे, मङ्गलगान! जनपद और नगरके लोगोंका अभिनन्दन! वेद-मन्त्रोंका उच्चारण! आपने सबके सामने श्रीस्वामिनीजीका पाणिग्रहण किया था। सुनयना रानी और राजा जनकने अपनी थाती तुम्हें सौंपी थी और आपने कहा था—'मैं विष्णु तुम लक्ष्मी! तुम कविता, मैं सङ्गीत! मैं अन्तरिक्ष और तुम मेरे प्रेमतरङ्गित उत्सङ्गकी पृथ्वी! आओ, हम एक हैं। एक दूसरेकी शक्तिका संवर्धन करें।' कहाँ आपकी वह प्रतिज्ञा और कहाँ आजका यह निर्वासन! दोनोंका क्या मेल है?

उनका हृदय अब भी वैसे ही प्रेमसे परिपूर्ण है। महाराज रामचन्द्र ! आपके प्रति भावचन्द्रकी नित्यनूतन पूर्णिमासे उनके हृदयसमुद्रकी प्रीतिधारा दिन-दूनी रात-चौगुनी बढ़ती ही जा रही है। वे अयोध्याकी ओरसे जानेवाले पक्षीका भी सम्मान करती हैं। इधरसे उठते हुए बादलोंको निर्निमेष नेत्रोंसे देखती ही रह जाती हैं। इस देशसे जाने-वाली वायुको भी आपके श्रीअङ्गद्वारा स्पर्श की हुई समझकर आँचलमें बाँधकर रखना चाहती हैं। वे वही वस्त्र धारण किये रहती हैं जिसका कभी आपने स्पर्श किया था। वे इधर को ही मुँह करके बैठती हैं, इधरको हां सिर करके लेटती हैं, इधरसे ही जानेवाले मार्गपर फूल बिछाती हैं। कोई भी प्राणी या अप्राणी इधरसे जाता है, उससे आपका कुशल पूछती हैं। अब आपही बताइये हम अपने कलेजेको कब तक पत्थरका बनायें ? उनके वियोगके तापसे पाषाण भी तो द्रवित हो जाते हैं ! हम क्या तप करें, क्या व्रत करें, क्या साधन करें जिससे हमें भर आँख युगलके दर्शन प्राप्त हों ? एक-एक संकल्पका काल कल्प-कल्पके समान व्यतीत हो रहा है। क्या आपके मिलनमें प्रजाकी रुचि विघ्न है ? मैं सरस्वती बनकर समस्त प्रजाकी जिह्वा पर बैठ जाऊँ और स्वभाव-पूत परमपावनी श्रीपार्थिवीचन्द्रके गुणगान करूँ। जो कहो सो करूँ। परन्तु यह बिछोहका दुःख कैसे भी दूर हो !

हाय हाय ! क्या करूँ ? प्रियाप्रियतमका यह दुःख कैसे दूर हो ? यह कहते-कहते भक्तकोकिलजी भावावेशमें

अचेत हो जाते। यह अवस्था कोई एक दिन दो दिनकी नहीं, प्रायः बनी ही रहती थी। खाने-पीनेकी याद तक नहीं आती थी। इसी अनन्य अनुरागकी अवस्थामें एक सेवक भोजन लेकर जाता। वह अपने हाथसे ही श्रीस्वामीजीके मुखमें ग्रास दे दिया करता था। श्रीस्वामीजीको तो पता भी नहीं होता। कभी-कभी तो भोजन देखकर और भी भावावेशमें मग्न हो जाते। कह उठते—"मेरी वात्सल्यमयी बेटी! भूखी प्यासी वनमें तड़फड़ाती होगी!" गाने लग जाते—

कहाँ होगी बेटी भूखी पियासी कोमल कम्पित गातरो।
कोमल फूलाँरी सेजपै अंग तुम्हीं कुम्हिलातरो॥
गङ्गा किनारे गहवर विपिनमें काँटोंकी सेज सुलातरो।
अजरु अमरु होवहुँ वैदेही सुख सौभाग्य घरवासरो॥
पदम कलप परसनु रहैं अचल होवैं अहवातरो।
गङ्गाकिनारे सीय स्वामिनि विकल हैं गरीविश्रीखण्ड साँचो आसरो॥

थाली सामने धरी-की-धरी रह जाती। भोजनके पहले ही आँसूकी झड़ी आचमन करा देती। आँसुओंकी पिचकारी से ही थाली भर जाती। यह देखा गया कि लगातार बाईस-बाईस घण्टे तक अखण्ड अश्रुधारा बह रही है और मुखसे 'सियाअम्बा, सियाअम्बा, सियाअम्बा' की रट लग रही है।

भगवान्‌के दर्शन

भगवान् अपने भक्तको कभी नहीं छोड़ते। विशेषकरके जब वह व्याकुल होता है, छटपटाता है, पुकारता है तब तो कहीं-न-कहीं आस-पास ही किसी-न-किसी रूपमें छिपकर या प्रकट होकर अपने भक्तके भावोदय, भावसन्धि, भावशाबल्य, भावशान्ति और शरीर पर प्रकट होनेवाले अनुभावोंको देख-देखकर क्षण-क्षणमें उस पर अपने आपको न्यौछावर करते रहते हैं। इस काममें वे कभी-कभी इतने मग्न हो जाते हैं और अपनी ओरसे असावधान हो जाते हैं कि इस बातकी भी परवाह नहीं रखते कि कहीं मुझे और भी तो कोई नहीं देख रहा है। यह भी कह सकते हैं कि वे जब अपनेको न्यौछावर करते हैं तब जैसे न्यौछावर की हुई वस्तु किसी सेवकको दी जाती है वैसे ही अपने भक्तके सेवकके प्रति अपनेको दे देते हैं। वे भक्तका प्रेम देखकर मानो अपनेको बहुत छोटा समझने लगते हैं। भक्तको देने योग्य अपनेआपको न समझकरके उसके सेवकको ही दे डालते हैं।

एक दिनकी बात है। वह नित्यका सेवक जब भोजनका थाल लेकर खिलानेको गया तब उसे एक अलौकिक झाँकी दिखायी पड़ी। भक्तकोकिलजी तो विरह अवस्थाके आवेशमें मग्न हैं। आँसुओंकी वर्षा हो रही है और छः सात वर्षकी अवस्थाकी श्रीजनकनन्दिनी अपने नन्हें-नन्हें करकमलोंमें अपनी साड़ीके अञ्चलका छोर लेकर उनके आँसू पोंछ रही हैं। कभी गोदमें बैठकर धैर्य बँधाती हैं, कभी पीठकी ओरसे कण्ठ

में बाहें डालकर प्यारभरे लाड़से मना रही हैं। यह दृश्य देखकर वह प्रेमी सेवक आश्चर्यचकित हो गया और आनन्दमें बिभोर होकर अपने एक साथीको बुला लाया और इस मनोहर दृश्यके दर्शनका सौभाग्य उसे भी प्राप्त हुआ।

भगवान् किसको दर्शन देते हैं? जिनके मनमें कभी भगवद्दर्शनकी इच्छा ही नहीं हुई या होकर किसी कारणसे मिट गयी उनको दर्शन देनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। जिनके मनमें इच्छा है और अपने रास्ते पर ठीक-ठीक चल रहे हैं उनकी ओरसे भी भगवान्‌को कोई चिन्ता नहीं रहती; क्योंकि वे तो दौड़ते ठिठकते कभी-न-कभी भगवान्‌के पास पहुँच ही जायँगे। भगवान्‌का सिंहासन तो तब हिलता है जब वे देखते हैं कि इच्छा अभिलाषा एवं व्याकुलताके रूपमें परिणत होकर तन्मयताका रूप धारण कर चुकी है और वह भी ऐसी जिसको आगे बढ़ने या और गाढ़ होनेके लिये कोई दूसरा मार्ग या स्थान नहीं रह गया है। ऐसी अवस्थामें हृदयमें व्याकुलता और उद्वेग तो पराकाष्ठापर पहुँच जाते हैं; परन्तु उन्हें सफल करनेके लिये भक्तके पास कोई साधन या युक्ति नहीं रहती है। जैसे पङ्खहीन पक्षि-शावक, भूखा प्यासा अपनी माँ के लिये तड़फड़ा तो रहा है किन्तु उड़कर उसके पास नहीं जा पाता, तड़फड़ाकर अचेत हो गिर पड़ता है। ऐसी ही अवस्था भक्तकी होती है। उस समय भगवान्‌का हृदय उनके पास नहीं रहता; वह पानी-पानी होकर बह जाता है और अचेत भक्तके हृदयके साथ घुलमिलकर एक हो जाता है। इसीको तदाकारता कहते हैं।

भगवान्‌को जब अपने कलेजेमें अपना दिल नहीं मिलता है तब वे उसे ढूँढ़ते हुए भक्तके पास आते हैं और उसको अचेतसे सचेत करते हैं तथा भीतर से बाहर निकलकर दर्शन देते हैं। असल बात यह है कि भक्त अपनेको साधनहीन देखकर जब अपनी विवशतासे फड़फड़ाने लगता है; तब कहीं इसके हृदयकी धड़कन बन्द न हो जाय यह सोचकर भगवान् अपना नकाब उतार देते हैं।

श्रीजनकनन्दिनीके उद्योगसे भी भक्तकोकिलजीकी तन्मय व्याकुलताका भङ्ग नहीं हुआ। वे गोदमें बैठीं, कन्धेपर चढ़ीं, ठुड्डी छुई, सिरपर हाथ फेरा और बोलीं कि "मैं तो तुम्हारे पास हूँ, प्रसन्न हूँ, सुखी हूँ।" परन्तु वह थी भक्त-कोकिलजीकी एक तन्मयता जो टूटनेका नाम ही नहीं लेती थी। कोई उपाय न देखकर अन्तमें श्रीकिशोरीजीने महाराज श्रीरामचन्द्रके साथ उनके हृदयमें प्रवेश किया। सारा हृदय प्रकाशसे जगमगा उठा, दिव्य सुगन्ध छा गयी और भक्त कोकिलने अपने हृदयमें अनुभव किया—दिव्य कल्पवृक्षके नीचे रत्नमण्डपमें मणिमय वेदिकापर कोटि-कोटि सूर्य और चन्द्रमासे भी विलक्षण परमज्योतिर्मय श्रीयुगलअवधसरकार विराजमान हैं। उनके एक-एक अङ्गसे प्रेम और आनन्दकी दिव्य रश्मियाँ निकल-निकलकर अपनी विशेषतासे ब्रह्मानन्दको भी तिरस्कृत कर रही हैं।

भक्तकोकिलजी यह अद्भुत झाँकी देखकर आश्चर्यमें डूब ही रहे थे कि श्रीयुगलने मेघगम्भीर अमृतमयी वाणीसे

कहा—"पुत्री कोकिले ? हम दोनों सर्वदा एक हैं, मिले हुए ही हैं। वियोगकी लीला तो केवल बाह्य और प्रजारञ्जनका आदर्शमात्र दिखानेके लिये है। तुम इस प्रकार व्याकुल मत होओ।"

भक्तकोकिलजी अपने दोनों कानोंके दोनोंसे यह अमृतपान कर ही रहे थे कि वह दिव्य झाँकी आँखोंसे ओझल हो गयी और उन्होंने हड़बड़ाकर अपनी आँखें खोल लीं। परन्तु यह क्या आश्चर्य ? वही दृश्य जो हृदयमें अनुभव हो रहा था, आँखोंके सामने बाहर भी है। तब क्या यह कोई स्वप्न है, कोई चित्तका भ्रम है, जादूका खेल है ? नहीं, नहीं ? यह तो स्वयं भगवान् हैं। हमारे हृदयेश्वर युगलसरकार ही हैं। शरीर स्तब्ध हो गया। पाँव चल न सके। हाथ हिल न सका। सिर झुका नहीं, नेत्र निर्निमेष देखते रह गये। युगल सरकारने मुसकराकर देखा तब कहीं मन सगबगाया, प्राण हिले, पलकें गिरीं और सिर युगलसरकारके चरणोंपर पड़ गया। युगलसरकारके उठाकर हृदयसे लगानेपर सावधान करनेपर चेतना ठीक-ठीक अपना काम करने लगी और भक्त-कोकिलजी गीली आँख, पुलकित शरीर, जुड़े हाथ, गद्गद कण्ठ एवं आनन्दित हृदयसे बोल पड़े—"जय हो ! जय हो !! युगलसरकारकी जय हो !!!"

"करुणावरुणालय पिता, आपकी जय हो ! आपकी जय हो !! आप वर्षाकालीन मेघके सदृश अपने विज्ञानानन्द-

घन श्रीविग्रहकी दिव्य अनुरागमयी रश्मियोंसे सम्पूर्ण जगत्‌को सुख-शान्ति-तृप्तिका वितरण कर रहे हैं। आपकी शक्ति, ज्ञान और आनन्द अनन्त है। हे कमलनयन, मैं सब ओरसे सर्वभावसे सहस्रोंवार आपको नमस्कार करती हूँ। मेरा मन संसारसुख और ब्रह्मसुखसे अत्यन्त व्यथित हो गया है। आप दोनोंके विछोहके दर्शनसे मैं अत्यन्त भयभीत हो गयी हूँ। हे हृदय-युगलके हृदयेश्वर युगल! आप दोनों कभी अलग-अलग नहीं। मैं आपके चरणों में वार-वार अनन्त प्रणाम करती हूँ। मेरे सच्चे माता-पिता! आप प्रसन्न हों। प्रसीद! प्रसीद!!"

श्रीभगवान्‌ने कहा—"बच्ची कोकिले! यदि कोई एक वार भी मेरी शरणमें आकर कहदे कि मैं तुम्हारा हूँ तो मैं उसे सबसे सदाकेलिये अभय कर देता हूँ, यह मेरा व्रत है, मेरी अटल प्रतिज्ञा है। तुम्हारे अनन्यभावसे मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। मैं यज्ञ, दान, तप, धारणा, ध्यान, समाधि, वेदादिके स्वाध्याय एवं ज्ञानसे दर्शन नहीं देता हूँ। तुम्हारे अविरल प्रेम और भक्तिसे ही मैं प्रसन्न होकर प्रकट हुआ हूँ। इसलिये प्रिय बेटी! मुझे महादानी समझकर वर माँग ले।"

भक्तकोकिलने नम्र और मधुर वाणीसे कहा—"स्वामी! आप याचकोंको उनके मनोविलाससे भी अधिक देनेवाले परम दयालु पिता हैं। मैं आपकी आश्रिता हूँ और आप मुझपर प्रसन्न हैं। मैंने वालस्वभावसे आपके सम्बन्धमें असम्भव-असम्भव मनोरथ कर रखे हैं। न कहनेपर भी आप जानते हैं, इसलिये मैं पूर्णकाम हूँ। आप अपनी परमप्रिय पुत्रीको वर

देना चाहते हैं। सतीगुरु, परमहंस श्रीपार्थिवचन्द्रके पादपद्म ही मेरे सर्वस्व हैं, प्राण हैं, दूलह हैं। मैं केवल उन्हींका कुशल चाहती हूँ यही मेरा सुख है, यही मेरी सिद्धि है। गरीबि श्रीखण्डके इस वरको ही वात्सल्यपूर्ण हृदयसे प्रतिपालन करना। मैं वह दृश्य देखना चाहती हूँ कि देव-कन्याएँ वीणा बजा रही हों, स्वयं श्रीस्वामिनी वीणा-विनिन्दक स्वरसे गान कर रही हों। प्रमोदवनमें आपके सङ्ग श्रीस्वामिनीजी क्रीडा कर रही हों और मैं उनकी चरण-रजमें लोट-पोट होती रहूँ।"

युगलसरकारने एक स्वरसे कहा—"एवमस्तु! एवमस्तु!! बेटी कोकिले, ऐसा ही हो!!!"
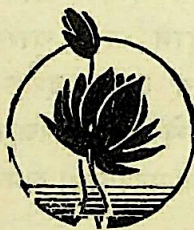
सहजस्थिति

सहज स्थिति

जीवमात्रके हृदयमें भावोंकी स्थिति होती है—किसीमें सुषुप्त, किसीमें धूमिल, किसीमें प्रज्वलित। यहाँ पशु-पक्षी और साधारण मनुष्योंकी चर्चा न करके साधकोंके सम्बन्धमें ही विचार करना चाहिये। साधकके भावोंका सर्वथा उदय न होना उनकी सुषुप्त दशा है। तपसे, जपसे, सङ्कीर्तनसे उसे जगानेकी चेष्टा की जाती है। भाव तो उठे; परन्तु उनमें प्राकृत बुद्धि हो गयी, इसे धूमिलदशा कहते हैं। सदा-सर्वदा भाव बने ही रहें, इसको प्रज्वलित दशा कहते हैं। भावकी प्रज्वलित दशा ही जीवके सारे दुर्भाव और अभावोंको जलाकर स्वतःसिद्ध रसका आविर्भाव करा देती है। जब भाव प्रज्वलित दशामें होते हैं तब उन्हें भावावेश कहा जाता है और वे रसस्वरूप परमात्माका दर्शन होनेपर पच जाते हैं, स्वाभाविक हो जाते हैं। तब वे उठते बैठते नहीं, सदा एक रस रहने लगते हैं। जीवनमें चढ़ाव उतार नहीं रहता। उफान शान्त हो जाता है। जैसे दाख चुर जानेपर फुदकना बन्द हो जाता है, वैसे ही भाव पक हो जानेपर जीवनमें सनसनी पैदा नहीं होती।

जैसे समुद्र अपने अन्दर उद्वेलित होते रहनेपर भी मर्यादाका उल्लङ्घन नहीं करता, वैसे ही भाव पूर्ण हो जानेपर सहज शान्तिका उल्लङ्घन नहीं करते हैं।

अब श्रीभक्तकोकिलजीकी रहनीमें परिवर्तन हो गया। वे सहज स्थितिमें रहने लगे। पहलेकी अपेक्षा और भी उत्साह और उल्लाससे सत्सङ्गका रङ्ग बढ़ने लगा। सत्सङ्गियोंके आनन्दका तो पारावार ही नहीं रहा। गाँवके सारे स्त्री-पुरुष उमङ्गमें भरकर उछलते-कूदते और भगवन्नामका उच्चारण करके नाचते। नियमपूर्वक कथा-कीर्तन, सत्सङ्ग चलने लगा। श्रीभक्तकोकिलजी प्रातःकाल चार बजे उठकर भजनमें बैठ जाते। सूर्योदय होते-होते जब वे श्रीरामबाग जानेके लिये निकलते तब लोग रास्तोंमें छतोंपर चढ़कर उनके दर्शन करनेकेलिये आगमन की प्रतीक्षा करते मिलते। उनका दर्शन होते ही लोग बोल उठते—"श्रीअयोध्यानाथकी जय हो! मिठले बावलसाईंकी जय हो!" मार्गमें श्रीस्वामीजी गरीबों, भिखारियों और बच्चोंको कुछ-न-कुछ देते चलते। देनेमें जाति-पाँतिका कोई भेद-भाव नहीं रखते। बच्चोंसे कहते-'बोलो, वाहगुरु सब-लवली।' बच्चे जोर-जोरसे 'श्रीवाहगुरु, श्रीवाह-गुरु' कहने लगते।

एक दिन कुछ मुसलमानोंने आकर श्रद्धापूर्ण विनोदसे कहा—'स्वामीजी, आप हमारे बच्चोंको हिन्दू बनायेंग क्या ?' उसी दिनसे श्रीस्वामीजी मुसलमान बच्चोंसे 'अल्लाह, अल्लाह' कहलाने लगे। श्रीस्वामीजी श्रीरामबागमें पहुँचकर टहलते हुए भगवन्नामका जप करते रहते। यों तो उनके हृदयसे भगवन्नामका सङ्गीत उठता ही रहता था। श्रीरामबागमें ही भक्तोंके साथ हँसते-खेलते, कसरत करते, उछलते, कूदते, दो-दो मनके वजनका पत्थर एक हाथमें उठा लेते। सत्सङ्गी-

लोग भी नये-नये प्रकारकी कसरत करके श्रीस्वामीजीको प्रसन्न करते।

इसके बाद सब लोग श्रीस्वामीजीके पास बैठ जाते और भक्तिमार्गके सम्बन्धमें प्रश्नोत्तर होते। एक दिन एक भक्तने पूछा—"स्वामीजी, परावस्था प्राप्त होनेपर भी प्रेमी भक्त सावधान रह सकते हैं क्या?" श्रीस्वामीजीने कहा—"कुछ महापुरुष तो इस अवस्थामें जाकर उन्मत्त हो जाते हैं, कोई-कोई शेरदिल प्रभुकी इच्छासे या सत्सङ्ग-आनन्दकी अभिलाषा होनेके कारण अपने भावरूपमें स्थित होकर अपने प्रेमको छिपा लेते हैं। वे अपने भावमय रूपमें ही स्थित होकर रोते हैं, मूर्च्छित होते हैं, हँसते हैं, गाते हैं, नाचते हैं। उनकी यह प्रेम-अवस्था बाहरसे कोई नहीं देख सकता।" सेवकने पूछा—"फिर उनको बाहरी लक्षणोंसे कैसे पहचाना जाय?" श्रीस्वामीजीने कहा—"जब पराभक्तिमें मग्न पुरुष नाम-जप, कीर्तनके समय मधुर-मधुर ध्वनि करता है तब ऐसा मालूम पड़ता है-यह इस देशमें नहीं, कहीं और दूर देशमें बैठकर बोल रहे हैं। उन महापुरुषके पास बैठकर भगवत्सम्बन्धी नये-नये अनुभव उदित होते हैं। हृदय सहज ही प्रेमानन्दसे भरा रहता है।"

एक सेवकने प्रश्न किया—"ज्ञानवान और भक्तमें क्या अन्तर है?" श्रीभक्तकोकिलजीने कहा—"इसका उत्तर यों समझो कि जैसे कोई दो यात्री बाहरसे अपने-अपने घर लौटें। एकके पास तो अपनी ताली हो। वह स्वयं अपने घरपर आकर ताला खोले, भीतर जाकर दिया सँजोये और अकेला

ही आरामसे सो जाय। दूसरा घरपर पहुँचा, किवाड़ खट-खटाये; घरवालोंने भीतरसे दरवाजा खोल दिया। वह जाकर उजालेमें बैठा, खाया, पिया, हास-विलास किया और सबके साथ आरामसे सो गया। इसमें पहला ज्ञानवानका जीवन है और दूसरा भक्तका। पहलेमें केवल स्वरूप है, प्रकाश है। दूसरेमें स्वरूप है, प्रकाश है, लीला है। एकका मन मुर्दा होकर मिट्टीसे मिल गया, दूसरेका मन सुन्दर उद्यानके समान हरा-भरा एवं प्यास और तृप्तिकी हिलोरें ले रहा है।"

इस प्रकार नित्य नये वचन-विलास होते। एक-दो बजेके लगभग श्रीभक्तकोकिलजी अपनी कुटियापर लौट आते और श्रीस्वामिनी जनकनन्दिनीजीको प्रणाम करके आशीर्वाद देते—

अजरु अमरु हुजे मिठी वैदेहीं।
हास विलास डीहँ रातियूँ हुजेईं ॥
तुहिंजे पदरज खेवि कालु न वठेईं।
गुरु परमेश्वर डियेव सघिड़ी घणी ॥

परम मधुर श्रीवैदेही, आप अजर हों, अमर हों। अहर्निश आपके श्रीचरणोंमें हर्ष-उल्लास, हास-विलास निवास करें। आपके श्रीचरणारविन्दमकरन्दके कणको भी काल स्पर्श न कर सके। श्रीवाहगुरुपरमेश्वर आपके सुख, शान्ति, सौन्दर्य और धर्मकी दिन-दूनी रात-चौगुनी वृद्धि करें।

थोड़ा विश्राम करके भक्तकोकिलजी स्नानके स्थानपर आ बैठते। अपने सन्त-सद्गुरुके स्नानका स्मरण हो आता

और स्नानके समय श्रीसत्गुरुदेव जिन चौपाइयोंका गान करते थे, वही गान करने लग जाते थे। यह नियम जीवनमें कभी भङ्ग नहीं हुआ। उस समय सन्त-सद्गुरुके स्वभाव, स्नेह, करुणा और भगवत्प्रेमका स्मरण करके इस प्रकार भाव-मग्न हो जाते कि पहले आँखोंके जलसे ही स्नान हो जाता, बाहरी जलसे तो पीछे स्नान करते। स्नानके पश्चात् श्रीस्वामिनीजीकी सुख-समृद्धि एवं कुशलके लिये सुखमनी साहब का पाठ करते और कन्याओंको भोजन कराकर तब स्वयं भोजन करते। भोजनके बाद और कथाका समय होनेसे पहले एकान्तमें निवास करते। तीन घण्टे तक भगवत्कथा होती। सैकड़ों सत्सङ्गी एकाग्र चित्तसे भावमें मग्न होकर श्रीस्वामी-जीके वचनामृतका आनन्द लेते। 'जय हो, जय हो' की ध्वनि से कथामण्डप गूँज उठता। सायंकाल दरबार साहबमें श्रीश्यामाश्यामजूके मन्दिरमें धूमधामके साथ आरती होती। सब लोग नामसंकीर्तन करके नाचते और तन्मय हो जाते। कभी-कभी तो श्रीस्वामीजीके नीचे उतर आनेका भी पता नहीं चलता। उनकी यह तल्लीनता देखकर श्रीस्वामीजी बहुत प्रसन्न होते। रात्रिमें फिर सत्सङ्ग जुड़ता, सुन्दर-सुन्दर पद गान होते। बीच-बीचमें सत्सङ्गी लोग और श्रीस्वामीजी भी प्रसङ्गके अनुसार सुन्दर-सुन्दर पद बोलकर भावोंका स्पष्टीकरण करते। सत्सङ्गी लोग भक्तकोकिलजीको हँसानेके लिये बहुत-सी विनोदकी बातें सुनाते और पशु-पक्षियोंकी बोली बोलकर हँसाते। सारी भक्तमण्डली लोट-पोट होने लगती और बड़े ही हर्ष, हुलाससे समय बीत जाता।

संत मिलन

संसारी जीव दुःखी हैं। वे जिन विषयोंमें सुख मानते हैं, उनके मिलनपर भी सुखी नहीं हो पाते। विषय-सुख भोगने के लिये भी मनकी एकाग्रता और कौशल चाहिये। साधक विषयोंमें आनन्द नहीं मानते। अपने इष्टका चिन्तन और उसीमें डूब जानेमें आनन्द मानते हैं; परन्तु इस आनन्दको अनुभव करने पर भी प्यास बढ़ती है और एक प्रकारकी अतृप्ति बनी रहती है। यद्यपि वे इस अतृप्तिको बहुत महत्त्व देते हैं, तथापि यह मार्ग ही है, मञ्जिल नहीं। तत्त्वज्ञ पुरुष समाधिमें स्थित होकर ब्रह्मानन्दमें मग्न हो जाते हैं। परन्तु यह ब्रह्मानन्द भी साम्य है, समान है। इसमें कोई विशेषता नहीं है। इसीसे तत्त्वज्ञ पुरुष समाधि अथवा ब्रह्मानन्दकेलिये कोई प्रयत्न न करके सहज स्थितिमें रहते हैं। सहज स्थितिमें ब्रह्मानन्द तो है ही, सत्सङ्गका आनन्द विशेष है। इसमें न विक्षेप है, न व्याकुलता है, न समाधि है। यह भीड़भाड़में भी एकान्त है। व्यवहारमें भी परमार्थ है। विषयमें भगवान् सोते हैं और जीव जागता है। साधनामें जीव जागता है, भगवान् करवट बदलते हैं। समाधिमें भगवान् जागते हैं, जीव सोता है। सत्सङ्गमें जीव और भगवान् दोनों ही जागते हैं। इसलिये लीलाविहारी भगवान्के प्यारे भक्त विषय-सुख, साधनसुख और ब्रह्मसुख का भी तिरस्कार करके सत्सङ्गका आनन्द लेते हैं।

सन्त एक हो और सत्सङ्गी अनेक, तब सन्तके हृदयके भावचन्द्रकी छाया सत्सङ्गियोंके हृदय सरोवरमें झिलमिलाने लगती है; परन्तु जब दो सन्त कहीं इकट्ठे हो जाते हैं तब दोनोंके भावचन्द्रकी धवल ज्योत्स्ना छिटककर एक अपूर्व प्रकाश, दोनोंकी प्रकाश रश्मियोंकी रङ्गबिरङ्गी झाँकियाँ, अद्भुत रसप्रवाह, अप्राकृत आह्लादका उदय होता है।

जतोई ग्रामके महात्मा स्वामी नारायणदासजीसे श्रीभक्तकोकिलजीकी अत्यन्त प्रीति थी। वे प्रायः प्रतिवर्ष वहाँ जाते और महीनों तक रहते थे। वे महात्मा श्रीभक्तकोकिल-जीको बड़े आदर और प्रेमकी दृष्टिसे देखते थे। एकबार श्रीभक्तकोकिलजीने उनसे पूछा—"आपको सन्तसद्गुरुकी कृपा कैसे प्राप्त हुई? उनकी शरणमें रहकर आपने क्या साधना की?"

महात्माजीने कहा—"मैं मुर्दा बनकर उनके पास रहा। बिना विचार किये उनकी आज्ञाओंका पालन करता। वे मुझे सावधान होकर भजन करनेके लिये कभी पहाड़की चोटीपर तो कभी कुएँ पर लकड़ी रखकर उसके ऊपर बैठाकर भजन करवाते। इस प्रकार मैं गिरनेके भयसे सावधान रहकर भजन, करता। मेरे सद्गुरुदेवने बड़ी कठोर साधना करके अपना आपा मिटा डाला था। वे एक दिन अपने आश्रममें भजन कर रहे थे। वहीं एक मनुष्य खड़ाऊँ पहिन-कर घूम रहा था। गुरुदेवने कहा—'मुर्दोंकी मजलिसमें कौन जिन्दा घूम रहा है?"

श्रीभक्तकोकिलजीने पूछा—"आपके मतमें दरवेशोंको किस प्रकार रहना चाहिये ?"

महात्माजी बोले–"पहली अवस्थामें भगवान्के प्रत्येक विधानको सहिष्णुता और शान्तिसे स्वीकार करना चाहिये। यह सहनशीलता बढ़ते-बढ़ते इस अवस्था तक पहुँच जाती है कि प्रत्येक दशामें ही भगवान्की कृपा और प्रसादका अनुभव होने लगता है। चाहे महलमें बैठे, चाहे झोंपड़ीमें, चाहे उत्तम भोजन मिले या सूखी रोटी, वे हर हालमें मालिककी मेहरबानी जानकर मस्त रहता है।"

महात्माने श्रीस्वामीजीसे पूछा—'आपके प्रेममार्गमें क्या मत है ?"

श्रीभक्तकोकिलजीने कहा—"अपने स्वामीकी दी हुई पीड़ा अमृतके समान मीठी लगे। इस अवस्थामें पीड़ा तो भासती है; परन्तु मीठी लगे। धीरे-धीरे प्रियतमकी स्मृति ऐसी गहरी हो जाती है कि पीड़ा और आस्वादकी पहचान ही नहीं रहती। मन, प्राण, आत्मा स्वामीकी स्मृतिसे ऐसे भर जाते हैं कि दूसरी बात सोचनेकी उसे फुरसत ही नहीं रहती।"

महात्माजीने प्रश्न किया—"ऐसी अवस्था किस तरह प्राप्त हो ?"

श्रीभक्तकोकिलजी बोले—"पहले पहल इस प्रेमरसकी प्राप्तिकेलिये प्रेमी सन्तोंकीशरणमें जाकर उनकी दासी बन जाय। प्रेम-भक्तिके मार्गमें इसे सदाचार कहते हैं। सदाचारसे

सुन्दर बने हुए मनरूप कपड़ेको सद्गुरुदेवके दिये हुए नामके मजीठ रंगमें रंग ले। अपना अहंकार और चतुरता छोड़कर यह विश्वास रखे कि प्रभु सदा मेरे पास हैं। प्रभुको सर्वदा पास देखनेसे हृदयमें उनका भय बना रहेगा। यही भय जीवरूप स्त्रीका सच्चा शृङ्गार है। प्रभु मेरे हैं और मैं प्रभुकी हूँ, यह सहज ममतारूप पान-बीड़ा खाकर चित्तरूप अधरोंको लाल करता रहे। इस भयमिश्रित ममताके मार्गमें चलते-चलते यह प्रेमी कीट-भृङ्गीके समान प्रियतम ही नहीं बन जाते बल्कि प्रियतमका ध्यान करते-करते उन्हें सर्वत्र प्रियतम ही प्रियतम दिखने लगता है। गाढ़ ध्यानमें भी उसकी यह भावना बनी रहती है कि मैं दासी हूँ। ज्ञानी और भक्तमें यही तो तारतम्य है। ज्ञानी अपनेको और प्रेमी प्रियतमको देखता है। प्रेमी अपने हृदयमन्दिरमें प्रीतिके पलङ्गपर 'सत्' की सेज बिछाकर 'श्रीगुरु' शब्दका मणिदीप जगाकर, सर्वदाकेलिये अविद्याका अन्धकार मिटाकर, सदा अपनेको बिछुड़ा हुआ समझ, कातर हृदयसे प्रियतमके मधुर नामकी पुकारकर, आठों पहर अनुरागमें मस्त रहकर, ईश्वरके सामने अनुनय-विनय करते हुए आँखोंसे आँसुओंकी धारा बहाता रहता है। यही स्नेहमयी सुहागिनीके नेत्रोंका काजल है जिससे प्रियतमको न देखनेका धुँधलापन मिट जाता है, फिर तो सदा सर्वदा अपने हृदयमन्दिरमें अपने प्रियतम प्राणवल्लभको विराजमान देखता है। जिस पुण्यमयी सौभाग्यवतीको इस प्रकार अपने प्रियतमका दर्शन प्राप्त हुआ, उसीको कभी तीनों तापोंकी लू नहीं लगती। यही प्रेमलक्षणा भक्ति है। इसके

बादकी प्रेमकी परावस्था प्राप्त होती है, जिसमें वह स्नेह-सुन्दरी, प्रेममाती, सौभाग्यवती अपने प्रियतमको प्रिय लगने लगती है। प्रियतम उसे पलभरकेलिये भी नहीं छोड़ता, सदाके लिये अपना बना लेता है।"

संसारके सब मत-मजहब, सब सम्प्रदाय जीवको ईश्वरके पास पहुँचानेकेलिये ही बने हुए हैं। उनके बाहरी रूपोंमें चाहे जितना भेद-विभेद मिले, भीतरी वस्तु भगवत्प्रेम-भगवत्स्वरूपमें कोई अन्तर नहीं है। सबके दिलमें ईश्वर ही धड़क रहा है। सबकी साँसोंपर ईश्वर ही झूला झूल रहा है। सबकी मनोवृत्तियोंके साथ वही नाच रहा है। सबकी बुद्धिमें वही जज बनकर बैठा हुआ है। वह सभीके हृदयमें मित्रसे आलिङ्गित मित्रके समान, पत्नीसे आलिङ्गित पतिके समान प्यारा-प्यारा, दुलारा-दुलारा निकट-से-निकट विराजमान है। उसको हिन्दू, मुसलमान या यहूदी, ईसाईकी कोई पहिचान नहीं है। सबका है, सबमें है, सब है। जो सन्त परमात्माके इस स्वरूपको पहिचान लेते हैं वे किसीके साथ रागद्वेषकी तो चर्चा ही क्या, भेदभाव भी नहीं करते हैं। वे सभीकी सचाई और ईमानदारीका आदर करते हैं। चाहे वे किसी भी दीन धर्मके क्यों न हों ?

श्रीभक्तकोकिलजी एक बार मुसलमान दरवेशकी समाधिका दर्शन करनेके लिये गये। फूल चढ़ाकर मस्तक झुकाया और बोले—'फकीर साहब, जगते हो ?' बस अचानक उस क़ब्रसे एक सफेद दाढ़ीवाला फ़क़ीर उठ खड़ा हुआ और

श्रीभक्तकोकिलजीसे उसने कुछ बात-चीतकी। श्रीस्वामीजीके साथ जो सेवक थे वे उस बात-चीतको न समझ सके। फकीर थोड़ी देर बाद उसी कब्रमें समा गया। श्रीस्वामीजीनेइस वार्तालापके सम्बन्धमें कभी किसीको कुछ नहीं बताया। पासमें ही इस्लामका धर्मग्रन्थ कुरानशरीफ रखा हुआ था। स्वामीजीने उसपर भी फूल चढ़ाकर प्रणाम किया और खोलकर दर्शन किया। सेवकने नम्रतासे नत हो प्रश्न किया—"स्वामीजी, गीतामें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र कहते हैं कि हर एकको अपने धर्ममें दृढ़ और दूसरेके धर्मसे दूर रहना चाहिये।" श्रीस्वामीजीने मुसकराकर कहा—"जो ईश्वरके पास पहुँच चुके हैं, वे समर्थ पुरुष सब एक रूप हैं। सब सन्त ईश्वरके घरसे आते हैं। जैसे एक ही बिजलीघरसे लाखों-तार निकलकर लाखों बल्वोंको ज्योति देते हैं—कहीं नीले, कहीं पीले और कहीं सफ़ेद, वैसेही संसारका अज्ञानान्धकार दूर करनेके लिये कहीं किसी रूपमें, कहीं किसी रूपमें भिन्न-भिन्न मत-मजहबमें, भिन्न-भिन्न रूपमें सन्त प्रकट होते हैं। हम तो हर जगह सद्गुरुदेव श्रीनानकजीको ही देखकर प्रणाम करते हैं और सभी शास्त्रोंको श्रीरामायणस्वरूप ही समझते हैं।"

श्रीभक्तकोकिलजी एक बार एक सूफी फकीरसे मिलने गये। आपके साथ बहुत-से सेवक थे। श्रीस्वामीजीने इतनी भीड़ लेकर सन्तदर्शनके लिये जाना ठीक नहीं समझा। रात्रि-का समय, जङ्गलका स्थान और गैरमजहबके सन्त! सेवकोंने प्रर्थनाकी कि सब नहीं तो दो-चार ही साथ चलें। परन्तु श्रीस्वामीजीने किसीको भी साथ न लिया। वे दृढ़ स्वरसे

बोले—"फकीरोंके पास जानेमें डरका क्या काम ? तुम लोग हमारी क्या रक्षा कर सकते हो ? सबके रक्षक एकमात्र प्रभु हैं।" श्रीस्वामीजी अकेले ही फकीरके पास चले गये। जाकर नम्रतासे प्रणाम किया। फकीरने बड़े आदर और प्यारसे बिठाया। वार्तालापके प्रसङ्गमें श्रीस्वामीजीने पूछा कि ईश्वर-मिलनके लिये क्या यत्न करना चाहिये ? फकीरने कहा—"फकीरोंके दिलसे दिल मिलाना चाहिये।" भक्तकोकिलजी बोले—"दिलसे दिल कैसे मिलाया जाय ?" फकीरने कहा—फकीरके साथ अपनी सब क्रिया मिला देनी चाहिये, जूठा खाना, उतरे कपड़े पहिनना आदि आदि।" भक्तकोकिलजीने कहा—"यह सब तो बाहरी क्रिया है। बाहरी क्रिया सब धर्मोंकी अलग-अलग होती हैं। मैंने तो दिल मिलानेका यह अर्थ सुना है कि ईश्वरमिलनके लिये फकीरोंके हृदयमें जैसा प्यार, प्यास, भाव और साधना होती रहती है, उसको अपनाना ही दिल-से-दिल मिलाना है। आपके पुरखे रोहल सन्तसे किसी कायस्थने जूठन माँगी; परन्तु उन्होंने नाराज होकर कहा—"तुम अपने धर्ममें चलो। गीतामें यही तुम्हारे भगवान्‌की आज्ञा है। सन्तोंके हृदयसे प्रवाहित उपदेश-रसके रङ्गमें अपने जीवनको रँग देना ही, उनकी आँखोंके इशारेके तालपर नृत्य करना ही उनके दिलसे दिल मिलाना है।"

श्रीभक्तकोकिलजीके खरे और सच्चे वचन सुनकर फकीरने प्रसन्न होकर इनके दोनों हाथ हाथमें ले लिये और उन्हें अपने आँखोंसे लगाया।

एक दिन श्रीभक्तकोकिलजी एक दूसरे सूफी सन्तके पास गये। सूफी सन्तने उन्हें विराजमान करनेके लिये एक चारपाई मँगवायी; पर श्रीभक्तकोकिलजीने उसपर बैठना स्वीकार नहीं किया और आसनको नमस्कार करके नीचे धरती पर बैठगये। श्रीस्वामीजीने हाथ जोड़कर पूछा कि "आपके मुर्शिद सचल सन्त ईश्वरसे मिलनेकेलिये साधनाकी हद कहाँ तक बताते हैं ?"

सूफी सन्तने कहा—"यदि जीव सच्चे हृदयसे साधना करता हुआ ईश्वरकी ओर चले तो भी ईश्वरके पास पहुँचनेमें हजारों वर्ष लग सकते हैं। अगर मुर्शिदकी कृपा होजाय तो यह विषयमें फँसा हुआ जीव भी बिना किसी साधनके दस बरस, दस महीना, दस दिन, दस घड़ी, दस पलमें भी ईश्वरसे मिल सकता है।" यह सुनकर श्रीस्वामीजीको अत्यन्त हर्ष हुआ। बोले—"वाह-वाह ! सूफी सन्तोंकी यह बात बहुत अच्छी है। मुर्शिदकी मेहरसे क्या नहीं हो सकता ? वह बिन्दुको सिन्धु, तृणको कल्पवृक्ष, नागफनीको चन्दन, लोहेसे सोना, मुर्देसे जिन्दा और जड़से चेतन बना देती है।"

चार प्रकारके भक्तोंकी नवीन व्याख्या

सिन्ध प्रान्तके दादू जिलेमें थले नामका एक छोटा-सा कस्बा है। वहाँके बहुत बड़े स्थान दरबार साहबमें सन्त श्रीकुन्दनदासजी महन्त थे। उनके साथ श्रीभक्तकोकिलजीका बहुत ही घनिष्ठ सम्बन्ध था। स्वामीजी वर्षमें प्रायः महीने-दो-महीने वहाँ रहते थे। खूब सत्सङ्ग होता, भगवच्चर्चा होती।

बहुत-से सन्त वहाँ इकट्ठे होते। वहीं सन्त श्रीटहल्यारामजी भी निवास करते थे। अब श्रीटहल्यारामजीके शिष्य श्रीप्रेमदासजी उस स्थानके महन्त हैं। एक दिन श्रीटहल्यारामजीने श्रीभक्तकोकिलजीसे प्रश्न किया—"बाबासाहब! श्रीगीताजीमें प्राणप्यारे श्रीकृष्णचन्द्रजीने भक्तोंके चार भेद जिज्ञासु, आर्त, अर्थार्थी और ज्ञानी वर्णन किये हैं तथा ज्ञानीको श्रेष्ठ बतलाया है। आप कृपा करके चारोंका स्वरूप और ज्ञानीकी श्रेष्ठता का कारण बतलाइये?"

श्रीभक्तकोकिलजीने कहा—"भाईसाहब! प्रेमरसमें मग्न होकर आनन्दकन्द श्रीव्रजचन्द्रने प्रेममूर्ति व्रजवासियों से जो कुछ शिक्षा प्राप्त की थी वह सब उन्होंने अपने प्रिय-सखा अर्जुनके सामने प्रकट कर दी। यह तो श्रीकृष्णका हृदय है, प्रेमा और पराका आनन्द है, मधुर रससे तरातर रसगुल्ला है। इसमें मिठास-ही-मिठास है, प्रेम-ही-प्रेम है। श्रीकृष्णके हृदयमें प्रेमके सिवा और है ही क्या? अच्छा, तो अब सुनो!

(१) आर्तभक्त वह है जो संसारको दुःखमय जानकर सुखस्वरूप प्रभुकी ओर व्याकुल और अधीर होकर चलता है।

(२) जब आर्तभक्तके हृदयमें प्रियतमसे मिलनकी प्यास जगती है और वह प्रेमी सन्तोंकी, प्रियतमसे मिलाने-वाले सन्तोंकी प्राप्तिकी इच्छा करता है और खोज करता है, सत्सङ्ग करते-करते सन्त सद्गुरुकी प्राप्ति होती है और वह अपना मान एवं सुख छोड़कर सद्गुरुकी सेवामें रहकर

शुभगुणोंको धारण करता है और अपनी मधुर लालसामें सद्गुरु द्वारा बतलाये हुए प्रियतमके मिलन-साधनमें संलग्न होजाता है वह जिज्ञासु भक्त है। ये जिज्ञासु भक्त दो धाराओंमें बँट जाते हैं। एक रागप्रिय दूसरा वैराग्यप्रिय। जो अपना सुखरूप अर्थ चाहते हैं वे वैराग्यप्रिय अर्थार्थी हैं। जो प्रभुका सुख रूप अर्थ चाहते हैं वे रागप्रिय अर्थार्थी हैं। पहले अर्थार्थी अपने लिये निर्वाणमुक्ति अथवा ब्रह्मसुख चाहते हैं, दूसरे अर्थार्थी अपने सुखकी कामनाको समूल नष्ट कर देते हैं और सदा युगलसरकारके प्रेमके रंगमें रँगकर केवल प्रियतमके सुखकी अभिलाषा करते हैं तथा मुक्ति आदि पदार्थोंकी आकांक्षाको सर्वथा नष्ट कर देते हैं। इस निष्काम एवं तत्सुखी मधुर भक्तिभावको जिसने सम्पूर्ण रूपमें जान लिया है और उसीमें तन्मय हो गया है वही सच्चा ज्ञानी भक्त है। वह निष्काम सनेही प्रियतम प्यारेको अपना परम प्रेमास्पद मालूम पड़ता है। प्रभु उस भक्तको नन्हें-नन्हें, भोले-भाले शिशुके समान अपनी गोदमें लेकर चूमते हैं, हृदयसे लगाते हैं और सिर सूँघते हैं। वह भक्त भक्तिमहारानीकी कृपासे प्रियतमकी गूढ़-से-गूढ़ लीला, गुण, चरित्र, प्रभाव, प्रताप, ऐश्वर्य, तत्त्व और रहस्यका ज्ञाता हो जाता है। इसलिये प्रभु उसको ज्ञानी कहते हैं। यह सब जान-बूझकर भी उसकी स्थिति प्रभुके प्रेममें ही रहती है। यह ज्ञानी भक्त प्रारम्भमें शान्त रसमें प्रवेश करता है। वह अपने अन्तरमें कोटि-कोटि सूर्यके समान प्रकाशमान रास-विलासके अद्भुत आनन्दका दर्शन करता है। वह उस मधुर आनन्दमें मग्न होकर सब कुछ भूल जाता है। निर्विकार सत्-चित् रह जाता है यह शान्तरस है।

कई भक्त इस आनन्दमें ही डूबे रह जाते हैं और कुछ विरले भक्तोंके हृदयमें इस महासुखमें भी सेवाकी लालसा उदय होती है कि इस प्यारी-प्यारी भोरी-भोरी किशोर-किशोरी युगलजोड़ीके सान्निध्यमें पहुँचकर सेवा करूँ। बस, उसके मनकी अभिलाषा जानकर युगलसरकार तत्क्षण उसे अपनी दासी बनाकर सेवामें लगा लेते हैं। तब वह कभी पङ्खा झलती है, कभी चँवर डुलाती है, कभी युगलके महलमें झाड़ू लगाती है, कभी पानी भरती है और युगलको, प्यारी सहचरियोंको अपनी प्रेमपूर्ण सेवा, स्नेहभरी सहृदयता, सद्भाव और सद्गुणोंसे प्रसन्न करती है। यह दास्यरस है।

दासीके नम्र आज्ञाकारी, इङ्गितज्ञ, सौम्य, फुर्तीले और हितैषी शील-स्वभावको देखकर युगलसरकार प्रसन्न हो जाते हैं और अनुचरीको सहचरी बना लेते हैं। तब वह सदा-सर्वदा युगलके साथ रहकर उनके सुखके साज सजाती है। उनके मिलानेका यत्न करती है। युगलके परस्पर मानकी शान्तिके लिये एक दूसरेका एक दूसरेके पास प्रेम-सन्देश पहुँचाती है, निहोरे करती है, हाहा खाती है, युक्ति बनाकर, झूठ बोलकर, अपने धर्म-अधर्मकी परवाह छोड़कर युगलको मिलाती है। वह उनके खेलनेके लिये खुद खिलौने बन जाती है। होरीके दिनोंमें कभी रङ्ग, कभी पिचकारी, कभी कमोरी और कभी तीनों बनकर युगलको उमङ्गकी भङ्गसे नये-नये रङ्गमें सराबोर करती है। नया चाव, नया जोश, नया आवेश उकसाती है। वह सहचरी कभी हरिण बनकर युगलके वस्त्रका छोर मुँहमें डालकर लाड़से खींचती है, कभी कोकिल बनकर मधुर-मधुर

पञ्चम स्वरमें तान अलापती है, कभी पपीहा बनकर 'पी-कहाँ, पी-कहाँ' बोलकर मिलनके लिये उत्कण्ठित करती है, कभी हाथमें मधुमधुमती वीणा लेकर मधुर रँगीली राग-रागिनियोंका साजसमाज उपस्थित कर देती है। तात्पर्य यह, जैसे युगल प्रसन्न हों, सुखी हों वही खेल खेलती है। युगलके मनमें खेलनेकी इच्छा उदय होनेके पूर्व ही जान लेती है और वही साज सजाकर रखती है। यह सख्यरस है।

यह सुखात्मक अनन्त मधुर प्रेम देखकर युगल उसके वश हो जाते हैं। जिस प्रकार बच्चा निःसंकोच होकर अपनी प्यारी मां से लाड़-प्यार करता है, वैसे ही युगलसरकार अपनी सहचरीके साथ निस्संकोच हो जाते हैं। उसपर पूर्ण-विश्वास करके अपने हृदयका सारा हाल कह देते हैं और उसके साथ अटपटी चाल चलते हैं। अब वह सहचरी-सहचरी नहीं रहती, परम वात्सल्यमयी बड़ी बूढ़ी-सी होकर दोनोंको सुख पहुँचाती है। युगल उसकी गोदमें बैठकर रस-रङ्गकी क्रीड़ा करते हैं। मान करनेपर वह समझाती-बुझाती है, अधिक हठ करने पर डाँटने-फटकारनेमें भी नहीं चूकती। जब किसी भूलके कारण मान हो जाता है, तब यही परिस्थितिका स्पष्टीकरण करके मान छुड़ाती है और युगलसरकारको प्रेमके हिंडोलेपर सुलाकर झोंटे देती रहती है।

———

श्रीप्रियाजीसे प्रियतमका विनोद

एक बार आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दिनी श्रीवृषभानुनन्दिनी अपने प्रियतमकी उरमणिमें अपना प्रतिबिम्ब देखकर मुग्ध स्वभावसे भोरे-भोरे वचन कहने लगीं—"देख री देख सखी प्रियतमकी करतूत ! ये मेरे सामने अपने प्रेमकी कितनी डींग हाँकते हैं ? तू भी दिनरात न जाने क्या रिश्वत लेकर उन्हीं की तारीफ और चापलूसी करती रहती है ! देख ले इनके गुन ! आज तो हमारे सामने ही चन्द्रावली को गोदमें लेकर हमें चिढ़ा रहे हैं । अब रत्तीभर भी शरम संकोच नहीं रहा ।" नन्दनन्दन श्यामसुन्दरने मन्द-मन्द मुस्कराकर सखीसे कहा—"प्रियसखि ! इसमें मेरा क्या अपराध है ? मैं गौओंको चराकर अपनी मौजमें अपने रास्तेसे विना किसीसे कोई छेड़छाड़ किये, विना नूपुर बजाये, विना बाँसुरी पर तान छेड़े, कहीं कोई सखी मेरे पीछे न लग जाय इसलिये दबे पाँव प्यारीजूके दर्शनोंकेलिये भूखा प्यासा चला आ रहा था । इतनेमें ही यह न जाने कहाँसे मेरे पीछे पड़ गयी और हाथ जोड़कर पाँव पड़कर आर्द्र नेत्रसे प्रार्थना करने लगी कि मैं श्रीवृषभानुदुलारी, आपकी प्राण-प्यारीके दर्शनोंकी प्यासी हूँ । मुझे शीघ्र-से-शीघ्र उनके पास ले चलो, मैं उनकी दासी बनकर सब प्रकारकी सेवा करूँगी । मुझे उनसे जल्दी मिला दो ।" मैंने इससे अपना पल्ला छुड़ाने की बहुत कोशिश की, इधर-उधर भगा; लेकिन यह भी एक

ही है। बस, झपटकर मेरे वक्षस्थलसे लिपट ही तो गयी, गोंदकी तरह चिपट गयी। इसमें मेरा क्या दोष है? हृदयकी भोरी रसकी बोरी श्रीभानुकिशोरीजीने तपे स्वर्णके समान कुछ तमककर कहा—"सुन री सखी सुन! इनके मस्तककी एक-एक नसमें कोटि-कोटि वकील वैरिस्टर भरे हैं। हम भोरी-भोरी मुग्धस्वभावा व्रजाङ्गनाओंसे इतनी चतुराई करनेकी क्या जरूरत है? तुम भरमाते हो तो भरमाओ, मैं तो तुम्हारी बात सत्य मानती हूँ।" युगल सरकारके ऐसे मधुर-मधुर चोंजभरे लाड़-प्यार, उलाहना एवं कटाक्षसे सने वचन सुनकर वह वात्सल्यकी देवी कहने लगती है। 'मेरी प्यारी ललित लड़ैती जू! हृदयमें झूठे सन्देहको सदेह मत करो।' अरी अरी मुग्धे! स्नेहोन्मत्ते, प्रियतमके हृदयमणिमें तुम्हारी ही झाँकी झिलमिला रही है। वह चन्द्रावली नहीं श्रीराधाचन्द्र-चन्द्रिकावली है। मैं शपथपूर्वक कहती हूँ, प्रियतमके दिल दुलही की तुम ही दूलह हो! हृदयधनकी स्वामिनी हो, मनमोहनके मनोहर मन-मन्दिरकी मनभावती जीती-जागती आराध्यदेवी हो। इनका हृदय तो तुम्हारे अविचल प्रेमका सिंहासन है और तुम उसपर विराजमान होकर शासन करनेवाले एकछत्र अमर सम्राट हो। यह दासी, सखी और फिर वात्सल्यवती देवी क्षण-क्षण युगलको नवीन-नवीन हृदय-रस-सनेह-सुधाका पान कराती रहती है। यह वात्सल्यरस है।

ऐसी पवित्रता, भाव और सनेहकी मूर्त देवी ही युगल के मधुमय, रसमय, लास्यमय, प्रेममय, हास-विलास, मान-

मनावन आँखमिचौनी, मिलन आदिका दर्शन करती करती स्वयं भी उसी रसमें पग जाती है। सनेहकी धारा परिपक्व होकर भाव-शाबल्यसे जमकर प्रेमकी रईसे मथी जाकर श्रृङ्गाररसरूप घृतके रूपमें प्रकट होती है। इस अवस्थामें युगलके प्रति इतना अनुराग होता है कि विछोहकी कल्पना भी अकल्पनीय अनल्प संकल्प-विकल्पोंका जाल बिछा देती है। हृदयमें व्याकुलता और मुखमें जल्पनायें, शरीरसे सभी कार्य युगलके कुशल और मिलनके लिये होते हैं। एक आकांक्षा, एक उत्कण्ठा, एक ही भूख-प्यास युगल सर्वदा मिले रहें, प्रसन्न रहें, क्रीडावारिधिमें अनङ्गतरङ्गोंसे रंगरेलियाँ करते हुए उमङ्गमें भरे रहें, अनुरागके रंगमें रँग रहें, प्रीतिके पनमें परस्पर एक दूसरेको पछाड़ते रहें, प्रेमका प्रकाश हो, रसका विकास हो, क्रीडाका उल्लास हो, आनन्दका निवास हो। इस अवस्थामें पहुँचकर वात्सल्यकी कंचुकी खुलकर स्वयं ही गिर जाती है। एक परम सुभग, परम सुन्दर, परम मधुर षोडशी किशोरीका दिव्य चिन्मय शरीर निखर आता है। वह श्रृङ्गार रसमें पूर्ण और प्रिया-प्रियतमको रिझानेवाला होता है। उस पर दृष्टि पड़ते ही युगल रसावेशसे झूमने लग जाते हैं। वह षोडशी सुकुमारी किशोरी देखती है कि युगलकिशोर संयोग-श्रृङ्गार-विहारमें परस्पर एक दूसरे पर राशि-राशि रूप-सौन्दर्यका गुलाल बिखेर रहे हैं। परन्तु नेत्रोंमें किरकिरी नहीं होती। प्यासे-प्यासे, मद-भरे, अमृत-भरे, रतनारे, ललित-ललित लोचन परस्पर रूप मधु-माधुरीका पान कर रहे हैं। विविध सुगन्ध दिव्य पदार्थादिसे संयुक्त ताम्बूल परस्पर एक

दूसरेके मुखसे लेकर आस्वादन कर रहे हैं। एक दूसरेकी नासिका एक दूसरेके दिव्य सौरभसे पग रही है। इतरका उपयोग करने पर भी उसका कहीं पता नहीं चलता। अधरों पर मन्द-मन्द मुस्कराहट, बीच-बीचमें शरदचन्द्रविनिन्दक अमन्द हास्य, परस्पर एक दूसरेके मुखसे वचनपुष्पोंकी ऐसी वर्षा मानो कल्पवृक्षके सुकुमार कुसुमोंकी झड़ी लग रही हो। दोनों ही चाहते हैं कि बस, हम दोनों कानोंके दोनोंसे इस कुसुमासवका पान करते ही रहें। परस्पर कमनीय कोमल कलेवरके सुखद संस्पर्शसे दोनों ही विपुल पुलकावली-प्रफुल्लित हो रहे हैं, सीत्कारपूर्वक सिहरनका अनुभव कर रहे हैं। दोनोंका ही मन आनन्द सुधानिधिमें मग्न होकर तटस्थ बुद्धिको अनङ्ग-रस-तरङ्ग-रङ्गसे सराबोर कर नेत्र-से-नेत्र, कपोल-से-कपोल, अधर-से-अधर, वक्षःस्थल-से-वक्षःस्थल मिलाकर सर्वाङ्ग परिरम्भण, परस्पर मोदक आदि महाभावों का अनुभव, रभस-वलित केलिकौतूहल, कटाक्ष-निक्षेप एवं परस्परालम्बन, ललित-लावण्यनिधि निर्द्वन्द्व दम्पतिकी उद्दामलीलाको उद्दीप्त कर रहा है।”

युगलसरकारकी नित्यनूतन कमनीय क्रीडायें देख-देख कर शृङ्गाररसासक्त एवं गोपीभावमग्ना देवी आनन्दके महा-समुद्रमें डूबती उतराती रहती है। यह शृङ्गाररस है।

भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें जिस ज्ञानीकी बड़ाईकी है वह इसी युगल मधुर रसका ज्ञानी है। उसमें अपना सुख-स्वार्थ नहीं है। यह तो कहना ही क्या, उसे तो अपनी ही

याद नहीं है। उसे युगल-धाम, युगल-रूप, युगल-लीला, युगल-सेवा, युगल-सुखके अतिरिक्त और किसी बातका स्फुरण ही नहीं है।"

श्रीटहेल्यारामजीने इस प्रसङ्गका श्रवण करके आनन्द में डूबते उतराते हुए गद्गद कण्ठसे कहा—"श्रीस्वामीजी! इस रसको अनुभव करनेकी मेरी बड़ी लालसा है, आप कृपा करके अनुभव कराइये।" इस पर श्रीस्वामीजीने कहा—"आप मान-प्रतिष्ठा आदिका भाव त्याग कर बालकके समान सरल, निश्छल होकर पाँच वर्ष मीरपुरके सत्सङ्गमें निवास कीजिये और तन-मन-वचनसे आज्ञाके अनुसार साधन कीजिये। सद्गुरु नानकदेवकी कृपासे आपको इस रसका अनुभव हो सकता है।" श्रीटहल्यारामजीने कहा—"बाबासाहब, मैं बूढ़ा हूँ। मेरे ऊपर दरबारके बड़े-बूढ़े हैं, सत्सङ्गी हैं। मैं लगातार पाँच वर्ष मीरपुरके सत्सङ्गमें कैसे रह सकूँगा? इसलिये कृपा करो, मैं लगातार बारह महीने तक रहूँगा और तन, मन, वचनसे आपकी आज्ञाका पालन करूँगा। कोई बाहरी इच्छा न करूँगा। पाँच वर्षकी क्या बात है, मैं तो जीवनभर आपके पास आता जाता रहूँगा। यह बात उन्होंने एक कागज पर लिखकर अपने हस्ताक्षर कर दिये।

इसके बाद श्रीटहेल्यारामजी बारह महीने तक श्रीमीरपुरके सत्सङ्गमें रहे। तन्मय वचनसे श्रीस्वामीजीकी

आज्ञाका पालन और सत्सङ्ग करते रहे। उनके प्रेमकी अवस्था बहुत ऊँची चढ़ गयी उन्हें दिनरात श्रीअयोध्या-ही-अयोध्या सूझती थी। बारह महीनेके बाद थलेके श्रीदरबार साहबमें चले गये; परन्तु बराबर जीवनभर श्रीस्वामीजीके पास आते जाते और सत्सङ्गसे लाभ उठाते रहे।

ओही ग्रामके महात्मा श्रीभगतरामजी बड़े ही शान्त और ब्रह्मानन्दी थे। श्रीस्वामीजीने उनके पास जाकर श्रद्धासे मस्तक झुकाकर चरणस्पर्श करनेकी चेष्टा की। श्रीभगत-रामजीने उनके दोनों हाथ अपने हाथमें ले लिये और बोले—"आप तो भक्तराज हैं, भगवान्के अत्यन्त प्यारे बच्चे हैं।" श्रीस्वामीजीने बड़ी नम्रतासे कहा—"आप ज्ञानवन्त हैं, प्रभुके बड़े बेटे हैं, हमारे पूज्य हैं।" श्रीभगतरामजीने प्रसन्न होकर श्रीस्वामीजीको हृदयसे लगा लिया। यह ब्रह्मानन्द और प्रेमानन्दका अद्भुत मिलन अत्यन्त ही आनन्ददायक दृश्य था। बातचीतके प्रसङ्गमें श्रीभगतरामजीने कहा—"भक्तजन किन-किन गुणोंको धारण करते हैं जिससे वे प्रभुके अत्यन्त प्यारे बन जाते हैं?"

श्रीभक्तकोकिलजीने कहा—

१—अपनी क्रियासे किसीका अनिष्ट न हो, अपने वचनसे किसीको कष्ट न हो, अपने मनमें किसीका अनिष्ट चिन्तन न हो, किसी भी प्राणीको दोषी, नीच और घृणास्पद न समझना। गुरुजनोंके सामने किसी प्रकारकी धृष्टताका बर्ताव न करे, अतिसज्जनरीतिसे सत्सङ्गमें रहे, दुष्टसङ्ग न करे।

२—मान, प्रतिष्ठा, बड़ाई, यश आदि से बचना। क्योंकि इनसे अभिमान बढ़ता है। किसीसे घृणा न करना, विषयोंकी प्राप्ति होनेपर उनमें सुख न मानना। क्योंकि झूठ, चोरी, हिंसा, व्यभिचार आदि दुर्गुणोंका मूल यही है।

३—प्रियतम की ही बात करना और कोई बात करनी पड़े तो सच्ची, प्रिय, निश्छल, हितकारी, थोड़ी और मौके की ही करनी चाहिये। नीरस और व्यर्थ बात कभी नहीं करनी चाहिये। पवित्र भोजन करना चाहिये, भोजनकी पवित्रता ईमानदारीकी कमाई में है। यह भक्तिरससे पूर्ण विग्रह (शरीर) पर अनुग्रह करना है। परगुणोंमें प्रीति, अपनेको दोष रहित न जानना, बुद्धिमें निपुणता और गम्भीरता, मनमें निर्मानता, प्राणोंमें प्यास, चित्तमें भोरापन, धर्ममें तत्परता, दानमें उत्साह।

४—भगवान् सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, परमकृपालु, परम मधुर, सुन्दर, भक्तवत्सल और प्रेमपरवश हैं—ऐसा निश्चय हो। प्रभु शक्ति, प्रेम और ज्ञानके अनन्त समुद्र हैं। मैं उनका एक बिन्दुमात्र हूँ। वे यन्त्री हैं, मैं यन्त्र। वे भोक्ता हैं, मैं भोग्य। वे आत्मा तो मैं शरीर। इस प्रकार मनमें सोचते रहना उनके नाम, धाम, रूप, लीला, गुण, सेवा, स्वभाव आदिका चिन्तन, श्रवण, वर्णन। अपने अपराधोंके लिये प्रभुके सामने तोबा करना। हृदयमें प्रेमकी तीव्र लालसा और उसके लिये व्याकुलता। इसके लिये हृदयसे रोना और आँखोंमें आँसू लाना। सबकी वन्दना करना, परन्तु मनमें एक ही रखना, जैसे सती। दिनोंदिन प्रेमकी वृद्धि होना।

ऐसे मधुर गुणोंसे युक्त भक्त प्रभुको अपनी आत्मासे भी अधिक प्रिय है। वह सभीका पूज्य है। वह किसी भी जातिमें हो, किसी भी वेशमें हो, कहीं भी हो, उसका प्रसाद पाकर जीव बिना जप-तपके भी प्रभुसे मिल जाता है और वैकुण्ठादि लोकोंका आनन्द प्राप्त करता है। रसिकराज श्रीरघुनाथजीने भी जब सिद्धा शबरी भीलनीके जूठे बेर खाये तब श्रीप्रियतमाका पता प्राप्त हुआ और बिछोहकी बाधा दूर हुई।" यह सुनकर महात्माजी बहुत प्रसन्न हुए।

माझांद ग्रामके महन्त बाबा देवीदासजीसे श्रीभक्तकोकिलजीकी बड़ी घनिष्ठता थी। उनके आग्रहसे श्रीस्वामीजी कभी-कभी जाकर उनके पास रहते थे। बाबा देवीदासजी बड़े ही गुरु-भक्त थे। रात-रातभर श्रीगुरुदेवकी समाधिके पास बैठकर रोया करते थे। श्रीस्वामीजीके मुखसे किसी गुरु-भक्तकी कथा सुनकर उनकी आँखोंसे आँसुओंकी झड़ी लग जाती थी। श्रीस्वामीजी वहाँ प्रातःकालीन भजनसे उठकर श्रीशिवमन्दिरमें जाते और अपने हाथोंसे झाड़ू लगाकर मन्दिरकी सफाई करते जाते और मधुर-मधुर स्वरमें गीत गा-गाकर भगवान् शङ्करकी स्तुति करते—

अवढरदानी भोला सुन वीनती हमारी।
हर हर गिरजावर शंकर त्रिपुरारी॥
दानि शिव दिगम्बर गिरीश ईश जगदीश्वर,
भाँग औ अफीम खाओ हिमालय विहारी॥
शंकर डर करहुं वास दुर्दिन नहिं आवैं पास,

शोकहर अशोककर शब्द सुरति प्यारी ॥
गंगाधर आनन्दघर चन्द्रमौलि उमावर,
गौरीशंकर कर सत्संग 'मैंगसि' रखवारी ॥

एक बार माझांदमें सन्त-समागम हुआ। वहाँ भक्त कँवररामजी आये। भक्त कँवरराम सिन्धके प्रसिद्ध भक्तोंमेंसे एक हैं। उनके कण्ठमें मुरलीकीसी मिठास थी। वे अपनी मण्डलीके साथ नृत्य करके प्रभु-गुणानुवादके पद गाते थे। उनका गान सुननेके लिये लाखों स्त्री-पुरुष इकट्ठे हो जाते और लाखों रुपये भेंट चढ़ते। वे इतने निःस्पृह थे कि भेंटके रुपये और वस्तुएँ गरीब हिन्दू-मुसलमानोंको बाँट देते थे। स्वयं चने बेचकर जीवन-निर्वाह करते थे। श्रीभक्तकोकिलजीसे उनकी बहुत प्रीति थी। वे श्रीभक्तकोकिलजीसे मिलनेके लिये मीरपुर भी आते थे। श्रीभक्तकोकिलजी भी उनसे मिलनेके लिये अपनी मण्डलीके साथ उनके पास उनके गाँव गये थे।

दिलकी खोज

माझांदमें सिन्धुनदके तटपर एक दिन श्रीभक्तकोकिलजी, बाबा देवीदास, श्रीटहल्यारामजी और भक्त कँवररामजी विराजमान थे। बाबा देवीदासजीने श्रीभक्तकोकिलजीसे पूछा, स्वामीजी, एक फकीरकी वाणी है कि—

तेरी गलीमें आकर खोये गये हैं दोनों।
दिल तुझको ढूँढ़ता है, मैं दिलको ढूँढ़ता हूँ ॥

इसका भाव क्या है? उसका दिल किस गलीमें खो गया है? वह उसे क्यों ढूँढ़ रहा है?

श्रीस्वामीजीने कहा—"प्रेमी पुरुषोंकी चाल अटपटी है। उसे वे ही जानते हैं। दूसरोंकी सूझ-बूझ काम नहीं करती, यह फकीर प्रेमकी टेढ़ी-मेढ़ी गलीमें घूमते-फिरते विरहकी सँकरी किन्तु लम्बी खोरमें जा पहुँचे हैं। विरहकी पहुँच बहुत गहरी है। वह दिलकी छिपी हुई तहोंको उधेड़कर बाहर ले आता है। प्रियतमने कितनी गहरी चोटकी है, कैसा अचूक लक्ष्य-वेध किया है? वे दिलका कतरा नहीं, दरिया ही चुरा ले गये हैं। इसका पता विरहमें ही चलता है। विरह कड़ुआ तो है परन्तु उसमें भी एक मिठास है। तुर्रा तो यह कि वे इतनी खूबीके साथ दिलको चुराते हैं कि दिलको भी पता नहीं चलता कि मेरी चोरी की जा रही है। वह समझता है कि मैं चोरको ढूँढ़ने, पकड़ने जा रहा हूँ; परन्तु इसी गफलत में वे कमाल कर गुजरते हैं। जब बेचारा प्रेमी अपने बेदिल प्राणको, रीते तन-बदनको देखता है तब दिलको ढूँढ़नेकेलिये दौड़ पड़ता है। कभी वह सोचता है कि दिल मिलेगा तो दिलवर भी मिल जायगा। कभी वह प्यारेको ललचाता है कि 'दिलतो ले गये, अब जान भी ले जाओ।' उसके पागल-पनको देखकर कोई पूछता है—'अरे मस्तराम, क्या कर रहे हो?' वह कहता है—'अपने दिलको ढूँढ़ रहा हूँ।'

इस प्रकार प्रिया-प्रियतमके विरह-समाजमें खोये हुए दिलको ढूँढ़ना भी अत्यन्त आनन्ददायक है। कोटि इन्द्रके वैभव-सुखसे भी अधिक है। इसमें स्वाद है; परन्तु भोग नहीं। स्व है पर स्वार्थ नहीं। सुख हो चाहे दुःख, स्नेहकी लौ जगती रहती है। इसमें दर्द है पर आह नहीं।

अब प्रश्न यह है, यह चोरी कैसी ? यह ले भागना क्यों ? उन्हींकी तो चीज है। वे सामने ही उलट-पलटकर जैसी मौज हो वैसे अपने काममें क्यों नहीं लाते ?

बिना विरहके मिलनका मजा नहीं मिलता। मिलन तो नित्य है, रोज़-रोजकी चीज है; उसमें क्या नयापन ? नवीनता तो तब है जब आँखमिचौनी हो, लुकाछिपी हो, ढूँढ़ना हो, पकड़ना हो ! इसीलिये यह माखन-चोरीका खेल खेला जाता है।

प्रेमी इस चोरी और सीनाजोरीको न समझते हों यह बात नहीं। जब एक ही गाँवमेंसे दो स्त्री-पुरुष गायब हो जाते हैं तो लोग अनायास ही समझ जाते हैं कि यह उसी पुरुषकी गड़बड़ी है। वैसे ही, जब दिलकी दूती प्रियतमको ढूँढ़कर लानेके लिये जाती है और स्वयं ही खो जाती है तब चतुर पुरुषोंको यह समझनेमें देर नहीं लगती कि यह उनकी ही कारस्तानी है। फिर भी प्रेमी जब ढूँढ़नेके लिये निकलता है तो रास्तेमें प्रियतम मिलते हैं। वे प्रेमीके दिलको अपने दिलमें छिपाकर पूछते हैं कि 'क्योंजी तुम मुझे ढूँढ़ रहे हो ?' प्रेमी कहता है—'राम-राम ! मैं आपको क्यों ढूँढ़ने लगा ? आपसे मेरी क्या गरज है ? मैं तो अपने दिलको ढूँढ़ता हूँ।' प्रियतम कहते हैं—'कहीं तुम्हें मुझपर शक-शुबहा तो नहीं है ?' प्रेमीने कहा—'राम कहिये ! मेरा दिल इतना कच्चा नहीं है। वह पहले भले ही आपके चक्रमेमें आया हुआ मालूम पड़े परन्तु पीछे वह आपको भी लेकर लौट आयेगा। मुझे उसपर

पूरा यक़ीन है। यही तो कारण है कि मैं आपको न ढूँढ़कर अपने दिलको ही ढूँढ़ता हूँ।'

साधक पुरुष अपने दिलको हर समय ढूँढ़ता रहता है। इस विरहके गहरे दुःखमें कहीं वह आरामकी साँस लेना न चाहने लग जाय, आनन्दमें डूब न जाय, प्रियतमका ध्यान करते-करते अभेदवादीके समान अपनेको प्रियतम न मान बैठे। जैसे किसीको एक काम पर नियुक्त करके उसके पीछे एक और खुफिया लगा दिया जाता है कि वह अपना काम पूरा करता है या नहीं, वैसे ही जब दिल प्रियतमको ढूँढ़ने लगता है तब प्रेमी लोग उसपर पैनी निगाह रखते हैं कि कहीं वह गोता न खा जाय। प्रेमोन्मादिनी गोपियोंतकको तो यह भय लगा रहता है कि कहीं हम भ्रमर-कीटकी भाँति प्रियतम न हो जायँ, यही साधकका दिलको ढूँढ़ना है।'

प्रेमप्राप्तिकी सुगम साधना

श्रीटहल्यारामजीने कहा—सूफ़ी सन्त पहले बाह्य रूपमें दृष्टि लगाकर मन एकाग्र करते हैं और उसे इश्क-मजाजी कहते हैं और मनके पूर्ण एकाग्र हो जानेपर फिर बाह्य रूपको छोड़कर हृदयमें प्रभुके ध्यानमें तन्मय हो जाते हैं। इसको इश्क-हकीकी कहते हैं। जैसे सूफ़ी पहले बाहरी रूपको खींचते हैं. इससे मिलता-जुलता उपाय वैष्णव-मतमें क्या है?'

श्रीभक्तकोकिलजीने कहा—'आजकलके चतुर पुरुषोंने जैसे फुहारा बनाया है. जिसकी एक धारासे सैकड़ों महीन

धारायें निकलती हैं. वैसे ही रसिक पुरुषोंने भी प्रेमके सूक्ष्म-सूक्ष्म रहस्य प्रकट किये हैं। रसिक लोग उन्हें समझते हैं।

पहले भगवान्‌के चित्रपट. श्रीविग्रह आदिके श्रीचरण-कमलोंको देख-देखकर मनमें भरना; अँगुलियोंपर, नाखूनोंपर, तलवेकी लालिमापर, पञ्जेकी रोम-राजिपर मन घुमा-घुमाकर समस्त संकल्पोंको मिटा देना—यह इश्क-मजाजीके समान है।

चित्तके एकाग्र होनेपर अपने हृदयमें प्रभुके रूप, लीला, सेवा, समाजमें मग्न हो जाना, यह इश्कहर्कीकीके समान है।

इसमें भी सबसे सुगम निःस्वार्थ और मधुर मार्ग है प्रेमियोंका दिल खींचना।

श्रीटहल्यारामजीने पूछा—'यह प्रेमियोंका दिल खींचना क्या है?' श्रीभक्तकोकिलजी बोले—'जैसे प्रियतमके प्रेमी, माता-पिता, सखी, सखा, सेवक आदि उनसे प्रेम करते हैं, उनका, उनके हृदयका ध्यान करना, उनके हृदयमें प्रियतमके लिये कितना प्रेम है, उनके हृदयमें प्रियतमके लिये कैसे-कैसे भावोंके उद्‌गार उठते हैं, वे प्रियतमकी कैसी सेवा. कैसा लाड़-प्यार करते हैं इसका चिन्तन, स्मरण करना उनके दिलको खींचना है। अपने भावसे स्मरण करनेमें भी कुछ स्व-सुख रहता है; परन्तु वे प्यार कर रहे हैं. सुख दे रहे हैं. इसमें भावकी गाढ़ता और रसका परिपाक सच्चा होता है। अपनी अयोग्यता और हीनताका संकोच नहीं रहता। जैसे वृक्षके सहारे लता भी ऊपर चढ़ जाती है, वैसे ही रागात्मिका

प्रीतिसे परिपूर्ण प्रेमियोंके सहारे साधारण भक्तजनोंको भी रागानुगा भक्तिकी प्राप्ति हो जाती है। श्रीयशोदामैया किस लाड़-प्यारसे अपने लाड़ले लालको अपनी गोदमें बैठाकर प्यार करती हैं; कभी सिर सूँघती हैं, कभी मुख चूमती हैं, कभी उछालती हैं, कभी लोरी देती हैं, कभी पालनेमें पौढ़ाकर झुलाती हैं, कभी नन्हें-नन्हें पाँवोंको हाथमें लेकर देखती हैं। उस स्नेहभरे लाड़को देखकर भक्तका हृदय भी उसी लाड़-प्यारसे भर जाता है। ध्यानकी सच्ची कुञ्जी प्रीति ही है। फिर तो प्रियतमके अङ्ग-प्रत्यङ्ग सामने चमकने लगते हैं। सच्चा प्रेम प्रकट हो जाता है। नामका जप या उच्चारण भी उन अनुरागियोंके हृदयको खींचकर ही करना चाहिये, जैसे वात्सल्यभावमें 'लाला कन्हैया, ओ ऊधमी, ओ मेरे बाप, मेरी आँखोंके तारे: कहाँ छिपा है?' सख्यरसमें, 'ओ गोपाल, गोविन्द' आदि; शृङ्गारमें 'गोपीजनवल्लभ, बाँकेविहारी, निकुञ्जविहारी आदि।'

जैसे नन्दीग्राममें श्रीभरतलालजी श्रीरामचन्द्रके ध्यानमें मग्न होकर विकल स्वरसे श्रीरामनामका जप करते रहते हैं। उन्हींकी विकलता, प्यास और भावका स्मरण करके नाम-जप करना चाहिये।

प्रेमियोंके हृदयका प्यार देखनेसे अपने हृदयमें प्यार आ जाता है। फिर तो जीव अनुरागरसरञ्जित हृदयसे युगलके परस्पर अनुरागका चित्र अङ्कित करने लगता है। हृदयकी जितनी-जितनी एकाग्रता पवित्रता और प्रियता बढ़ने लगती है

उतना-ही-उतना वह युगलके विहार, लीला-विलास और सरस चित्तको आकर्षित करने लगता है।

श्रीप्रियाजीके मनमें प्रियतमके प्रति क्या-क्या भाव उठते होंगे प्रियतमके मनमें अपनी प्राण-जीवनी श्रीस्वामिनीके प्रति कैसे-कैसे भाव उठते होंगे, वे परस्पर एक दूसरेका ध्यान कैसे करते होंगे, एक दूसरेके सुख, स्वाद, स्वभाव, गुण, भाव, लीला, चरित्र आदिका कैसे स्मरण करते होंगे, किस प्रकार परस्पर एक दूसरेके सम्बन्धमें चिन्तन करनेके सिवा और किसीका भी चिन्तन नहीं करते हैं—इन सब बातोंको सोचना, विचारना, चिट्ठी-पत्री लिखना, गुनगुनाना, भावमें मग्न हो जाना—यही सब प्रेमरसका सुगम मार्ग है।

मनको प्रतिदिन और प्रतिक्षणका ही यह अनुभव है कि जिससे कोई संसारी सम्बन्ध होता है उससे कितना मोह, कितनी ममता होती है और उसका कितना स्मरण-चिन्तन होता है। जो लोग प्रियतमसे कोई सम्बन्ध निश्चित कर लेते हैं उन्हें प्रेमाकर्षणमें बहुत ही सुगमता होती है और अपनी अलग नीरस साधना नहीं करनी पड़ती। आरम्भसे ही मनको प्रेमरसानन्दका अनुभव होने लगता है, इसलिये वह सहज ही इसमें अटक जाता है। साथ ही उन नित्य सहज प्रेमी समर्थ परिकरोंकी कृपा भी उन्हें प्रेम प्रदान करती है। यह रसिकपुरुषोंकी प्रेमगली है। एक फकीर कहता है—

"चल दिल यारकी गलीमें रो आयें।
कुछ तो दिलका गुबार धो आयें॥

श्रीस्वामीजीके मुखारविन्दसे यह वचन सुनकर भक्त कँवररामसाहिब गद्गद होकर बोले—'सत्य है, सत्य है। यही बात एक फ़कीरने भी कही है—

'प्रभुका घर बनाना है तो नक़शा ले किसी दिलका।'

श्रीभक्त कँवररामजीने भक्तकोकिलजीसे पूछा—'श्रीस्वामीजी! प्रारम्भमें ही वह नित्य प्रेमियोंके उच्च प्रेमको कैसे खींच सकेगा? क्या इसी रीतिसे उसकी भक्तिलता परा-अवस्था तक पहुँच जाती है?'

श्रीभक्तकोकिलजीने कहा—"शुरू-शुरूमें सद्गुरुकी शरण में जाकर सेवासे हृदयरूप खेतको शुद्ध करे। फिर सद्गुरु कृपा करके नामरूप बीज देते हैं। वह शुद्ध हृदयमें धीरे-धीरे प्रवेश करता है। जैसे बीज मिट्टी और पानीके मेलसे फूलता फलता और गुलो-गुलजार होता है, वैसे ही जो अपनी हस्ती मिटाकर दीनताकी खाक और प्रेमियोंके विरहभावका स्मरण करके आँसुओंके पानीसे नाम-रूप बीजको सींचते हैं, सत्सङ्गके सुरक्षित कोटके भीतर बाह्यान्तर प्रेमियोंके सङ्गसे भक्तिलता बढ़ने लगती है। उसमें अनुरागकी कोंपलें, भावके रङ्गविरङ्गे फूल और सेवारूप स्वादु फल लगते हैं। श्रीगुरु-परमेश्वरकी कृपासे यह भक्तिलता मायिक ब्रह्माण्डको पारकर विरजानदीका भी उल्लङ्घन कर जाती है। यहीं तक दशधा-भक्तिकी पूर्णता है। यहाँसे दो रास्ते फूटते हैं। यदि अपने विश्राम, आराम, सुख-कामका जागरण हो गया तब तो वह ब्रह्मानन्दमें डूब जाती है; परन्तु जिसके मनमें उत्कट उत्कण्ठा

जग रही है और जिनकी भक्तिलताका प्रेमफल पानेके लिये स्वयं प्रियतम ललचते-मचलते रहते हैं उनकी भक्तिबेलि दिन-दूनी रात-चौगुनी बढ़ती-बढ़ती अपने इष्टदेवके धाममें पहुँचकर प्राणप्रियतमके चरणकमलरूप कल्पवृक्षसे लिपटकर नित-नये रसमय मधुरफल प्रियतमको चखाती है, ऐसे फल जिनमें गुठली, छिलके या रेशे नाममात्र भी नहीं होते, केवल रस-ही-रस होता है।"

इस प्रकार बहुत देरतक भक्तजनोंका सत्सङ्ग होता रहा। यह मधुर समाज देखकर एक भक्तने कहा—'यह सत्सङ्ग देखकर मुझे तो भाई वसणराम, पारूशाह आदि चार दरवेशोंके सत्सङ्गका स्मरण हो रहा है जो रोहिड़ीकी ओर एक छोटी-सी पहाड़ीपर प्रतिदिन होता था। वे सब सन्त सन्ध्या समय परस्पर रोते हुए मिलकर सारी रात सत्सङ्ग करते थे और प्रातःकाल रोते हुए अलग-अलग हो जाते थे। आज भी वैसा ही यह चार दरवेशोंका मिलन हुआ है।"

श्रीभक्तकोकिलजी जिन सत्सङ्गी सेवकोंको कुटीपर छोड़कर सत्सङ्गके लिये गये थे उन लोगोंने इधर दूसरा ही खेल खेल डाला। वे भगवन्नामकी ध्वनिमें मग्न हो गये और जिसके हाथ जो कुछ लगा—थाली, लोटा, कमण्डलु, पीकदानी, वही उसको उठाकर जोर-जोरसे बजाकर नाम-सङ्कीर्तन करने लगे। बाहरके लोग भी आ गये। ऐसी तन्मयता हुई कि शरीरकी भी सुधि नहीं रही। जब श्रीस्वामीजी कुटिया पर लौटे, तब भी उनकी तन्मयता भङ्ग नहीं हुई थी। बहुत देर

बाद जब उन्हें पता चला कि श्रीस्वामीजी आ गये हैं, तब वे सेवाके लिये दौड़-धूप करने लगे। आसन तो बिछाया; परन्तु बहुत-सी वस्तुएँ कीर्तनके जोशमें टूट-फूट गयी थीं। सेवक सिर नीचा करके खड़े हो गये। श्रीस्वामीजीने आश्वासन देते हुए कहा—'डरो मत, भगवन्नामकीर्तनमें जो कुछ हुआ वह अच्छा है। बाहरी पदार्थ टूट जाय तो कोई परवाह नहीं, भजनका आनन्द बना रहे।'

श्रीस्वामीजीका यह क्षमाशील स्वभाव देखकर सत्सङ्गियोंको बड़ा आनन्द हुआ। वे प्रसन्न होकर आशीर्वाद देने लगे। सन्त भी यह दृश्य देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए।

गिदूबन्दरके महात्मा श्रीहरिदासरामजी ज्ञानकी पञ्चम भूमिकामें स्थित थे। बन्दरके काटनेसे उनकी बाँहमें जहरीला घाव हो गया था। डाक्टरने बाँह काटनेके समय क्लोरोफार्म सुँघानेको कहा, तब महात्माजीने मना कर दिया और ध्यान लगाकर बैठ गये। बाँह कटनेका उन्हें भान तक न हुआ। वे बड़े ही सरल और हँसमुख थे। श्रीभक्तकोकिलजी जब पहिली बार उनसे मिले तब वे बोले—'आपके हृदयसे नामकी झङ्कार आ रही है। आप तो नामके आनन्दमें मग्न जान पड़ते हैं। ब्रह्मानन्दरस-समुद्रमें डुबकी लगाकर देखो, जहाँ मनकी सब वृत्तियाँ लय हो जाती हैं। यही तो सच्चा रस है।'

श्रीभक्तकोकिलजीने कहा—'सत्य वचन! आप कृपा करके मुझे तो यही आशीर्वाद दीजिये कि नित्य-निरन्तर अपने प्यारे इष्टदेवके चरणारविन्दमें और नाममें अविचल अनुराग बढ़ता रहे।'

महात्माजीने कहा—'सगुण उपासक भी तो अन्तमें ब्रह्मानन्दमें ही स्थित होते हैं। उपासनाके बाद ज्ञान है। वेदने भी प्रभुके निराकाररूपका वर्णन किया है।'

श्रीभक्तकोकिलजीने कहा—'वेद तो हमारे प्यारे भगवान्के श्वाससे प्रकट हुए हैं। इससे तो ईश्वरके सगुण साकाररूपका ही प्रतिपादन होता है। जो वर्णन किया जायगा वह निर्गुण निराकारका कैसे होगा ? बिना नाम, जाति, गुण और क्रियाके वेद भी किसीका निरूपण नहीं कर सकते। वेद जो निराकार-निराकार कहते हैं, वह तो ईश्वरके एक गुण, व्यापकताका वर्णन है। वह व्यापकतारूप धर्म धर्मी ईश्वरके बिना कहाँ टिकेगा ? शक्तके बिना शक्ति कहाँ रहेगी ? ज्योतिका आधार तो कुछ-न-कुछ चाहिये। जैसे सूर्य और उसका प्रकाश है, वैसे ही श्रीरामचन्द्र ज्योतिष्मान् और ब्रह्म उनकी ज्योति है। वेद कहते हैं कि श्रीरामचन्द्र सच्चिदानन्दघन हैं। उनकी जो मण्डलके समीप गहरी प्रभा है, वह परमात्मा है ! योगी उसका ध्यान करते हैं। जो दूसरी पतली प्रभा है वह धूपके समान सब ओर फैली हुई है। आत्मज्ञानी संसाररूप जाड़ेके डरसे उसीका मजा लेते हैं। रसिकजन सदा भानुकुल-भानु परमाह्लादमूर्ति श्रीरामचन्द्रके पास पहुँच जाते हैं। योगी 'ॐ' ज्ञानी 'सोऽहं' और रसिकजन, रसनाकी वेदीपर सरस राम-नामकी ज्योति जगाते रहते हैं। जो ज्ञान अथवा मुक्तिकी प्राप्तिके लिये उपासना करते रहते हैं उनके लिये उपासना साधन और ज्ञान साध्य है; परन्तु जो अपने प्राणाराम, नयनाभिराम श्रीरामकी आराधना जगत्से

उपराम और निष्काम होकर करते हैं, अपने आराध्यदेवके अनन्य भक्तिभावमें आमूल-चूल मग्न रहकर प्रियतमकी सेवा और सुखके लाख-लाख अभिलाष लिये मस्त रहते हैं उनको भक्ति ही ज्ञानसे श्रेष्ठ है। रसिक सन्त कहते हैं कि सार असारको जानना ज्ञान है। असारको छोड़ना वैराग्य है। सारका हाथ लग जाना भक्ति है। वचन-रचनाचतुरचूडामणि लॉर्ड श्रीकृष्ण हाथमें घोड़ोंकी रास और चाबुक सम्हाले अपने सखा अर्जुनसे कहते हैं—'ब्रह्मभावकी प्राप्ति हो जानेपर मेरी भक्ति मिलती है।' श्रीशङ्कराचार्यकी भी वाणी है—'मुक्त पुरुष भी लीलासे शरीर स्वीकार करके भक्तिका स्वाद लेते हैं।'

श्रीभक्तकोकिलजीके मुखसे सगुण साकार भगवान् और उनकी भक्तिकी महिमा सुनकर महात्माजी बहुत ही आनन्दित हुए।

एक बार श्रीभक्तकोकिलजी करांचीकी यात्रा कर रहे थे। रेलगाड़ीके उसी डिब्बेमें एक सज्जन और बैठे थे जिनकी ओर श्रीभक्तकोकिलजीका ध्यान बार-बार खिंच जाता था और बात-चीत करनेकी उत्कण्ठा होती थी। श्रीस्वामीजीने एक सेवकसे पता लगवाया तो मालूम हुआ कि यह तो बङ्गालके बाबू नन्दलालसेन हैं। सद्गुरु श्रीअविनाशचन्द्रजीकी वाणीका स्मरण हो आया और इस आकस्मिक आत्मीयताके उदयसे हृदय गद्गद हुआ, ममता बह निकली। श्रीस्वामीजीने फल-फूल रख, प्रणाम कर, अपना परिचय दिया और अपने सद्गुरुके सम्बन्धमें बहुत बातचीत की।

कर्मयोगी बाबू नन्दलालसेनने श्रीस्वामीजीको अपने हृदयसे लगा लिया और श्रीअविनाशचन्द्रजीमहाराजकी कीर्ति-कल्लोलनिधिमें श्रीस्वामीजीको सराबोर कर दिया। उस समय श्रीस्वामीजीका हृदयकलानिधि पूर्ण रूपसे प्रफुल्लित हो उठा। वे इसी सुयश-झूलेमें झूलते हुए कराँची पहुँच गये।

महात्मा श्रीनन्दलालसेनजी ब्रह्मसमाजमन्दिरमें ठहरे। वे तत्कालीन ब्रह्मसमाजके नेता थे। दूसरे दिन श्रीस्वामीजी उनसे मिलनेके लिये ब्रह्मसमाजमन्दिरमें गये, बड़े प्रेम और शिष्टाचारसे मिले। उनके कमरेमें श्रीलक्ष्मीनारायण और श्रीयुगलसरकारके स्वरूपोंको देखकर श्रीस्वामीजीने कहा—'ब्रह्मसमाजी तो मूर्तिपूजा नहीं मानते।' इस पर सेनसाहबने उत्तर दिया—'वैसा मत तो संकीर्ण विचारवालोंका है। वे लोग ईश्वरके परिपूर्णत्वको नहीं पहिचानते। हमें तो इन चित्रपटोंमें उसी दिव्य आनन्दकी अनुभूति होती है।'

श्रीस्वामीजी यह बात सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और बोले—'आप सचाईको पूर्ण रूपसे पहिचानते हैं। ब्रह्मसमाजी प्रेमको ही ईश्वर मानते हैं। उनकी यह बात सच्ची है। परन्तु यह प्रेमगङ्गाकी अमृतमयी धारा किसी श्यामामृतसिन्धुसे मिलनेकेलिये है। प्रेमी और प्रियतमके लाड़लड़ानेमें ही प्रेमकी महिमा है।' कर्मयोगीजीने कोई प्रेमपूर्ण पद सुनानेको कहा। श्रीस्वामीजीने यह पद गाकर सुनाया—

लाल तेरे चरनारविन्द मन भावन।
कहा भयो जो सरीर भयो छिन-भिन्न प्रेमजाय तो डरपै तेरौ जन।

सुख-संपति माया, सिगरौ धन, इनमें लम्पट न होय तेरौ जन।
प्रेमकी जेवरीमें बाँध्यो जनार्दन, कह रविदास अब छूटिवो कवन गुन॥

कर्मयोगी बाबू नन्दलालसेनको बहुत आनन्द आया। श्रीभक्तकोकिलजीने अपने सद्गुरुदेवको पत्र लिखनेके लिये उनसे पता जाननेकी इच्छा प्रकटकी। श्रीसेनसाहबने कहा—'मैं ही दो-तीन दिनमें वहाँ जानेवाला हूँ, लेता जाऊँगा।' श्रीस्वामीजीने अनुरागमें भरकर श्रीसन्तसद्गुरुदेवकेलिये संस्कृतभाषामें सुयशभरी विनयपत्रिका लिखी। थोड़े दिनों बाद श्रीसद्गुरुदेवने एक अपनी रचित पुस्तक भेजी जो श्रीयुगलके चरित्रसे परिपूर्ण थी। उसमें श्रीस्वामिनी जनककिशोरीजूके दिव्य एवं अद्भुत गुणोंका वर्णन था। उसे प्राप्त कर श्रीस्वामीजी सद्गुरुदेवकी अत्यन्त कृपा मानकर बहुत हर्षित हुए।

एकबार श्रीमीरपुरमें श्रीभक्तकोकिलजीके प्रेमसे थलेके महन्त श्रीकुन्दनदासजी, श्रीटहल्यारामजी, माझांदके महन्त बाबा देवीदासजी, हैदराबादके बाबा क्षमादासजी आये। सन्तोंके स्वागतमें सारा गाँव सजाया गया। जहाँ-तहाँ पीनेके लिये शर्बतके प्याऊ बैठाये गये। घर-घरमें स्त्री-पुरुष नाच-नाचकर मङ्गलगान करने लगे। आस-पासके गाँवोंसे बड़ी भीड़ जुड़ आयी। एक मेला-सा ही लग गया। श्रीभक्तकोकिलजी बचपनसे ही सन्तोंके प्रति अतिशय श्रद्धा प्रीति रखते थे। आज तो उनके हर्ष-उल्लासका कोई पारावार ही न रहा। उन्होंने लोगोंको आज्ञा दी—'सन्तोंकी सेवा करनेमें

किसी प्रकारकी कोर-कसर नहीं करना। तुम लोगोंके पास जो कुछ कला-कौशल, गुण, तन-मन-धन, सर्वस्व है वह सब सन्तोंकी सेवामें लगानेका अवसर आ गया है। सब लोग मान-मर्यादा छोड़कर सन्तोंको प्रसन्न करो। सन्तोंके मुखपर प्रसादकी एक रेखा खिंच जाय, यह जीवोंके लिये असीम सौभाग्यकी बात है।'

यह आश्चर्य देखा गया कि अपने हजारों सेवकोंके स्वामी, प्राणधन, हृदयसर्वस्व कोकिलसाईं अपनी ओर बिलकुल न देखकर सन्तोंकी सेवामें तन्मय रहते। वे स्वयं ही अपने हाथों परोनकर सन्तोंको खिलाते; पत्तल उठाते, सारे काम अपने ही हाथों करते। सभी आनेवाले भोजन करते; खुला भण्डारा था। सन्तोंके शुभागमनकी खुशीमें श्रीस्वामीजी सब कुछ लुटा रहे थे। महात्मालोग श्रीस्वामीजीका दिव्य प्रेम और मीरपुरवासियोंकी गम्भीर श्रद्धा देखकर बहुत ही आश्चर्यचकित हुए और श्रीस्वामीजीके स्वभावकी सराहना करके आशीर्वाद देने लगे।

जब सत्सङ्ग होता, हजारों नर-नारी जिनमें मुसलमान भी होते बड़ी एकाग्रता और शान्तिसे चन्द्र-चकोरकी भाँति कथा-प्रवचन श्रवण करते।

त्रिपाद्विभूति

एक दिन सब सन्त परस्पर मिलकर आपसमें बातचीत कर रहे थे। बाबा देवीदासजीने कहा—'मैंने ऐसा सुना है कि शरीररूपी रथपर बैठकर जीव दिव्यधाममें जाता है, सो यह शरीर रथ कैसे है?'

श्रीभक्तकोकिलजीनेकहा—'यह बाह्य शरीर रथ नहीं है। भक्तोंका भावमय विग्रह ही रथ है। इसमें शुद्ध सात्त्विक मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार चार पहिये हैं। नामस्मरण, रूप-ध्यान, लीला-चिन्तन और धाममें आसक्ति—ये चार घोड़े हैं। श्रुति-शब्दकी रस्सियाँ हैं। सन्त-सद्गुरुका वचन चाबुक है। उत्साहकी ध्वजापताका है। रसकाकलश है। सत्सङ्ग सारथि है। शील, सन्तोष, दया, करुणा, योग, वैराग्य. ज्ञान, विज्ञान आदि इस रथके विभिन्न आभूषण हैं। ऐसे रथपर चढ़कर भक्तिकी नवधा भूमिपर चलते हुए प्रेमा और पराकी मञ्जिलपर पहुँच जाता है। श्रीगुरुपरमेश्वरकी कृपासे भक्ति-नगर,परमधाम साकेत की प्राप्ति होती है। वही प्रभुकी त्रिपाद्-विभूति है।'

महात्मा श्रीकुन्दनदासजीने पूछा–'वह त्रिपाद्-विभूति क्या है और भक्तोंको उससे क्या मिलता है?'

श्रीभक्तकोकिलजीने कहा—'भगवान्‌की तीन विभूतियाँ हैं—सन्धिनी, सन्दीपिनी और आह्लादिनी। इनमें सन्धिनी शरणागत भक्तको श्रीराम-पदाम्बुजमें सन्धान करती हैं अर्थात् जोड़ती हैं,मिलाती हैं। सन्दीपिनी विभूति भक्त और भगवान् के बीचका आवरण हटाकर नीलोज्ज्वलमणि श्रीजनकनन्दिनी एवं श्रीरामचन्द्रजीके झकाझक, चम-चम चमकते हुए झिल-मिल प्रकाशको प्रकट करती हैं और उनकी जगमगाती ज्योतिसे भक्तके हृदय सिंहासनको सन्दीप्त करती हैं।

आह्लादिनी विभूति वह है जो क्षण-क्षण युगलसरकार की सेवामें संलग्न रहकर परमाह्लादिनी शक्ति श्रीजनकनन्दिनी

एवं परमाह्लादमय श्रीरामचन्द्रजीको रिझाती रहती हैं। कोटि-कोटि चन्द्र, सूर्यके समान मधुर प्रकाशसे भरपूर सुख-समाज देखकर भक्त जनोंको अत्यन्त आह्लाद होता है।'

भगवान्की त्रिपाद्-विभूतिरूप धाम इस एकपादरूप संसारसे जिसमें असंख्य कोटि ब्रह्माण्ड हैं, बहुत दूर है। उसका वर्णन अनुभवी महात्माओंने इस प्रकार किया है। यह सप्तद्वीपवती पृथ्वी निन्नानवे करोड़ योजनमें है। इससे एक करोड़ योजन ऊपर महर्लोक है। वहाँ पृथ्वीसे सौगुना अधिक सुख है। जिन महात्माओंके हृदयमें और धनवानोंमें मोह रहता है वे अपने परिवारोंके साथ उत्तम सुखमें रहते हैं। वहां भी किसीका सुख मध्यम कोटिका होता है। इससे दो कोटि योजन कर्मलोक है। वहाँ गृहस्थमें रहकर सत्कर्ममें स्थित पुण्यात्मा स्त्री-पुरुष जाते हैं। उससे चार कोटि योजन ऊपर जनलोक है। वहाँ सच्ची प्रीति निभानेवाले मनुष्य जाते हैं। उससे छः करोड़ योजन ऊपर पितृलोक है। उससे आठ करोड़ योजन ऊपर गन्धर्वलोक है। वहाँ निर्लोभ, निष्काम और हरिगुण-गान करनेवाले मधुर रागोंसे भरे उस प्रदेशमें राग-रागनियोंकी तानपर आराम करते हैं। उससे दश करोड़ योजन ऊपर देवलोक है। अयोनिज देवोंका निवास स्थान वहाँ है। उससे पचीस हजार योजन ऊपर स्वर्गलोक है। उससे पचीस हजार ऊपर वृहस्पतिलोक है। उससे चालीस हजार योजन ऊपर तपोलोक है। उससे पचास करोड़ योजन ऊपर सत्यलोक है। इसे ब्रह्मलोक भी कहते हैं। उसके ऊपर

कुमारलोक, फिर बत्तीस करोड़ योजन ऊपर उमालोक है। वहाँ शङ्कर पुरुष हैं और सब स्त्री। उससे बत्तीस करोड़ योजन ऊपर महाशम्भुलोक है। उससे दूर पाँच सौ करोड़ योजन चौड़ी विरजा नदी है। विरजानदीके इस पार एक पाद संसार है और उसपार महावैकुण्ठलोक है। वहाँ महालक्ष्मी और महाविष्णु विराजमान हैं। वहीं अपनी सब शक्तियों सहित चतुर्व्यूह रहते हैं और असंख्यकोटि ब्रह्माण्डोंकी चावियोंके गुच्छे अपने हाथमें रखते हैं। साकेत और गोलोककी ईश्वरताका खजाना यही है। यहां सत्सङ्गके प्यासे हरिगुणगान करनेवाले वैष्णव रहते हैं।

इससे पचास करोड़ योजन ऊपर साकेतधाम है। उसके चारों ओर बड़े-बड़े चार धाम और हैं। उत्तरकी ओर श्रीरामनारायण अवतारीका लोक है, पूर्वओर श्रीजनकपुर, दक्षिण ओर चित्रकूट और पश्चिम ओर श्रीगोलोक है।'

श्रीटहल्यारामजीने प्रश्न किया—'श्रीस्वामीजी ! श्रीयुगलसरकार साकेत लोकमें किस वैभवसे भक्तोंके साथ विराजमान रहते हैं, कृपा करके विस्तारपूर्वक कह सुनाइये !'

श्रीस्वामीजीने कहा—'साकेतधामका विस्तार बहुत बड़ा है। बिना धुएँकी अग्निके समान ॐकारके मध्यमें दीपककी लौके समान लाल-लाल रेफ प्रकाशमान है। उसके बीचमें कोटि चन्द्रमाके समान चमकते हुए शीतल मण्डपमें जिसके चारों ओर बड़े-बड़े चौक और परकोटे हैं, महारासस्थली है। वह मण्डप शुभ्र पारिजात-वृक्षके नीचे है। वह वृक्ष

भक्तवाञ्छित नाम-रूप-स्नेह-दाता कोटि सूर्यचन्द्रके समान शीतल फूलोंसे भरपूर जगमगाता है। उसपर अनन्तकोटि भक्त रङ्ग-विरङ्गे पक्षियोंके रूपमें मधुर-मधुर कलरव करके श्रीयुगलचन्द्रको रिझाते हैं। उस मण्डपमें मणिखचित स्वर्ण सिंहासन है। उसका विस्तार पाँच कोसमें है। उसके ऊपर पद्मसुगन्धसे युक्त रक्तकमलाकार छत्र है। उसकी सुगन्ध कोटि योजनोंमें फैलती रहती है। अलवेली सहेलियाँ चँवर लिये खड़ी रहती हैं। सिंहासनसे मधुर-मधुर रागोंके आलाप गुञ्जार करते रहते हैं।

आस-पास खिले हुए फूलोंकी वेदिकाओंपर उर्वशी पौलोमी, मेनका आदिको लज्जित करनेवाली परम सुन्दरी सहचरियाँ भोजन-पान आदिका थाल सजा–सवाँरकर हाथमें लिये मधुर-मधुर तान अलापती रहती हैं।

सिंहासनके मध्यमें सौगन्धिक, सुकोमल विशाल पीले कमलकी कर्णिकापर माधुर्यलीलाका रसास्वादन करते हुए अभयदानी श्रीजानकीरामचन्द्र विराजमान हैं। अत्यन्त मधुर एवं ठण्डे प्रकाशकी चाँदनी छिटक रही है। इस सलोने तेजमें मधुर मुस्कराहटकी छटा अलग ही छा रही है। युगलके सिरपर मुकुट है। मुकुटमें जटित अमूल्य रत्नमणि, मोतियोंका रङ्ग-विरङ्गा प्रकाश अपना अलग ही ज्योतिर्मण्डल बना रहा है। काले-काले घुँघराले महीन और चिकने केश-पाश कपोलोंपर लटककर भक्तजनोंके नेत्र और मनको नाग-पाशमें बाँध रहे हैं, उन्नत और विस्तृत ललाटपर केशरकी

और, रोलीकी विन्दी ऐसी जान पड़ती है मानों चन्द्रमण्डल पर मङ्गल और वृहस्पति दोनोंका योग हो गया हो। अनुग्रहकी वर्षा करती हुई भौंहें, प्रेमामृत विखराते हुए रतनारे, ललित लोचन, नीलमके दर्पणके समान सुस्निग्ध, स्वच्छ कपोल जिनमें मकराकृत कुण्डलके प्रतिविम्ब पड़ रहे हैं और अनुरागकी लाली उभर रही है, इतने सुन्दर हैं कि मधुरमूर्ति श्रीप्रियाजीके नेत्रशिशु उसीपर खेलते रहते हैं। शुककी चोंचके समान नासिका, पके हुए विम्बाफलके समान अधर जिनके दर्शनमात्रसे ब्रह्मबुद्धिका नाश और लोभका जन्म होता है जो दाँतरूपी द्विजोंको पर्देमें रखते हैं, जिससे रुष्ट होकर ये द्विज भी रसानुभवरूपिणी रसनाको अपनी कैदमें रखते हैं, उन अधरोंको देख-देखकर और उनपर अपना एकछत्र अधिकार समझकर श्रीप्रियाजी मन्द-मन्द मुस्कराती रहती हैं और उनकी मुस्कराहट देखकर ये अधर और भी लाल-लाल होकर अपनी रक्त-रश्मियाँ फैलाते हैं। अनारदानेके समान सुन्दर सुडौल दन्तपंक्तिपर रीझकर नासिकाके वदले मानो तोता ही ललचता हुआ ठिठक रहा है। कपोलोंके श्यामल, अधरोंके लाल और दाँतोंके श्वेत प्रकाश मिलकर मानो एक दिव्य चिन्मय त्रिवेणीकी सृष्टि कर रहे हैं। श्रीकौशल्या मैयाके लाड़भरे संस्पर्शकी गम्भीर स्मृति लिये चिवुक मुखके सम्पूर्ण सौन्दर्यकी चारुता का श्रेय अपने ऊपर ही आरोपित कर रहा है। कम्बुकण्ठ, हृष्ट-पुष्ट कन्धे, शुण्डादण्डके समान विशाल भुजदण्ड, लाल-लाल हथेलियाँ, बड़ी-बड़ी और निश्छिद्र अँगुलियाँ उभरे और लाल-लाल नख, वायाँ कर-

कमल श्रीप्रियाजीके कन्धेपर, दाहिने करकमलमें लीलाकमल, ऊँचा और चौड़ा वक्षःस्थल, गम्भीर नाभि, त्रिवलीवलित उदर, कण्ठमें कौस्तुभमणि, वक्षःस्थलपर नीलमके समान स्तनोंका स्पर्श करती हुई मुक्तामाला। वक्षःस्थलपर बायीं ओर श्रीवत्सकी स्वर्णिम भौंरी और दाहिनी ओर महर्षि भृगुके चरणचिह्न, कन्धेपर पीताम्बर, श्रीजनकनन्दिनीको लाल-साड़ीका स्पर्श करके एक द्वितीय युगलसुखकी सृष्टि कर रहे हैं। आजानुलम्बिनी वैजयन्ती माला भक्तोंके पँचरंग भाव-पुष्पोंकी बनी, कभी न कुम्हलाने वाली, बीच-बीचमें हिल-हिल कर श्रीप्रियाजीसे प्रार्थना करती है—'देवि, मुझे ईर्ष्याकी दृष्टिसे मत देखो। मैं जैसे इनके वक्षःस्थलकी शोभा हूँ, वैसे ही आपके वक्षःस्थलकी भी।' सिंहकी कटिके समान कटि है। पीताम्बर धारण करनेके कारण कटिसे लेकर गुल्फतकके भाग ढँके हुए हैं। झीने पीताम्बरसे मरकतमणिके समान महीन-महीन सौन्दर्यकी रश्मियाँ बाहरको उझली-सी पड़ती हैं। ऊँची एड़ी, स्निग्ध और सुडौल पञ्जे, यव, कमल, अंकुश आदि चिह्नोंसे चिह्नित लाल-लाल तलवे जिनमें जावकका पता ही नहीं चलता, उभरे और लाल-लाल नख जिनकी रश्मियोंसे भक्तोंके हृदयका अन्धकार दूर भाग जाता है, दासियोंके नेत्रोंको बार-बार अपनी ओर खींचते रहते हैं। भगवान्‌के श्रेष्ठ भक्त ही शृङ्गारके समय बाजूबन्द, अँगूठी काञ्ची, कङ्कण, नूपुर आदिके रूपमें समय-समयपर भगवान्‌के अङ्गका स्पर्शसुख लेने लगते हैं। कभी धनुषबाण बन जाते हैं, कभी पार्षद होकर सेवा करते हैं। वह भगवान्‌की इच्छा, भक्तोंकी इच्छाका बना हुआ दिव्य चिन्मय लोक है। वहाँ

उनके सङ्कल्प ही मूर्तिमान् होकर अप्राकृत लीला करते रहते हैं। वहाँ एक ही समयमें सारे समय, एक ही स्थानमें सारे स्थान, एक ही वस्तुमें सारी वस्तुएँ रहती हैं। वहाँ संसारका कोई भी नियम लागू नहीं होता है। न जन्म, न मृत्यु; न जवानी, न बुढ़ापा; न सूर्य, न चन्द्रमा; न स्त्री, न पुरुष; न सृष्टि, न प्रलय; न काम-क्रोध आदि विकार; न शोक, न मोह; न बन्धन, न मुक्ति; न भ्रम, न विरह; न मान—वहाँ सब कुछ भगवान् हैं। सब भगवन्मय है। सब उनका संकल्प है। सब उनकी लीला है। वहाँ अज्ञान न होनेसे ज्ञान भी नहीं है। राग न होने से वैराग्य भी नहीं है। संयम न होनेसे निर्णय भी नहीं है। वहाँ प्रेम है, सेवा है, विलास है। युगलसरकारके परस्पर हास-विलास बोलन-चलन, चितवन, खेलन, मुस्कान की माधुरी कण-कणसे बरस रही है। यही त्रिपाद्विभूति है, यही साकेत धाम है।'

इस प्रकार मोरपुरमें पन्द्रह दिन तक सत्सङ्गका रंग जमा रहा। कभी कोई सन्त, कभी कोई सन्त भगवद्रहस्य और भक्तिभावका निरूपण करते। बीच-बीचमें प्रश्नोत्तर भी होते और एक दूसरे की बातका समर्थन करनेके लिये महापुरुषोंकी वाणियोंका उद्धरण भी दिया जाता। पन्द्रह दिनके बाद सब सन्त अपने-अपने स्थानके लिये रवाना हुए। श्रीस्वामीजीने सबका यथायोग्य सत्कार-भेंट-पूजा की।

श्रीमोरपुरमें समय-समयपर सन्त पधारते ही रहते थे। आज मारवाड़ियोंके गुरु, तो कल मुसलमानोंके पीर; संन्यासी, उदासी, वैष्णव, वैरागी सभी सम्प्रदायके सन्त पधारते। खूब धूमधामसे सत्सङ्ग होता। श्रीस्वामीजी सबका यथोचित सत्कार करते थे।

श्रीअवधकी यात्रा

भगवान् श्रीरामचन्द्रकी राजधानी श्रीअयोध्या अनुपम नगरी है। यह भूमण्डलका साकेत है। इस नगरीसे भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका अखण्ड सम्बन्ध है। इस नगरीके ही एक महलमें उन अजन्माका जन्म हुआ। यहींकी धूलिमें वे खेले सरयूमें स्नान किया, पावन पुलिनपर सखाओंके साथ हास-विलास किये, लता और वृक्षोंके नीचे विश्राम किया, चाँदनीमें जलविहार किया, धूपमें छायाका सेवन किया, पशु-पक्षियोंसे प्यार किया। इस नगरीके ही आकाशके नीचे चारो भैया वायुसेवनकेलिये टहलते थे। धनुषका अभ्यास करते थे। मां-बापके लाड़-प्यार, पुरवासियोंके दुलारसे यहीं गद्गद हुए। बाल्य, किशोर और यौवनके अनेकों खेल यहीं खेले। दस हजार वर्षोंसे भी अधिक इसी अयोध्याके एकछत्र सम्राट रहे। सप्तद्वीपवती पृथ्वीका शासन श्रीअयोध्या ही करती थी। श्रीअयोध्या अप्राकृत है, चिन्मय है, भगवान्का नित्य धाम है। आज भी वही है।

श्रीभक्तकोकिलजी जब जब अयोध्या आये, उन्हें यही जान पड़ता था, यह वही श्रीअवधधाम है। वहाँ वही लाला है। वही परिजन, वही पुरजन है। यह कोई दूसरी अयोध्या है, बदल गयी, या अब यहाँके निवासी नहीं हैं— श्रीस्वामीजीके मनमें ऐसा भाव आता ही नहीं था। परन्तु श्रीअयोध्यामें आते ही, बल्कि देखते ही उनका भाव बदल

जाता था और वे व्याकुल हो उठते थे। उनके हृदयपर श्रीस्वामिनीजीके द्वितीय वनवासकी ऐसी गहरी चोट लगी थी कि श्रीअयोध्याके दर्शनमात्रसे वह घाव हरा हो जाता और ऐसा भाव उभर आता था कि इसी अयोध्याकी प्रजाने श्रीस्वामिनीको अपवाद लगाया जिसके कारण उन्हें वन-वासका कठिन दुःख भोगना पड़ा। कभी कभी तो भावावेशमें व्याकुल होकर कह उठते—

'स्वामिनी जनकनन्दिनीजी सदा प्राणोंसे प्यारी है।
उसी जननी हमारीकी अयोध्या शत्रु भारी है।'

श्रीभक्तकोकिलजी भक्तोंके आग्रहसे ही श्रीअयोध्यामें जाते थे और वहाँ बड़े संकोचसे रहते थे। वे सोचते थे कि रविकुलतिलक श्रीरामचन्द्रजूमहाराज बड़े ही निरंकुश राज-राजेश्वर हैं। उनके तेज-प्रतापसे त्रिभुवन भयभीत रहकर मर्यादामें चल रहा है। कहीं उनकी राजधानीमें कोई भूल न हो जाय। वे समुद्रके समान गम्भीर हैं—रत्नाकर भी, मकराकर भी, पता नहीं इनके हृदयसे कब क्या निकले! श्रीस्वामीजीका स्वभाव था—गरीबोंको रोज कुछ-न-कुछ बाँटना; परन्तु श्रीअवधमें इस वितरणमें भी उन्हें हिचकिचा-हट होती थी। उनके मनमें यह भाव आता कि दानीशिरो-मणिके राज्यमें उनके दिये हुए दानसे सब भरपूर हैं। कहीं प्रजाजन यह न सोचें कि यह अपना बड़प्पन दिखाता है। श्रीअयोध्यामें उनका व्यवहार बहुत ही संकोचपूर्ण होता था। जब वे श्रीकनकभवनमें दर्शन करने जाते तब उन्हें ऐसा जान

पड़ता जैसे महाराज श्रीरामचन्द्रके पास श्रीजनकनन्दिनीकी स्वर्णप्रतिमा विराजमान है। यह सोचकर दुःखी हृदयसे एक कोनेमें बैठ जाते। उनके हृदयपर श्रीश्रीजूके पुनर्वनवासकी छाप इतनी गहरी पड़ गयी थी कि वह किसी तरह भी नहीं मिटती थी। वे बार-बार कराह उठते—'आह! इस अयोध्यामें क्या है, जब मेरी क्षमामूर्ति स्नेहमयी परमपावन श्रीस्वामिनीजी नहीं हैं?

एक दिन श्रीभक्तकोकिलजी श्रीरामलीलाका दर्शन करने गये। श्रीअयोध्यासे जनकपुरमें बरात आयी। पिताजीको प्रणाम कर चुकनेपर श्रीरामचन्द्रसे मिलनेकेलिये अवधवासी सखा आगे बढ़े। बस श्रीस्वामीजी वहाँसे चलनेकेलिये उद्यत हो गये। सेवकोंने सम्पूर्ण लीला देखनेकी विनय की। श्रीभक्तकोकिलजीने भावमग्न होकर कहा कि इन कपटी सखाओंका यह बाहरी प्यार मुझे अच्छा नहीं लगता। ये युगलसरकारके गहरे अनुरागको न सहनेवाले ऊपरसे मधुरभाषी हैं। बस, श्रीस्वामीजी वहाँसे चले आये।

श्रीअयोध्यामें श्रीस्वामीजी अनेक महात्माओंसे मिले। श्रीजानकीघाटके पण्डित श्रीरामवल्लभाशरणजी महाराज श्रीभक्तकोकिलजीका बहुत ही आदर करते थे। श्रीस्वामीजीके अत्यन्त नम्र शील स्वभावको देखकर बहुत ही आह्लादित होते। एक बार भक्तकोकिलजीने उनसे पूछा—

"भइ रघुपति पद प्रीति प्रतीती। दारुन असम्भावना बीती॥"

इस चौपाईमें दारुण असम्भावनाका क्या भाव है?

उन्होंने कहा—'श्रीरामचन्द्रको विष्णुभगवान् समझना यह असम्भावना है और उनको मनुष्य समझना यह दारुण असम्भावना है।' ज्ञान और भक्तिरसकी चर्चा चलनेपर श्रीपण्डितजीने कहा—'ज्ञानी उस चींटीकी तरह हैं जो मिश्री के साथ रगड़कर मिश्रीसे मिल गयी हैं। उसका अपना कोई वाह्य अस्तित्व नहीं रहा और भक्त उस मिश्रीके पहाड़पर घूमता, स्वाद लेता और प्रभुकी आराधनामें सावधान रहता है।'

श्रीलक्ष्मणकिलाके महात्मा श्रीरामदेवशरणजी द्वारा स्वामिनी श्रीजनकनन्दिनीजीकी नाममहिमाका प्रसङ्ग चला। उन्होंने कहा—'श्रीरामचन्द्रसे भी अधिक श्रीकिशोरीजीके नामकी महिमा है। एकबार सरदीके दिनोंमें कोई मनुष्य सरयूमें स्नान कर रहा था। ठण्डके कारण सी-सी करके वेचारेके प्राणपखेरू उड़ गये। कृपामूर्ति श्रीस्वामिनीजीने अपनी सहचरियोंसे कहा कि यह तो मेरा नाम ले रहा है। इसको मेरे धाममें ले आओ। ऐसा कृपालु स्वभाव हमारी श्रीस्वामिनीजीका है।' श्रीभक्तकोकिलजी इसी प्रकार और महात्माओंसे भी जाकर सत्सङ्ग करते थे।

एक दिन श्रीस्वामीजीको वहाँ ऐसे दो सुनहले पक्षियोंके दर्शन हुए जो स्पष्टरूपसे 'श्रीसीयाराम' 'सीयाराम' बोलते थे। श्रीस्वामीजीके प्रेमपूर्ण आवाहनसे वे समीप आकर मधुर-मधुर नामोच्चारण करने लगे। लक्ष्मणकिलेके मन्दिरमें एक बोलती मैना थी। वह श्रीयुगलनाम जपती थीं।

जन्मोत्सवके दिनोंमें वह श्रीस्वामीजीसे 'वधाई है' 'वधाई है' ऐसा कहती थी। जन्मोत्सव होनेके वाद श्रीस्वामीजीने कहा–'वधाई है'। वह बोली—'बधाई हो गयी महाराज।' श्रीस्वामीजी प्रसन्न होकर सेवकोंसे बोले—'यही तो धामकी महिमा है। यहाँ मनुष्य तो मनुष्य, पशु-पक्षी भी प्रभुका नाम जपते हैं। देखो प्रभुकी लीला! प्रत्यक्ष दिखा रहे हैं कि मेरे धाममें सब भक्त रहते हैं।'

श्रीभक्तकोकिलजी सेवकोंके बहुत आग्रह करनेपर चार छः दिनोंके विचारसे ही श्रीअवधकी यात्रा करते थे; परन्तु वहाँ जानेपर कोई-न-कोई ऐसा कारण बन जाता था कि जिससे महीने-दो-महीने रहना पड़े। भक्तलोग यह सोचते कि श्रीस्वामिनीजीके चरणकमलोंके प्रेमी होनेके कारण श्रीअवध-सरकार राघवेन्द्र इन्हें जबरदस्ती रोक लेते हैं।

श्रीस्वामीजी कभी-कभी किसी भक्तकी पीठपर चढ़कर विनोद करते थे। एकबार किसी सेवकने पूछा—'स्वामीजी, कहाँ जा रहे हैं?' वे बोले—'श्रीबरसाने।'

एक दिन श्रीभक्तकोकिलजी कनकभवनके एक कोनेमें बैठे हुए थे। पुजारीने अपने आप ही लाकर प्रसादकी माला पहिना दी। श्रीभक्तकोकिलजीने कहा–'चलो भाई, अब यहाँसे जानेकी आज्ञा मिल गयी और उसी समय वहाँसे रवाना हो गये। दूसरे दिन मिलनेकेलिये बहुत-से लोग आनेवाले थे। इस बातकी कोई परवाह न की।

———

पुनः वृजयात्रा

व्रजभूमि भक्तिकी भूमि है। श्रीवरसाना, नन्दगाँव, गोवर्धन आदि भावके पर्वत हैं। इन पर अखिलरसामृतमूर्ति श्रीयुगलसरकार क्रीडा करते हैं। इन्हींमें शृङ्गार, सख्य और वात्सल्य रसोंका प्रकाश होता है। वरसाना श्रीराधारानीकी राजधानी है और श्रीवृन्दावन क्रीडा उपवन। वह महल है, यह निकुञ्ज। वरसानेका मूलरूप वरसानु अथवा वृषभानु पर्वत है। श्रीप्रियाजीके मनमें नन्दगाँवकी ओर उचककर देखनेका जो भाव है, वही मानो वरसानेकी ऊँचाई है। नन्दगाँवके सम्बन्धमें भी यही बात है। युगलसरकार अपने-अपने महलसे ही नीलाम्बर और पीताम्बरका झण्डा दिखाते और कभी प्रेमसरोवर, कभी संकेतवट और कभी द्वैमिल-वनमें मिलनेके लिये अभिसार करते। यहाँका एक-एक वृक्ष, लता, कुञ्ज, पाँतिके पाँति कदम्ब, श्यामतमाल, लता-निकुञ्ज, पशु-पक्षी, घास-पात, तृण, धूलि-कण, सभी रससे सरावोर हैं। रस बरसाते हैं। सभी वरसने हैं, वरसाने हैं।

श्रीभक्तकोकिलजी श्रीअवधसे श्रीवरसाने आये। वर-सानेकी परम उदार प्रेमदात्री देवीका आकर्षण उनको खींचता ही रहता था। व्रजकी सीमामें प्रवेश करते ही सवारी छोड़कर व्रजभूमिकी वन्दनाकी, फल-फूलकी भेंट रखी। यह कोई नयी बात न थी। स्वामीजी बोले—'श्रीअ-योध्या ऐश्वर्यभूमि है, व्रज माधुर्यभूमि। वहाँ धर्म है, मर्यादा है। यहाँ रस है, राग है। वहाँ यश है, मान-मर्यादा है; प्रभुता

है, नामका कोलाहल है। यहाँ तो बदनामी है, मानका निवारण है। कोई नियम नहीं है। वन-वन घूमते हैं। गायें चराते हैं। कर नहीं लेते, चोरी ही करते हैं। यहाँ प्रेमका मौन है। बरसानेके सरस दर्शनसे श्रीभक्तकोकिलजीकी रग-रग अनुरागकी भाँग पीकर उछलने लगी। आनन्दके बादल घने होकर बरसने लगे। व्रजकी वृन्दावली उन्हें बहुत प्यारी लगती। सारा-का-सारा दिन जङ्गलोंमें ही मङ्गल मनाते। नहरमें ही नहाते। सत्सङ्ग कथा, नाम-कीर्तन आदिके रूपमें प्रभु-गुणगान करते। रात-दिनका पता न चलता।

एक दिन श्रीस्वामीजी एक सेवकके साथ विचरण करते हुए दूर वनमें चले गये। ध्यानमग्न होनेके कारण सन्ध्याका पता न चला। रात अँधेरी थी। रास्ता बदल गया। अब किधर जायँ ? एक मोर आकर सामने खड़ा हो गया। श्रीस्वामीजीने सेवकसे कहा—'यह मोरमुकुटधारी, मयूरलास्यविहारी, साँवरे सलोने व्रजराजकुमार ही हैं। आओ, इनके पीछे-पीछे चलें।' मोरजी महाराज निवासस्थानपर पहुँचाकर अन्तर्धान हो गये।

बरसानेमें ही एक दिन रात्रिके समय श्रीभक्तकोकिलजी अष्टसखियोंके मन्दिरमें शयन कर रहे थे। गरमीके दिन थे, इसलिये दो भक्त पंखा झल रहे थे। निस्तब्ध निशीथमें उन्होंने देखा कि दिव्य रासमण्डल प्रकट हो गया है। प्रत्येक गोपीके साथ एक-एक श्यामसुन्दर हाव-भाव, विलासपूर्ण रासनृत्य कर रहे हैं। यह अप्राकृत आनन्द देखकर दोनों सेवक मुग्ध

हो गये। थोड़ीदेर बाद एक बच्चा रोने लगा। श्रीस्वामीजीकी नींद न खुल जाय—इस डरसे उसकी मां बच्चेको लेकर रास-मण्डलके बीचसे निकल गयी। बस, रासमण्डल छिप गया। एक गोपीने भयङ्कररूप धारण करके भक्तोंको डराया। उनके डरनेकी आवाज सुनकर सब जग पड़े और रोने लगे। श्रीस्वामीजी उठे और सब बातें पूछीं। श्रीस्वामीजीने कहा—'रासमें विघ्न डालनेसे रक्षामें नियुक्त सखीने ऐसा किया है। व्रजमें सदा ऐसी रासलीला होती है। भगवत्कृपासे किसी भाग्यवान्को यह दर्शन प्राप्त होता है।'

एक दिन श्रीस्वामीजी बरसानेके आसपासके वनमें घूम रहे थे। उन्होंने देखा कि युगलसरकारके नन्हें-नन्हें सुन्दर-सुन्दर दिव्य रेखाओंसे अङ्कित चरणचिह्न हैं। श्रीस्वामीजीने और भक्तोंको बुलाकर दर्शन कराया। बहुत दूर तक एक दूसरेसे मिले हुए चले गये थे। श्रीस्वामीजीने कहा—'युगल-सरकारने रातभर यहाँ दिव्य क्रीडा की है। अन्तर्दृष्टिसे देखने पर ये सूर्यके समान चमकते हुए नजर आते हैं।' उस समय कुछ भक्त घरपर थे। श्रीस्वामीजीने एक स्थानपर युगल-सरकारके चरण-चिह्नको टोकरीसे ढँक दिया और उन्हें घरसे बुलवाया; परन्तु जब वे आये तब उन्हें कुछ नहीं दिखा।

श्रीमत्कृष्णकोकिलजीको नन्दगाँवके भोले-भाले व्रजवासी बहुत प्यारे लगे। एक दिन उन्होंने किसी व्रजवासीसे पूछा—'तुम लोग अपनी दूध, दही, माखन आदि वस्तुएँ ढँककर क्यों नहीं रखते?' उन्होंने कहा—'हमारी हरएक वस्तु लाला

कन्हैया खाता है। ढँकी होगी तो उसे ढक्कन उतारना पड़ेगा। खुली हुई वस्तु सहज ही दिख जायगी। हमतो रोज ही यह अनुभव करते हैं कि आज लालाने खायी कि नहीं ? लालाके खा लेनेका स्वाद ही और होता है। जो चीज हमें नहीं भाती, समझ जाते हैं कि आज लालाने नहीं खाया।'

नन्दगाँवमें श्रीभक्तकोकिलजी अपने समयका अधिकांश उद्धवक्यारीमें ही व्यतीत करते। वहाँ पाँतिके पाँति कदम्ब वन, लतायें अत्यन्त अद्भुत हैं। भक्तलोग वहाँ जाकर गोपियोंके विरहकी अवस्थाका स्मरण करके बहुत व्याकुल होते हैं। एक दिन हरी-भरी वृक्षावलीमें घूमते-घामते बहुत देर हो गयी। श्रीभक्तकोकिलजीको बहुत भूख लगी। उसी समय एक गोपी सिर पर छाक लिये उधरसे निकली। श्रीस्वामीजीने उसे बुलवाया और कहा कि मुझे रोटी खिलाओ। उसने बड़े प्रेमसे रोटी और छाछ खिलायी। श्रीस्वामीजीके मनमें यह भाव हुआ कि श्रीयशोदामैयाने ही यह छाक भेजी है।

एक दिन रात्रिके समय श्रीस्वामीजी वनोंमें विचरण कर रहे थे। उन्होंने देखा कि एक छोटा-सा बालक अँधेरी रातमें वनमें अकेला ही घूम रहा है। स्वामीजीने पूछा—'तुम्हें अकेले डर नहीं लगता ?' वह बोला—'कन्हैया भैया तो हमारे साथ ही है, डर काहे का ?'

होरीके दिनोंमें स्वामी जी एक बगीचेमें घूमनेके लिये गये। वहाँ देखा तो सब लाल-ही-लाल। पृथ्वी, वृक्ष, लतायें सभी मानो गुलालसे रँग दिये हों। श्रीस्वामीजीने कहा—'देखो श्यामसुन्दरने कैसी होरी खेली है ? अपनी प्रेम-

पिचकारीसे इतना रंग उलीचा है कि सब कुछ रँग गया है। श्रीस्वामीजी होरीके पद गाने लगे—

रङ्ग उमङ्ग समोई रहे रस-भाई रहे व्रजकी यह गोरी।
शीलसनेहसनी सरसानीरहे-सदा राधिका-श्याम की जोरी॥
बाल गुपाल विहार करें नित कुञ्जकुटीर छये व्रजखोरी।
पौरी सदा रङ्ग घोरी-रहे चिरजीवी रहे व्रजकी यह होरी॥

सब सत्संगी मस्त हो गये। उनके सामने श्रीयुगल-सरकारकी दिव्य होरीकी छटा छा गयी। श्रीस्वामीजी कितनी ही बार श्रीनन्दगाँव, बरसानेमें दो-दो तीन-तीन महीने तक रहे। कई बार सत्सङ्गियोंको दिव्य अनुभव भी हुए। एक सत्सङ्गीने देखा कि एक गूजरी पानी भरकर आ रही है और श्यामसुन्दर उसके साथ खींचातानी, धर पकड़ करते हुए उलझ रहे हैं।

दूसरे सेवकने उद्धवक्यारीमें नामसङ्कीर्तनकी ध्वनिमें मस्त होकर देखा कि एक कदम्बके वृक्षपर हृदयहारी हिंडोला पड़ा हुआ है और उसपर श्रीयुगलसरकार झूल रहे हैं और सखियाँ कजली गा-गाकर झोंटा दे रही हैं। श्रीभक्तकोकिलजीको यहाँ क्या-क्या अनुभव हुआ, यह किसी को नहीं मालूम।

श्रीगिरराज गोवर्धन भी अपने सुहाग-भागसे भरपूर होकर अचलरूपसे बिराजमान हैं। इन्होंने श्रीव्रजराजकुमार का सर्वाङ्ग स्पर्श प्राप्त किया है। आपने अपने झरनेके जलसे पाँव पखारा है, स्नान कराया है, मुँह धुलाया है। प्यास

बुझानेके बहाने उनके अन्तर्देशमें भी प्रवेश किया है। अपनी शिलाओंपर श्यामसुन्दरको बैठाया है, टहलाया है, सुलाया है और खिलाया है। अपनी हरी-हरी घासमें, पत्तेसे पुष्पसे आसन बनाया है, सेज बिछायी है। अङ्ग-अङ्गका शृङ्गार किया है। अपने गुग्गुलसे धूप दी है। अपनी मणिसे आरती उतारी है और अपनी धातुओंसे उनके कपोलोंपर चित्रकारी की है। विशाल भालपर गोरोचनसे तिलक किया है। उनके तलवेके नीचे भी रहे और छत्र बनकर सिरपर भी। उनके हाथके खिलौने बने। व्रजवासियोंके पूजा करते समय तो श्यामसुन्दर उनका रूप धारण करके उनका हक हिस्सा भी चट कर गये। वात्सल्यमें गोवर्धन क्रीड़ा, सख्यमें गोवर्धन क्रीडा और शृङ्गारमें भी गोवर्धन क्रीडा। गोपियोंका वक्षःस्थल देखकर भी श्यामसुन्दरको श्रीगिरिराजकी स्मृति हो आती।

श्रीगिरिराज गोवर्धनका दर्शन करके श्रीभक्तकोकिलजी अत्यन्त हर्षित हुए। श्रीहरदेवजीके मन्दिरमें घण्टों तक बैठे रहते। मानसीगङ्गाके तटपर बैठकर हलकी-हलकी लहरोंको देखते और मछलियोंको आटेकी गोली खिलाते। एक दिन दो दिव्य पक्षियोंके दर्शन हुए। एक गौर था, दूसरा श्याम। श्रीस्वामीजीने कहा—'यह युगलसरकार ही पक्षियोंका रूप धारण करके व्रजभूमिमें आनन्द क्रीड़ा कर रहे हैं।'

श्रीस्वामीजी भक्तोंके साथ व्रजरज मस्तकपर धारण करते और भावमग्न होकर व्रजरजमें लोटपोट होते और गाते—

व्रजराजरानी मेरी रक्षा करो।
श्रीमैथिलिचरणोंमें गर्दि श्रीखण्डको धरो॥

परिक्रमाके मार्गमें जा बैठते और लौटनेवालोंको मिठाई बाँटते। रास्तेपर झाड़ू लगाते, सत्सङ्गियोंसे कहते कि परिक्रमासे भी अधिक आनन्द इन महात्माओंके दर्शनमें है।

श्रीराधाकुण्ड श्रीस्वामीजीको बहुत ही प्यारा लगता था। एकबार वहाँ तीन महीने रहे और दूसरी बार एक महीना। वहाँ रहकर श्रीस्वामीजीने 'श्रीवैकुण्ठेश्वरवासभवन' नामकी एक पुस्तक भी लिखी है। यह पुस्तक लिखनेके लिये स्वप्नमें लक्ष्मणप्रिया श्रीउर्मिलादेवीने आदेश दिया था। वहाँ रहते समय एक दिन स्वामीजी कुछ सत्सङ्गियोंके साथ वनमें गये। वहाँ एक मोतीका वृक्ष मिला। बड़े ही सुन्दर मोतीके समान फल लगे हुए थे। श्रीस्वामीजीने और सत्सङ्गियोंने प्रभुका प्रसाद जानकर फल खाये और निवासस्थानपर ले आये। दूसरे दिन फिर सब सत्सङ्गी गये। बहुत ढूँढ़-ढाँढ़ की; परन्तु उस वृक्षका कहीं पता ही न चला।

श्रीराम-कृष्णकी एकता

भगवान् भगवान् ही हैं। उनका नाम श्रीराम रखो या श्रीकृष्ण। चाहे उनका मुकुट सीधा खड़ा हो या बाँकी अदाके साथ बायें अथवा दायें लटक रहा हो। वे व्रजके वन-निकुञ्जमें गायें चरा रहे हों, गोपियोंसे छेड़खानी कर रहे हों या धूलिमें लोट रहे हों, अथवा श्रीअवधके दरबारमें राजसिंहासनपर गम्भीरभावसे बैठकर राजकाजका संचालन कर रहे हों। नाम, पोशाक, काम या गुणोंके प्रकटीकरणके भेदसे भगवान्में भेद नहीं हो जाता। वे खेलके, खिलाके, डाँटके, पीटके, नाचके, गाके—हर हालतमें जीवोंपर अनुग्रह दृष्टिकी ही वृष्टि करते रहते हैं।

श्रीभक्तकोकिलजी मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम और लीलापुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णमें कोई भेदभाव नहीं रखते थे। उनके मनपर, अङ्गपर, वस्त्रपर श्रीवृन्दावनेश्वरी, श्रीराधारानीके ही नामका बोलबाला था। शरणागत भक्तों-को नटवर श्यामसुन्दरकी भक्तिका ही प्रायः उपदेश करते थे। कोई सेवक भगवान् श्रीरामचन्द्रकी भक्तिका मार्ग पूछता तो कहते—'बड़ा दरबार, बड़ी सरकार। उनकी सेवामें रहनेके बड़े-बड़े अदब कायदे, लोकोत्तर शील-स्वभाव, सतत् साव-धानी, सच्ची निष्कामताकी आवश्यकता है।' कोई बहुत आग्रह करता तो बालक श्रीरामकी उपासना बताते। युगलकी सेवामें जानेकी आज्ञा नहीं देते थे।

जिस समय श्रीभक्तकोकिलजी मीरपुरमें निवास कर रहे थे, अनेक भक्त उनकी सेवामें आते जाते रहते थे। एक भक्तके हृदयमें श्रीव्रजसरकार और श्रीअवधसरकारके सम्बन्धमें भेद-भावना थी। एक दिन जब वह भजनमें बैठा तो देखता क्या है कि युगल सरकारोंके दिव्य-दर्शन हो रहे हैं। एक कल्पवृक्षके नीचे दिव्य मण्डप है। उसमें सूर्यके समान चमकते हुए दो सिंहासन हैं। दोनोंपर दोनों युगल सरकार विराजमान हैं। थोड़ी देरमें उसने यह भी देखा कि श्रीभक्तकोकिलजी सहचरी रूपमें मङ्गल द्रव्योंका थाल सजाकर युगल सरकारकी पूजा करनेके लिये आरहे हैं। अब भक्तके मनमें यह आया कि देखें श्रीस्वामीजी पहले किसकी पूजा करते हैं ? उसने देखा—श्रीस्वामीजी युगल सरकारके पास पहुँचते ही दो रूप होगये और एक साथ ही दोनोंकी पूजा करने लगे। यह देखकर भक्तको बहुत ही आह्लाद हुआ और और उसका भेद-भाव मिट गया।

गांव-गांवमें भक्ति गंगाका प्रवाह

भक्त लोग श्रीभक्तकोकिलजीजीको मीरपुरसे अपने-अपने गाँव भी ले जाते थे। वे जहाँ पहुँच जाते वहाँ आनन्दके बादल उमड़ पड़ते। भक्त भी तन-मनसे श्रीस्वामीजीको प्रसन्न करते। जिन्हें भगवत्कथा, नामकीर्तन, सत्सङ्ग आदिका कुछ पता नहीं था, उन्हें भी इसका चस्का लगगया और दिनो दिन उनके आनन्दकी वृद्धि होने लगी। जो कभी नहीं सुनते थे वे सुनने लगे। जिन्हें पहले नींद आती थी वे जागने लगे। जिन्हें आलस्य आता था उनके दिलमें गुदगुदी होने लगी।

जिनका मन-तुरङ्ग इधर-उधर उछलता भागता था, उनका सध गया। नीरस चित्तमें सरसता आ गयी। मोटी बुद्धि महीन होने लगी। तात्पर्य यह कि सबके हृदयमें भगवान्‌की ओर बढ़नेकी एक उमङ्ग, एक तरङ्ग, उठ-उठकर नया रङ्ग लाने लगी। कोई अपने विषयी होनेपर पछताता तो कोई वेदान्ती होनेपर। इस तरह जो सिन्ध सिन्धुके तरङ्गोंसे भी गीला न हुआ, अब भक्ति-गङ्गाकी तरङ्गोंसे सराबोर होगया। रेगिस्तान में क्षीरसागर आगया। जिस गाँवमें श्रीस्वामीजी जाते वहाँके लोग हमेशाके लिये बड़े उत्साहसे कथा-कीर्तन सत्सङ्गका नियम कर लेते थे।

लालूग्राम—लालू ग्राममें सत्संगका ऐसा रंग जमा नामध्वनिकी ऐसी ध्वनि बही कि एक मुसलमान फकीर हमेशाके लिये युगलनामका प्रेमी बन गया। अब भी उनके मुँहसे 'श्रीराधेश्याम' 'श्रीसियाराम' नाम सुनकर लोगोंको रोमाञ्च हो आता है।

श्रीभक्तकोकिलजी पहले किसी सेवकसे महापुरुषोंकी चेतावनी एवं उपदेश भी पढ़वाते थे। प्रसङ्ग अनुसार भक्त लोग भी बातचीत करते थे। श्रीस्वामीजी भाव समझाते और अन्तमें लीलाचरित्रकी मधुर कथा कहते। श्रीस्वामीजीका ऐसा विचार था कि पहिले उपदेशकी बात सुननेसे मनकी बहिर्मुखता मिटती है, हृदय शुद्ध होता है। फिर लीला-कथामें अधिक आनन्द आता है। लालूग्राममें श्रीस्वामीजीसे किसी सेवकने पूछा—'मेहरबान मालिक! जीवकी पुकार ईश्वर तक कैसे पहुँचे?'

श्रीस्वामीजी—'ईश्वरके टेलीफोनका नम्बर निरहंकारता है। वह ईश्वरकी ओर से हमेशा जुड़ा रहता है। कभी इंगेज नहीं होता। इधरसे ही जोड़नेकी जरूरत है। अहंकार छोड़कर अटलमनसे ऊँचेस्वरसे भगवान्के नाम-गुण-लीलाका कीर्तन करे। जैसे वायुके सम्बन्धसे पुष्पकी सुगन्धि नासिका तक पहुँचती है वैसेही सत्पुरुषोंके सम्बन्धसे निर्मल चित्त अनायास ही ईश्वर तक पहुँच जाता है।'

सेवक—'मीठे मालिक ! उत्तम प्रेमका क्या स्वरूप है ?'

स्वामीजी—'प्रियतम, प्रेम और प्रेमी तीनों भासे तो कनिष्ठ। प्रियतम और प्रेमी भासे तो मध्यम। बस प्रेम ही प्रेम भासे तब उत्तम। संयोगमें एक प्रियतम भासे और वियोगमें सब प्रियतम ही प्रियतम भासे। यदि श्यामसुन्दर श्रीवृन्दावनेश्वरीके नेत्रोंपर हाथ रखकर बैठें तो ऐसी प्रसन्नता होती है कि बस हमेशा ऐसे ही रहें। सच्चे प्रेमीके लिये वियोगका स्वरूप ऐसा ही है।'

सेवक—'स्वामीजी, भक्तिका क्या अर्थ है ?'

श्रीस्वामीजी—'व्याकरणके अनुसार भक्तिका अर्थ है विश्वासपूर्वक निष्कपट सेवा। हृषीकेश और उनके प्यारे सन्तोंकी सर्व शुभ इन्द्रियोंसे सेवा करना ही भक्ति है।'

सेवक—'मीठे धनी ! सर्व शुभ इन्द्रियोंसे किस प्रकार सेवाकरनी चाहिये।'

स्वामीजी—हाथोंसे प्रभु-प्रतिमा, श्री गुरुदेव एवं सन्तोंकी पूजा सेवा।

पाँवसे परिक्रमा सत्सङ्ग और तीर्थकी यात्रा। वाणीसे भगवन्नाम, गुण स्तुति, यश, लीला, चरित्रका भाघ-सुन्दर कीर्तन और गान। कानोंसे सब सुनना। नेत्रोंसे प्रभुप्रतिमा, भगवत्प्रेमी सन्त चित्रपट, लीलाआदिके दर्शनकर आनन्दाश्रु बहाना। मनसे हृदयकमलपर या बाहर सिंहासनपर प्रभुको विराजमान करके भावनाके अनुसार भोजन जलपानआदिके द्वारा सेवन करना, जैसाकि एक श्रेष्ठ पुरुषके घर आ जानेपर करते हैं। बुद्धिसे भगवान्‌को रिझानेके लिये नये-नये गुण, कला-कौशल, साज-सङ्गीत, चतुराई सोच-सोचकर रिझाना। चित्तसे गरीबोंपर प्रभुकी कृपाका स्मरण कर गद्‌गद और रोमांचित होना। अपने दासपनेका अनन्य अहंकार करे। इस प्रकार सब बाहरी और भीतरी इन्द्रियोंके द्वारा प्रभुकी सेवा की जाती है।'

सेवक—'महाराजजी! क्या भक्ति भी कई प्रकारकी होती है?

स्वामीजी—'हाँ' भक्ति तीन प्रकारकी होती है—साधन-भक्ति भाव-भक्ति और प्रेमा-भक्ति। नामकीर्तन,सत्संग आदि साधनभक्ति। प्रभुके किसी गुणको देखकर हृदयका भावसे भर जाना भाव-भक्ति है। उसभावके प्रति कभी न मिटनेवाली ममताका होना प्रेमाभक्ति।

प्रश्न—सच्चे साहब! भक्तिमें सकाम निष्कामका क्या स्वरूप है?

उत्तर—चित्तका प्रेरक ईश्वर है। भक्त उसकी इस जगत्‌रूप लीलाका दर्शन करता रहे। इसमें जबतक अपना आपा भासता रहे तबतक ज्ञान है। भक्तिमें अथवा ज्ञानमें रसास्वादनको ही कामना कहते हैं। रसमें डूब जाय, आपा भूलजाय, मन इष्टरूप हो, इसको निष्कामता कहते हैं।'

प्रश्न—गरीबपरवर! अपनी इच्छा कैसे हटे?

उत्तर—जोहजूरीसे। श्रीसद्‌गुरुकी आज्ञामें अपनी इच्छाको मिटा दे। वे दिनको रात कहें तो तुम बोलो—कैसी चाँदनी छिटक रही है? श्रीगुरुदेवकी ताड़ना पिताके प्यारसे अधिक है। श्रीगुरु अमरदाससाहबने भाई राम और श्रीगुरु-रामदासको मिट्टीकी वेदी अलग-अलग बनानेकी आज्ञा दी थी। तैयार होनेपर उन्होंने दोनोंकी वेदी नापसन्द कर दी। भाई रामेको कुछ अप्रसन्नता हुई और गुरु रामदासको बड़ी प्रसन्नता। दोनोंने कईबार वेदी बनायी और हरबार श्रीगुरु-देवने कुछ-न-कुछ गलती निकाल दी। इस पर भाई रामा नाराज होकर बोले कि आपको तो कभी पसन्द ही नहीं आयेगी। गुरु रामदासजी बोले—'आप मुझे आज्ञा करते रहिये और मैं सारी जिन्दगी वेदी बनाता रहूँ। सेवा ही तो करनी है।' इस तरह अपनी इच्छा श्रीगुरुदेवकी आज्ञामें मिटानी चाहिये।'

प्रश्न—मीठेसाईं! शुभ गुण कैसे प्राप्त हों?

उत्तर—सदा अपनेको सिख समझे। कितना भी चतुर विद्वान् हो जाय तो भी अनजानकी तरह श्रीसद्‌गुरुसे

सीखता रहे। जैसे निम्न भूमिपर जल स्वयं ही आ जाता है, वैसे ही नम्र सेवकके हृदयमें दैवीसम्पत्ति स्वयं आती है।

प्रश्न—स्वामीजी, सच्चा शूरवीर कौन है?

उत्तर—जो स्त्रियोंके बीचमें रहकर जितेन्द्रिय है। ईश्वरके गम्भीर अनुरागको अपने हृदयमें ही छिपा ले।

प्रश्न—प्यारे प्रभु! वासना कैसे मिटे?

उत्तर—जिस चीजकी वासना हो वह लेकर किसी दूसरेको दे दे। एक महात्मा ऐसा ही करते थे। वे अपने मनको समझाते—'अभी मत मचलो लालन! परलोकमें तुम्हें खूब खिला दूँगे।'

प्रश्न—स्नेह कैसे दूषित होता है?

उत्तर—अभिमानसे और बदला चाहनेसे।

प्रश्न—हृदयमें ईश्वर कैसे दिखे?

उत्तर—साफ दिलके आईनेमें श्रद्धाका मसाला लगानेसे।

प्रश्न—विकार और विघ्न कैसे दूर हों?

उत्तर—प्रेमरसकी प्राप्तिसे। सिंहके राज्यमें गीदड़ोंका क्या काम? प्रेमकी आँचसे पापबर्फके पहाड़ गलकर आँसूके रूपमें बह निकलते हैं। प्रेमका चुम्बक विकाररूपी कीलोंको उखाड़ देता है। जैसे दूधसे निकला हुआ मक्खन उसके ऊपर निर्लेप रहता है, वैसे ही प्रेमी संसारमें संसारसे निर्लेप रहता है।

प्रश्न—नाथ! साधनामें उत्साह कैसे हो?

उत्तर—साधनाको छोटी वस्तु मत समझो। यह सद्गुरुकी दी हुई सिद्ध अवस्था है। आनन्दकी पराकाष्ठा है। यह रास्ता नहीं, मञ्जिल है। रास्ता समझोगे तो मञ्जिल दूर जानकर मन आलसी होगा। है भी यही बात। साधना हीं मञ्जिल है। जो लोग बिना किसी लालचके रास्तेपर नहीं चल सकते उनके लिये हीं मञ्जिल अलग बतानी पड़ती है; नहीं तो मेरे भैया, मञ्जिलपर पहुँचकर करोगे क्या ? करना तो यही पड़ेगा।

प्रश्न—प्रेमाभक्ति कैसे बढ़े ?

उत्तर—जो बढ़ती जाय सो प्रेमाभक्ति। जैसे गङ्गाजी समुद्रकी ओर बढ़ती हैं पहाड़ोंको तोड़ती-फोड़ती, गड्ढोंको भरती, नदियोंको अपनेमें मिलाती और वृक्षोंको घसीटती। घूमकर देखती नहीं। टिकनेका नाम नहीं लेती। बस, समुद्र! समुद्र! समुद्र! एक राग, एक तान, एक ध्वनि। समुद्रके गले लगे बिना विश्राम नहीं। लगकर भी विश्राम नहीं।

लालूमें श्रीभक्तकोकिलजी कितनी ही बार गये और महीने-महीने, दो-दो महीने तक वहाँ रहे भी। श्रीस्वामीजीको लालूग्राम मीरपुर जैसा ही प्यारा लगता था। उस गाँवके सभी लोग भोरे-भारे और श्रद्धालु थे। कोई तर्क-वितर्क नहीं करता था। सब बड़ी श्रद्धासे सत्सङ्ग करते थे।

नाइचग्राम—श्रीस्वामीजीके एक सिख भक्त नाइचग्राम में रहते थे। वे श्रीस्वामीजीसे मिलनेके पहिले बड़े उद्दण्ड स्वभावके थे। खाना-पीना, नाच-रङ्ग यही भाता था कोई।

सदाचार, सत्सङ्गका उपदेश करता तो बन्दूक लेकर उसे मारने दौड़ते। उनकी बहिन लालूग्राममें एक सत्संगीसे व्याही थी। लालूग्राममें जब स्वामीजी आये, तब वे भी अपनी बहिनके पास आये। बहन-बहनोईके सत्संगके लिये कहनेपर ये सिख भक्त ऐसे बिगड़े कि गाँवमें कोलाहल मच गया और सत्संगका द्वार बन्द करना पड़ा। इनके बहनोई बहुत समझाते बुझाते तब वे कहते कि जो स्वामीजीमें शक्ति होगी तो हमको स्वयं खींच लेंगे। एक दिन स्वप्नमें उन्होंने देखा कि स्वामीजी प्रकट होकर आज्ञा दे रहे हैं कि बेटा, अब सोनेका समय नहीं है जागो! वे उसीदिन मीरपुर गये तब श्रीस्वामीजीपर श्रद्धा हो गयी और फिर सत्सङ्गमें आने-जाने लगे। तब भी इनके खाने-पीने, नाच-रङ्ग, विषय-सेवनमें कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ा। सत्सङ्गी लोग श्रीस्वामी-जीसे कहते कि इनके कारण सत्सङ्गकी बदनामी होती है। श्रीस्वामीजी कहते—'चुप रहो! जब इनके हृदयपर सत्सङ्ग अपना असर डालेगा तब ये खुद ही विषयकी ओरसे हट जायँगे।' श्रीस्वामीजीने एक पुस्तक इनके लिये लिखकर इन्हें दी और आज्ञाकी कि इसे याद करके सुनाओ। बस, उन सिख सज्जनका मन उसमें ऐसा लगा कि सारी बहिर्मुखता मिट गयी और श्रीस्वामीजीके वे एक अनन्य भक्त हो गये। उन्हींके आग्रहपर श्रीस्वामीजी नाइच गये।

———

विरहतापसे द्रवित भूमिपर चरणचिह्न अंकित

नाइचमें श्रीस्वामीजी एक कुटियामें बैठकर स्नान कर रहे थे। श्रीगुरुदेवकी चौपाइयोंका गान किया, विरहकी आग भड़क उठी। हृदयकी व्यथा मूर्त हो गयी। करुणाकी पुकार कण-कणमें गूँजने लगी। सीमेन्टकी धरती मोमकी तरह कोमल हो गयी। उस समय श्रीस्वामीजीका बायाँ चरण चौकी के नीचे फर्शपर था। श्रीचरणके चिह्न उसपर अंकित हो गये। स्नानके बाद श्रीस्वामीजीकी दृष्टि पड़ी। उसे मिटानेकी कोशिश की। चाकूसे भी रगड़ा: परन्तु वह छाप न मिटी; न मिटी। भक्तोंके अनुनय-विनय करनेपर मिटाना तो बन्द कर दिया, परन्तु उस कुटियामें ताला लगा दिया। अब वह श्रीचरणचिह्न श्रीवृन्दावनधाममें विराजमान हैं।

सत्संगके नियम

सत्सङ्गमें एक भक्तने पूछा—बाबल साईं ! सत्सङ्ग किसको कहें ? श्रीस्वामीजीने कहा—सत्सङ्ग वह है जहाँ अन्तरकी ज्योति जगे। कुछ प्रेमी मिलकर भोली-भाली श्रद्धासे उत्साहसे मन लगाकर प्रेमरसमें मग्न होकर सन्त, भगवन्तके गुण, लीला चरित्रका निरूपण एवं श्रवण करें और तद्रूप हो जायें। सबकी हृत्तन्त्रीके तार एक ही स्वरमें बज रहे हों। सबका हृदय एक हो। भावके स्पष्टीकरणके लिये प्रसङ्गके अनुकूल सभी बीचमें बोल-बोलकर रसकी वृद्धि करें। पार्थसारथि कहते हैं—"बोधयन्तः परस्परम्"। जैसे बहुतसे सावधान लोगोंमें

चोर नहीं आते, वैसे ही प्रेमियोंके सत्सङ्गमें विकार नहीं आते। यह सत्सङ्ग ही प्रभुका महल है, लीला-मण्डप है। वहाँ श्रीकृष्ण खुले दिल खेलते हैं। वहाँ सब अपने और जानकार आने चाहिये। अनजानके आनेपर क्रीडामें बाधा पड़ती है। जहाँ एक वक्ता हो और दूसरे चुपचाप सिर नीचे किये सुनते रहें, मजा न लें, प्रसङ्गमें न बहें— ऐसी कथा-वार्तासे विकार-का नाश नहीं होता।

प्रश्न—प्यारे साईं! सत्संगके नियम क्या हैं?

उत्तर (१) सत्संग-सभाके सभापति श्रीग्रन्थसाहब हों। बिना पुस्तकके सत्संगकी शोभा नहीं होती।

(२) अपनी विद्या अथवा बुद्धि कौशल दिखानेके लिये प्रश्न नहीं करने चाहिये।

(३) शब्द और अर्थके झगड़ेमें न पड़कर भावपर नजर रखनी चाहिये और दिलसे उसका अनुमोदन करना चाहिये।

(४) सत्संगमें साक्षात् ईश्वरका निवास समझकर अदब,शील और भय रखना चाहिये।

(५) सब इन्द्रियोंका बल कानोंमें रखकर प्यासे हृदयसे कथा श्रवण करनी चाहिये।

(६) अपराधोंके वर्णन करते समय अपनी ओर देखना चाहिये। गुणोंके वर्णन करते समय औरोंकी ओर देखे और उनकी अभिलाषा करे।

(७) सुनते समय यह न समझें कि यह कथा है। ऐसा भाव रखें कि यह भगवत्-लीला अभी हो रही है।

(८) प्रभु-चरित्र विरहके प्रसंगमें न छोड़े। युगल-सरकारको मिलाकर, कुछ खिला-पिलाकर तब पूर्ण करे। भक्तके भावके अनुसार ही भगवान् लीला करते रहते हैं। इस लिये दुःखकी दशामें छोड़ना उचित नहीं है।

(६) जितना सत्संग करे उससे दुगुना मनन करे। थोड़ा खाकर अधिक चबानेसे अधिक स्वाद बढ़ता है। जैसे नींवके बिना महलका टिकना असम्भव है, वैसे ही मनन-के बिना सत्संगका। जैसे भोजनके एक-एक ग्राससे भूख मिटती है, तृप्ति होती है और शरीरका बल बढ़ता है, वैसे ही सत्संगकी जुगाली करनेसे विषयकी भूख मिटती है, रसकी वृद्धि होती है, प्रेमका एक-एक अङ्ग परिपुष्ट होता है।

प्रश्न—भक्त प्रभुकी ईश्वरताको क्यों भुलाते हैं ?

उत्तर—भक्तिके मार्गमें पहले पहल ईश्वरताकी बड़ी आवश्यकता है। ईश्वरकी नित्यता, सर्वशक्तिमत्ता, सर्वज्ञता, दयालुता आदि सोचकरके ही तो जीव उनसे डरकर सदाचार का पालन करते हैं। उनके समीप पहुँचनेकी इच्छा करते हैं और उनको जानते हैं। जब प्रभुका प्यार रग-रगमें भर जाता है। तब सहज ही ईश्वरता भूल जाती है। जब उनसे कुछ लेना ही नहीं तब महाराज और ग्वारियामें क्या भेद रहा ? वे हमारे प्यारे हैं, इसलिये हम उनकी कुशल चाहते हैं। एकने कहा—'वे बड़े दयालु हैं।' दूसरेने कहा—'वे तो अपने ही हैं।'

प्रश्न—श्रीस्वामीजी, भक्तोंके रोनेके भी कई प्रकार होते हैं क्या ?

उत्तर—हाँ ! कोई पापोंके कारण होनेवाले पश्चात्तापसे रोते हैं, कोई परलोकके सुखके लिये रोते हैं, कोई मुक्त होनेके लिये रोते हैं, कोई प्रेमकी प्राप्तिके लिये रोते हैं और कोई प्रियतमको सुख पहुँचानेके लिये रोते हैं। यह प्रेममय रोना ही सर्वोत्तम है।

प्रश्न—मोक्ष किसे कहते हैं ?

उत्तर—झूठसे सम्बन्ध छूटकर सत्यसे सम्बन्ध जुड़ना—इसीका नाम मोक्ष है। आत्मज्ञान और क्या वस्तु है ? पहिले विषयसे वैराग्य हो, फिर उपनिषद्का विचार हो। उससे अपनेको सच्ची वस्तु समझकर और ईश्वर-मिलनके योग्य देखकर शुभ गुणोंके शृङ्गारसे मनको सुन्दर बनावे। हरिनामके मजीठ रंगमें रंगकर लाल-लाल दुलहिन बन जाय। फिर युगलचरणकमल दूलहसे विवाह करले। यही सच्चा मोक्ष है। नारद पञ्चरात्रमें यही निर्णय किया है—

> माहात्म्यज्ञानपूर्वस्तु सुदृढः सर्वतोऽधिकः।
> स्नेहो भक्तिरिति प्रोक्तस्तया मुक्तिर्न चान्यथा॥

प्रश्न—कृपानिधि स्वामी ! कोई थोड़ी भक्ति करता है, कोई अधिक। क्या प्रभु भी भक्तिके अनुसार ही भक्तको छोटा बड़ा देखते हैं ?

उत्तर—प्रभुके पास कोई छोटा बड़ा नहीं है। वे एक नजरसे सबको देखते हैं। उनकी नजर इतनी बड़ी है कि उसमें कोई चीज छोटी दीखती ही नहीं। परन्तु रसिकजनोंने यह मर्यादा बाँधी है कि सकाम छोटा और निष्काम बड़ा। सकाम बेटेका दोस्त है और निष्काम बापका।

जपसाहबमें युगलसरकार

प्रश्न—श्रीस्वामीजी आप फरमाते हैं कि श्रीगुरुनानक देव महाराज श्रीजनकजीके अवतार हैं। उन्होंने तो जपजी साहबमें ज्ञानका ही कथन कियाहै ?

उत्तर—जपजीसाहबमें श्रीगुरुनानकदेवजीने भक्तिरस-का ही निरूपण किया है। वे महाराज श्रीजनकके अवतार हैं, इसलिये भक्तिरसके ज्ञाता हैं। वह समय मधुर भक्तिके प्रचारका नहीं था। इसलिये गुप्त रूपसे वर्णन किया है। सोलहवीं पौड़ी (सोपान) के इन वचनोंमें श्रीगुरुनानकदेवजीने श्रीगुरु अङ्गदसाहबजीके प्रति श्रीरामपञ्चायतनका निरूपण किया है—

पंच परवाण पंच परधान।
पंचे पावहिं दरगहि मान॥
पंचे सोहहि दरि राजान।
पंचेका गुर एक ध्यान॥

पञ्च अर्थात् श्रीरामपञ्चायतन, श्रीजानकी, श्रीरामचन्द्र, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न।

परवाण अर्थात् मायाकृत स्वभावसे परे है।

पञ्च परधान—यह पञ्चायतन धान्य प्रकृति याने अन्न प्रकृतिसे परे है। अजन्मा एवं अविनाशी होनेके कारण रज, वीर्य, भूख-प्याससे इसका कोई सम्बन्ध नहीं है ?

पंचे पावहिं दरगहि मान—मान अर्थात् यश। कीर्ति-रूप द्वारका आश्रय ग्रहण करके इस पञ्चायतनको प्राप्त कर सकेंगे।

पंचे सोहहिं दरि राजान—राजाधिराज श्रीरामचन्द्रके दरवारमें पाँच रसके भक्त शोभा पाते हैं।

पंचेका गुर एक ध्यान—इन शृङ्गार आदि पाँच रसोंका गुरु एकमात्र ध्यान है। ध्यान माने प्यारकी नजर। जैसे अपने बच्चेको हिंडोलेपर पौढ़ाकर घरके काम-काजमें लगी रहनेपर भी माताका ध्यान वालकमें है। प्रेममूर्ति श्रीरति-वन्ती देवी घर-लीप रही थीं। कथामें नहीं जा सकीं। उनका पुत्र कथा सुनकर रोता हुआ आया। मैयाने पूछा—'बेटा क्यों रो रहे हो?' बालकने कहा—'माखन चुरानेके कारण मैया यशोदाने भैया कन्हैयाको ऊखलसे बाँध दिया है और हाथमें छड़ी ले धमका रही हैं।' यह सुनकर रतियन्तीके प्राण व्यथित होकर बाहर निकल गये और तत्क्षण गोलोकमें पहुँच गये। वेतारके तारसे भी शीघ्र रतिवन्ती वहाँ पहुँचकर यशोदा मैयाके हाथसे छड़ी छीनकर जोशमें भर ऊखल सहित कन्हैया को लेकर निकुञ्ज महलमें चली गयी। वह अनन्त कल्पों तक यह सुख देखती रहेगी। पाँच रसोंके आचार्य श्रीगुरुनानक-देवजी इसी ध्यानको कहते हैं।

श्रीगुरुसाहबने जपजीसाहबकी सैंतीसवीं पौड़ीमें तो स्पष्ट साकेतलोकका वर्णन किया है और युगलसरकारका नाम भी दिया है—

करम खण्डकी बाणी जोर ।
तित्थे होर न कोई होर ॥

करम खण्ड अर्थात् कृपाखण्ड साकेतलोककी वाणी बलवती है।

बल माने प्रेम। वहाँ ऊपरकी पौड़ियोंमें कथित ज्ञान और धर्म नहीं हैं। प्रेम ही प्रेम है। श्रीगुरुसाहबने साकेत लोकको कृपाखण्ड इसलिये कहा है कि वह भक्तोंको प्रभुकी कृपासे ही प्राप्त होता है।

तित्थे जोध महाबल सूर ।
तिनमहिं राम रह्या भरपूर ॥

उस कृपाखण्डमें योधा माने विकारविजयी नवधा भक्ति करनेवाले साधनसिद्ध भक्त। महाबल माने प्रेमलक्षणा भक्तिसे भरपूर और सूर माने पराभक्तिसे युक्त भक्त निवास करते हैं। उनके हृदयकमलमें प्रभु श्रीरामचन्द्र स्थित हैं।

तित्थे सीतो सीता महिमा माहिं ।
ताके रूप न कथने जाहिं ॥

उस लोककी अधीश्वरी शीतल स्वभाववाली स्वामिनी श्रीसीता महारानी हैं। वे अपनी महिमामें स्थित हैं। उनके रूप गुणकी महिमा कथन नहीं की जा सकती।

श्रीजनकनन्दिनीजूकी कृपा एवं वात्सल्य

एक भक्तने हाथ जोड़कर, सिरझुकाकर श्रद्धापूर्ण हृदयसे कोमल वाणीसे पूछा—'श्रीस्वामीजी, कृपा करके श्रीस्वामिनी महारानीजीके शीतल स्वभावका कुछ विस्तारसे वर्णन कीजिये।'

श्रीस्वामीजीने कहा—'संक्षेपमें सुनो! इस संसारके लम्बे चौड़े इतिहासमें त्रिलोकीके विशाल वक्षःस्थलपर न जाने कितनी सती, आर्यमहिलायें हुईं और उनकी महिमा जबतक सूर्य-चन्द्रमा रहेंगे, गायी जाती रहेगी। परन्तु सतीगुरु अवधराजधानीकी महारानीकी महिमा अत्यन्त विलक्षण है! क्या विलक्षणता है? सती दमयन्तीको लकड़हारेने बुरी नजर से देखा और उन्होंने अपने सत्की आगसे उसे भस्म कर दिया। सती शाण्डिलीको गरुड़जी बड़े आदरसे योग्य समझ-कर भगवान्की प्रसन्नताके लिये वैकुण्ठमें ले जाना चाहते थे। उस देवीने अपने सत्के बलसे उनके शरीरको गला दिया। सतीशिरोमणि श्रीजनकनन्दिनी सर्वसहा, क्षमारूपिणी पृथ्वीकी पुत्री हैं। पृथ्वीका सार अथवा सत्रूप होनेके कारण वह पृथ्वीसे भी कोटिगुणा अधिक क्षमाशील हैं। उनका सत् दमयन्ती, शाण्डिली, लक्ष्मी आदिसे भी कोटिगुणा अधिक है। फिर भी उन्होंने अपने सत्की आगसे रावण जैसे महादुष्ट राक्षसको भी नहीं जलाया। वह बोलीं—'हे पुत्र! मैं सबकी मां हूँ। तुम्हारी भी मां हूँ। मुझपर कुदृष्टि करना उचित नहीं है। मैं अपने सत्के बलसे तुम्हें जलाकर खाक कर सकती

हूँ। परन्तु इससे भी तो मुझे ही दुख होगा। इसलिये सोच समझकर सपूत बनो।'

अशोकवाटिकामें राक्षसियोंका उपद्रव देखकर हनूमानजीने श्रीस्वामिनीजीसे आज्ञा मांगी कि इन्हें मार डालूँ। इसपर स्वामिनीजीने राक्षसियोंके सिरपरअपना वरद हस्तकमल रख दिया और हनूमानजीसे बोलीं—'हरि-हरि! ऐसा मत करो! यह बेचारी तो अपने स्वामीकी आज्ञा-का पालन कर रही हैं। इनका क्या दोष है? श्रेष्ठ पुरुष बड़े-से-बड़े अपराधीको भी क्षमा करते हैं। संसारमें सभी अपराधी हैं। किस-किसपर दृष्टि डाली जाय? अपने हृदयमें दुर्गुण नहीं आना चाहिये।'परम शीतल शीलस्वभावा श्रीजनकनन्दि-नीके मधुर वचन सुनकर हनूमानजीका हृदय आदर, श्रद्धा, विनय प्रेम और आनन्दसे भर-गया।

मन्दोदरी युद्धमें अपने पुत्र मेघनादका वध सुनकर क्रोधसे भरी महाराज श्रीरामचन्द्रको अपशब्द बकती अशोकवनकी ओर आयी और शाप देने ही जा रही थी कि सरमाके मुखसे सब समाचार सुनकर श्रीजनकनन्दिनीजू उसके सामने पहुँचकर घुटने टेककर, हाथ जोड़कर बड़ी नम्रतासे बोलीं—'माँ, अपने पुत्रके प्रति माताकी कितनी ममता होतीहै—यह मैं जानती हूँ; परन्तु तुम्हारे दुःखका कारण वे नहीं हैं। सारे अनर्थोंकी जड़ तो मैं हूँ। तुम उनके लिये कुछ न कहो माँ? अपनी क्रोधाग्निसे मुझे दण्ड देकर अपने हृदयकी व्यथा शान्त कर लो।'

श्रीस्वामिनीजीका शीतल हृदय और दैन्ययुक्त मुख-मण्डल देखकर उनके करुण, सत्य और मधुर वचन सुनकर मन्दोदरीका हृदय भी शान्त शीतल होगया और स्वामिनीजी-को हृदयसे लगाकर बोली—'तुम्हारे इस श्रील और शील-स्वभावपर ऐसे लाखों पुत्र कुरबान हैं। तुम्हारा सुहाग अचल हो और तुम अपने स्वामीसे मिलकर सुखी रहो।'

श्रीअयोध्या महारानी श्रीपार्थिवचन्द्रके शील स्वभाव-का वर्णन कहाँ तक किया जाय। वह आकाशके समान अनन्त और समुद्रके समान गम्भीर है। अमृतके समान मधुर है, मधुरताके समान प्यारा है और प्यारके समान आह्लाददायी है एवं कोटिचन्द्रके समान शीतल।

जिस समय जयन्ता कौएके रूपमें श्रीस्वामिनीजीपर पञ्जे और चोंचका प्रहार करके भागा और भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके इषीकास्त्रके भयसे त्रिलोकीमें कहीं भी शरण न मिलने पर घबड़ाता, काँपता श्रीदेवर्षि नारदके उपदेशसे फिर वहाँ आया और श्रीरामचन्द्रके चरणोंकेपास गिर पड़ा उस समय भी उसका मुख श्रीरामचन्द्रके विपरीत और पीठ उनके सामने हो गयी। तब श्रीस्वामिनीजीने कृपा-पूर्ण हृदयसे महाराज श्रीरामचन्द्रजीकी नजर पड़नेसे पहले ही झट उसको विमुखसे सम्मुख कर दिया। दीनवत्सला जगदम्बा श्रीजानकीचन्द्रजूके सिवा दुष्टोंपर ऐसी दया और कौन कर सकता है?

करुणामूर्ति श्रीस्वामिनीजीके मधुर स्वभावके वर्णन-में श्रीगुरुसाहबजीने भी उनके नामके आगे पहले 'सीता' शब्द का प्रयोग किया है। इसके आगे कहते हैं—

ना ओह् मरे न ठागे जाहिं।
जिनके राम वसैं मन माहिं॥

जिनके मनमन्दिरमें श्रीरामचन्द्रका निवास है वे न ब्रह्ममें लय होते हैं। और न माया उन्हें ठगती है।

तित्थे भक्त वसहिं कै लोअ।
करहिं अनन्द सचा मन सोइ॥

उस लोकमें अनेकों भक्त निवास करते हैं और अपने सच्चे स्वामीको अन्तःकरणके कमलपर विराजमान करके आनन्द कल्लोल करते रहते हैं।

सच खण्ड वसहिं निरंकार।
कर कर वेखें नदरि निहाल॥

उस सत्यखण्ड अर्थात् साकेत लोकमें अभिमान रहित पुरुष निवास करते हैं। जो कृपादृष्टि प्राप्त करके निहाल हो चुके हैं वे प्रभुको अपने हाथोंमें अर्थात् प्रेम पराधीन देखते हैं।

तित्थे खण्ड मण्डल वरभण्ड।
जे को कथे अन्त न अन्त॥

वहाँ बाल, पौगण्ड, किशोर, तरुण आदि खण्ड हैं और दास्य, सख्य, वात्सल्य, शृङ्गार आदि मण्डल हैं। उनमें भी 'वरभण्ड' याने सुन्दर नगर हैं। उन नगरोंमें अनन्त भावनासे युक्त भक्त अनन्तरूप धारण करके प्रियतमको अपनी

सेवा और विनोदसे रिझाते हैं। वहाँके विस्तारका कोई पार नहीं पा सकता।

तित्थे लोअ लोअ आकार।
जिवँ जिवँ हुकुम तिवें तिवँ कार॥

उस लोकमें जो कुछ लोक-अलोक अर्थात् जड़-चेतन है, वे सब भक्त ही हैं। कोई वृक्षका रूप धारण करके माताके समान युगलको अपनी छायारूप गोदमें बिठाते हैं और कोई पक्षीरूप धारणकर मधुर कीर्ति गाते हैं। कोई सखीरूपसे सेवा करते हैं। ज्यों ज्यों प्रभुकी प्रेरणा होती है, वैसे वैसे कार्य करते हैं।

वेखैं विगसें करि वीचार।
नानक कथना करडा सार॥

वे भक्त युगलकी लीला देख-देखकर प्रफुल्लित होते रहते हैं और प्रभुकी अकारण करुणाका विचार करते हैं। श्रीगुरुनानकदेवजू कहते हैं कि कहना मुश्किल है,इसलिये मैंने सार-सार कहा।

श्रीभक्तकोकिलजीके मुखारविन्दसे ऐसा दिव्य अर्थ सुनकर सिख भक्त बड़े प्रसन्न हुए। नाइत्रग्राममें नहरके तट-पर प्रायः सत्संग होता। श्रीस्वामीजी कभी विरहके, कभी मिलनके ऐसे ऐसे प्रसङ्ग सुनाते जिससे सत्सङ्गी लोग देह-गेहकी सुधि भूलकर कभी धरतीपर लोटने लग जाते और कभी प्रेमानन्दसे नाचने लग जाते।

चिन्ता दूर करनेका साधन

आराजीग्राममें श्रीभक्तकोकिलजीके बहुतसे भक्त थे। यह वही ग्राम है जिसमें रहने वाला पटवारी पहले पहल सद्गुरुके पास जाते समय श्रीस्वामीजीको गोंसपुरमें मिला था और हमेशाके लिये भक्त होगया था। यहाँके भक्त श्रीस्वामीजीको बार-बार अपने गाँवमें ले आते। सत्सङ्ग महोत्सव होता। रात-रातभर सङ्कीर्तन होता। गांवके सरपञ्च भी श्रीस्वामीजीसे बहुत प्रेम करते थे। एक दिन उन्होंने पूछा कि किस बातसे चित्तकी चिन्ता दूर हो? श्रीस्वामीजीने कहा— डेरागाजीखाँके मालिक सराई गाजीखाँने अपने वजीर गामणखांसे जो गामू सचारके नामसे मशहूर था पूछा— 'दिलका गम कैसे दूर हो?' गामू सचारने कहा— सरकार पहले आप ही फरमाइये।' गाजीखां बोला—'शराबो रवाने आबो माहलैलो क्रिमरिरुं यार।'चांदनी रात हो,नदीका तट हो, सुरा हो और सुन्दरी। फिर दिलमें गमका क्या काम? गामू सचारने कहा—इनमेंसे एक भी चीज मुश्तकिल रहनेवाली नहीं है। इनसे अगर गम दूर भी हो तो आँख झपते-न-झपते फिर आ जायगा। अगर हमेशाके लिये गम दूर करना है तो यह चार बातें हैं—

"सोहबते साहिब दिलाँ सखावत तोवहाँ इश्तेगुफार"

साहिब दिल फकीरोंकी सोहबत, उदारता; ईश्वरके सामने तोबा करना और बन्दगी—यह चार बातें हमेशाके लिये गमको मिटा देती हैं।

मास्टरका मोह निवारण

उस गांवमें एक मास्टर साहिब रहते थे। वे बड़े ही सन्तसेवी, वैराग्यवान् और ज्ञानयोगके साधक थे। उनका नवजवान बेटा जो कि आज्ञाकारी और धर्मात्मा था, अचानक चल बसा। मास्टर साहबके हृदयपर यह चोट गहरी बैठी। आत्मसुखकी स्थिति डावांडोल हो गयी। वे पागल-से श्मशान और जङ्गलोंकी खाक छानने लगे। तांगे-वालोंसे पूछते—'मेरा बच्चा गाड़ीसे तो नहीं उतरा ?' घर वालोंसे भी ऐसा ही पूछते। उनकी हालत सुनकर श्रीस्वामीजीका हृदय दयासे भर आया। श्रीस्वामीजीने उनपर ऐसी कृपादृष्टि की— ऐसा सुखका स्थान बताया कि उनके दहकते हुए दिलमें शांति और शीतलताका स्रोत खुल गया। मोहकी आग बुझ गयी। ज्ञानकी रूक्षता सरस हो गयी। प्रेमभक्तिकी स्निग्धतासे हृदय कोमल हो गया।

श्रीस्वामीजीपर उनकी श्रद्धा अटल और गम्भीर थी। जिस पेड़के नीचे श्रीस्वामीजी कभी बैठ गये, उसकी भी परिक्रमा करते थे। उनका पत्र पाकर नाचने लग जाते। बाजारमें जाते हुए कहीं युगलसरकारका चित्र देख लेते तो जूता उतार कर साश्रु नेत्रोंसे वन्दना करने लगते। आगे जाने-की याद न रहती। कभी-कभी तो कोई जूता ही उठा ले जाता। पेशाब करते-करते ध्यान लग जाता, तो वहीं बैठ जाते। मिनटोंका रास्ता घण्टोंमें तय करते। उनकी श्रद्धा भक्तिका औरोंपर भी सुन्दर असर पड़ा। श्रीस्वामीजी भी

उनकी श्रद्धा और प्यास देखकर खुले दिलसे गूढ़-गूढ़ बातें बताते। उनके पूछनेका ढंग यह था—'गरीबनिवाज साहिब, इस गुलामकी यह अरज है' इत्यादि।'

प्रश्न—स्वामीजी, कर्मी, ज्ञानी और भक्तमें क्या भेद है ?

उत्तर—कर्मी तीन, ज्ञानी एक और भक्त दो। भक्त, जीव, ईश्वर, केवल ईश्वर भक्त और ईश्वर।

प्रश्न—कृपानिधान स्वामी, भक्त भेदभाव मानते हैं और श्रुति कहती है कि द्वैतमें भय है। फिर तो भक्तोंको भय बना ही रहेगा।

उत्तर— वेदकी यह वाणी सत्य है। जब तक द्वैत है तबतक आपसमें प्रीति कैसे होसकती है ? दोस्तीका अर्थ है 'दो अस्ति।' जिसमें दो हृदय एक हों। जब हृदय अद्वैत नहीं तब प्रतीति (विश्वास) नहीं। प्रतीति नहीं तो प्रीति नहीं। प्रीति नहीं तो शान्ति नहीं। श्रीगीता कहती है— 'अशान्तको सुख कहाँ ? यहां वेदशास्त्रका सिद्धान्त दिल एक करनेका है। जैसे सेवकका स्वामीसे, सखाका सखासे, पिताका पुत्रसे, पत्नीका पतिसे हृदय एक होना चाहिये वैसे ही अंशका अंशीसे। प्रेममें द्वैत कहाँ ? प्रेमका स्वभाव ही है सारे परदोंको हटाकर मिलाना। जैसे चौपड़के खेलमें युग न हो तो अकेला मारा जायगा वैसे ही प्रेममें भी युग होना चाहिये। व्यक्ति दो हैं, परन्तु दिल एक है। दिलकी एकताको ही अद्वैत कहते हैं। श्री गुरुसाहिबजी कहते हैं—

धन पिर एह न आखियहि जो बहनि इकट्ठे होय।
एक जोति दो मूरती धन पिर कहिये सोय॥

धन और प्यारे वह हैं जो एक ज्योति दो मूर्ति हैं।

प्रश्न—प्यारे साईं, अधिक लोग भक्ति छोड़कर ब्रह्मज्ञानके मार्गमें क्यों चलते हैं?

उत्तर—जैसे चारों ओर फैला हुआ महान् प्रकाश सूर्य देवताकी मूर्तिको छिपा देता है इसी प्रकार युगलसरकारका महान् प्रकाश ही उनका आवरण बन जाता है। इसलिये लोग उन्हें देख नहीं पाते। संसारके दुःखसे दुःखित होकर जो मोक्षरूप स्वार्थ चाहते हैं उनकी हिम्मत युगलसरकारके निकट जानेकी नहीं होती। वे दुःखनिवृत्ति और सुख-प्राप्तिके लिये व्यापक ब्रह्मका ध्यान करते हैं और भक्ति प्रभुकी निज निधि, निज सम्पत्ति है। यह किसीको सुगमतासे नहीं देते। क्योंकि यह दे देनेसे प्रभुको स्वयं उस प्रेमीके पीछे दासकी तरह डोलना पड़ता है।

प्रश्न—यह चञ्चल मन ईश्वरमें कैसे लगे?

उत्तर—मनको नियममें बाँधनेसे किसी भी हालतमें नियम नहीं तोड़ना चाहिये। सद्गुरुकी आज्ञाके अनुसार नियमका पालन करता रहे तो धीरे-धीरे मनको रसका चस्का लग जायगा और सहज प्रेमका उदय होगा। यदि सर्वदा नियमका निर्वाह करता रहे और बीचमें कभी भूल भी हो जाय तो प्रभु सँभाल लेते हैं। एक बार कोई सेवक सन्तका दर्शन करने जा रहा था। रास्तेमें एक अनोखा-सा बटोही मिला। उसने पूछा—कहाँ जा रहे हो?

सेवक—सन्तका दर्शन करनेके लिये।

पथिक—वे तो चल बसे।

सेवक—उनके शरीरका दर्शन करूँगा।

पथिक—उनका तो अग्नि संस्कार भी होगया।

सेवक—उनके फूलोंका दर्शन करूँगा।

पथिक—फूल भी गङ्गाजीमें डाल दिये गये।

सेवक—तो उनके स्थानका ही दर्शन करूँगा।

सेवकने स्थानपर आकर देखा तो सन्त सकुशल सानन्द विराजमान हैं। उसने सन्तसे सारी बातें कहीं। सन्तने कहा—ठीक है, ठीक! वह पथिक और कोई नहीं, भगवान् थे। उन्होंने मुझे चेतावनी दी है क्योंकि मैंने तीन घड़ी उनके भजनका नियम छोड़कर व्यवहारकी बातें कीं। पहली घड़ीमें मेरा मरण, दूसरीमें अग्निसंस्कार और तीसरीमें फूलोंका गङ्गामें प्रवाह। प्रभुने कृपा करके मुझे सँभाल लिया।' सन्त प्रभुकी कृपालुताका स्मरण करके भावमग्न होगये।

नियमके समय प्रेमदेव पदार्पण करते हैं। जब अपने समयको वे व्यवहारमें लगाता देखते हैं तो निराश होकर लौट जाते हैं। नियम न पालना प्रेमदेवका अनादर है। इनका निरन्तर इन्तजार और आदर करना चाहिये।

प्रश्न—नाथ, भातमें नमक डालते समय कौन बतलाता कि इतना ठीक है?

उत्तर—ईश्वर।

प्रश्न—वह जीवके हृदयमें किस प्रकार बैठा है?

उत्तर—सर्व जीवोंके अन्तरसे भी अन्तर अन्तर्यामी जगदीश्वर विराजमान हैं। अमावस्याके घोर अन्धकारमें,

वीहड़ जङ्गलमें वृक्षोंके नीचे काले पत्थरपर अत्यन्त सूक्ष्म सोनेकी चिड़िया चीं-चीं कर रही हो। सूक्ष्म होनेसे अविज्ञेय है एवं पञ्चकोशसे दूर वह परमात्मा स्थित है। निकटसे भी निकट है।

प्रश्न— उसकी प्राप्ति कैसे हो ?

उत्तर—मनसे वासना निकल जाय तो प्रभु दीख पड़े। घड़ेसे गेहूँ निकाल लो तो आकाश ही नजर आये।

संकलप सन्ध्या दूरि होजाई।
मध्य दिवस इव रामगुसाईं॥

प्रश्न—प्रभुपर परदा क्या है ?

उत्तर—व्यापकताका। जब कोई भक्त पुकारता है तो घर्षणकी अग्निके समान प्रकट हो जाते हैं।

भक्तिके विघ्न

प्रश्न—भक्तिमें सूक्ष्म विघ्न क्या है ?

उत्तर—अपनी भक्तिको जाहिर करनेकी सूक्ष्म इच्छा। वह साधनाको सिद्ध नहीं होने देती। जैसे अन्धी आटा पीसती जाय और कुतिया खाती जाय, वैसे ही इच्छा कूकरी साधनाका आटा खा जाती है। इसलिये अपने हृदयके भावको लोगोंकी नजरसे बचाते रहना चाहिये। जैसे नजर लगी चीज अपने प्यारे बच्चेको नहीं खिलाते वैसे ही

लोग-लुगाइयोंकी नजरका शिकार भाव भी प्रियतमको अर्पित नहीं करना चाहिये, रसिकजनोंकी यही रीति है।

प्रश्न—अपनी प्रशंसाकी इच्छा न होने पर भी लोगोंकी नजर विघ्न डाल सकती है क्या ?

उत्तर—हाँ,डाल सकती है ? एक सन्त कहते थे कि मुझे स्वप्नमें भी भीतरके भावको जतानेकी इच्छा नहीं है, तो भी अचानक सत्सङ्गमें कोई बात प्रकट हो जानेसे विघ्न पड़ता है। इसलिये दिलकी बात लब पर न आनी चाहिये। जब भक्त प्रभुके पास पहुँचता है तब वे उससे पूछते हैं—क्यों दोस्त, मेरे लिये कुछ छिपाकर भी लाये हो ? तब वह उनकी नजरके सामने लोगोंकी नजरसे अछूते अपने दिलके भावोंका नजराना नजर करता है। जिसने चञ्चलतावश अपने भावके गुप्त मोती बिखेर दिये उन्हें दरबारमें कच्चा समझा जाता है। स्वामी श्रीआत्मारामं साहबजू एक कथा कहते थे—'सिन्धके सन्त कवि शाह लतीफ घूमते फिरते एक जगहसे निकले। उन्होंने देखा कि एक फकीर 'आ फकीर, ले फकीर, जा फकीर' यह रट लगा रहा है। कारण पूछनेपर उसने अपनी कहानी सुनायी, 'इस जगह पर एक किसान परिवार रहता था। मैं उनके घर अक्सर भिक्षाके लिये आया करता था। उनकी कन्या 'आ फकीर' कहकर बुलाती, 'ले फकीर' कहकर भिक्षा देती और 'जा फकीर' कहकर हाथ जोड़ती। उसकी मूर्ति मेरी आँखोंमें और बोली मेरे कानोंमें समा गयी। छः महीने बाद वे लोग चले गये औरमैं बारह वर्षसे यह रट लगा रह हूँ।' शाह लतीफने कहा—'वे किसान मेरे

शिष्य हैं। अगर तुम ईश्वरसे मेरे लिये कृपाकी चिट्ठी दिलानेका वायदा करो तो मैं तुम्हें उस कन्यासे मिला सकता हूँ।' फकीरने मंजूर कर लिया। शाह लतीफ उसे साथ लेकर किसानके पास आये और उस लड़कीको अपने पास सेवामें बुलाया। वह लड़की जब कमण्डलु लेकर फकीरके हाथ धुलाने लगी तो सारा जल उस फकीरके हाथमें ही सूख गया। पानीकी बूँद भी नीचे नहीं गिरी। उस फकीरकी भीतरी आगने उसे निगल लिया। या प्रियतमकी दी हुई वस्तु नीचे कैसे गिराऊँ, इस भावकी गाढ़तामें सारा का सारा पानी लीन हो गया। कमण्डलु खाली हुआ। दोनों आशिक माशूक गिर पड़े। दोनोंकी समाधि साथ-साथ बनी। रातको शाह लतीफ कृपाकी चिट्ठी लेने गये और पुकारा। कब्रसे वह लड़की निकल आयी और शाहको कृपाकी चिट्ठी दी। शाहने पूछा—'फकीर कहाँ है? वह बोली—उसने अपने दिलका हाल आपको सुनाया, इसलिये दरबारमें कच्चा माना गया। अब उन्हें बाहर आनेकी आज्ञा नहीं है।

इसलिये भक्तको अपनी भावरत्नकी मंजूषा बहुत गहरी भूमिमें छिपाकर रखनी चाहिये।

प्रश्न—भक्तको और क्या सावधानी रखनी चाहिये?

उत्तर—भावका स्थान सदा स्वच्छ रखे। हृदयमें छल-छिद्र, झूठ-कपट, स्वसुखका भाव न आने पावे तब प्रेमरसका पूर्ण स्वाद चखेगा। हृदयके शुद्ध सात्त्विक भावको केवल प्राणनाथ ही देखता है। उसकी प्राप्ति सन्तोंकी कृपासे होती है।

प्रश्न—सन्तोंकी कृपा कैसे होती है?

उत्तर—सरल श्रद्धा, निष्कपट सेवा, सत्य एवं नम्र भाषणसे सन्तोंकी कृपा-दृष्टि होती है। सन्तकी क्रिया पर नहीं, दिलपर नजर रखना चाहिये। गोपी और सन्त तर्कसे नहीं जाने जाते। सन्तोंकी कृपादृष्टिमें ईश्वरका निवास है। ईश्वरकृपासे सत्कथामें भोलेपनसे प्रवेश है। भोली-भाली श्रद्धासे प्रेमका अमर फल प्राप्त होता है।

मास्टरको दिव्य दर्शन

एक दिन श्रीभक्तकोकिलजी अपनी एकान्त कुटियामें किवाड़ बन्दकर भजन कर रहे थे। वह मास्टर भक्त अचानक ऊपर चढ़ आया और किवाड़की सन्धिमेंसे देखा तो मालूम हुआ कि भीतर तो प्रकाश-ही-प्रकाश है। एक चम चम चमकते हुए दिव्य हिंडोलेपर परम आह्लादमयी शिशुमूर्ति श्रीजनकनन्दिनी विराजमान हैं और श्रीस्वामीजू सहचरी रूपमें दिव्य वस्त्राभूषणोंसे सजधजकर झोंटे दे रहे हैं। कभी-कभी दूधकी कटोरी मुखसे लगाते और चिबुकपर हाथ रखकर कहते हैं—

दूध पियो मेरी लली ललाम।
बेटी वैदेही बोलो श्रीराम ॥

जुग जुग जियो श्रीपार्थिवी पुत्री सफल होवहिं मनवाञ्छित काम ॥
कुशल रहें दृगचन्द्र चरणजुग शुभ सगुन सदा बेटी सुखधाम ॥
गरीबि श्रीखण्ड कोकिलतन ह्वै युगल, पदोंमें पाऊँ विश्राम ॥

यह दिव्य आनन्द देखकर मास्टर साहबका रोम रोम पुलकित होगया।

भानग्राम

आराजीके पास ही भानग्राम है। वहाँके मुख्य मुख्य लोग श्रीस्वामीजीके वड़े भक्त थे। इसलिये साधारण जनोंपर भी बहुत असर था। कितनोंका जीवन सुधर गया। श्रीस्वामीजीने वहाँके मुखियाके घरमें ब्रज-युगलसरकारको विराजमान किया था। सारा घर ही श्रीयुगलसरकार पर फिदा है उनके श्रीचरणकमलोंका प्रेमी है। सब मिलकर प्रेमसे नामध्वनि करते, नाचते-गाते,नियमसे लीला-कथा,सत्संग करते। रातको नौ बजेसे तीन बजे तक सब इकट्ठे होकर परस्पर विरह-वार्ता करके जीभरकर रोते। उस सत्सङ्गरसका आस्वादन करनेके लिये आस पास के गाँवोंके और पास-पड़ोसके रसिक भक्त भी आ जुड़ते। श्रीभक्तकोकिलजी स्वयं निज मुखसे भानके सत्संगका बखान करते थे। वहाँके लोग बाजे-गाजेसे श्रीस्वामीजीका वड़ा सत्कार करते। परन्तु यह बात उनके नम्र स्वभावके विपरीत पड़ती थी। वे किसी-न-किसी प्रकार उन्हें टाल देते। यहाँ तक कि स्टेशनसे कुटियापर पैदल ही चले जाते। भानके मुखियाके घर सन्त क्या आये भगवन्त ही आ गये।

'आजमेरे भाग जागे प्यारे सन्त आये पाहुने' की सङ्गीत ध्वनिसे भानगाँव गूँज उठा। घरका कोना-कोना

आनन्दमन्दाकिनीकी तरल-तरल तरङ्गोंसे धवलित हो उठा। नन्हें-नन्हें बच्चे भी नाच-नाचकर आगत स्वागतके गीत गाने लगे और 'मिठड़े बावल साईंकी सदाई जय हो' के नारोंसे आकाश मुखरित होगया। घरकी और पास-पड़ोसकी स्त्रियोंने श्रीगुरुग्रन्थसाहिबसे आशीर्वादके गीत चुन-चुनकर रंग-बिरंगे अक्षरोंमें काढ़कर रेशमी रूमालोंको श्रीस्वामीजीकी सेवामें रखा। आशीर्वादके गीत देखकर आशीषप्रिय साईं बहुत खुश हुए। रूमालोंको इकट्ठा करके चादर बनवाकर ओढ़ लिया।

हमारे प्यारे साईं अपने भक्तोंसे आशीषके सिवाय और कोई वस्तु ग्रहण नहीं करते थे। श्रीगुरुसाहिबके आशीर्वाद पदोंसे युक्त होनेके कारण ही इन रूमालोंको ग्रहण किया।

नामजपकी विधि

वहाँ एक दिन सत्सङ्गमें किसी सेवकने हाथ जोड़कर पूछा—'निर्मल नाथ! नाम जपते जपते मन उसके आनन्दमें डूब जाता है, फिर लीला-समाजमें प्रवेश नहीं करता।

उत्तर—नाम जपके समय धाम, रूप, लीला और सेवाका चिन्तन होनेसे ही सच्चे भगवद्-रसका उदय होता है। इसके बिना जो नामजप होगा उससे वृत्तियोंकी शिथिलता मात्र होगी, द्रवता नहीं। वह मिट्टीके उस ढेलेके समान होगी जो गीला तो है पर पिघलकर किसीकी ओर बहता नहीं है। तदाकारता तब होती है जब चित्तवृत्ति पिघलकर इष्टदेवके

साँचेमें ढलती है। केवल नामजपके समय जो आनन्द होता है वह संसारकी चिन्ता और दुःखका भार उतर जानेका आनन्द है। इस भारयुक्त वृत्तिपर जब विरहतापकी व्याकुलताकी आँच लगती है तब पिघलकर वह इष्टदेवके आकारके साँचेमें ढलती है और लीलारसका अनुभव होने लगता है। इसलिये नाम-जपसे यदि चरित्र-समाजका अनुभव न होता हो तो बीच-बीचमें लीलाके पद गा-गाकर लीलाका भाव जाग्रत् करना चाहिये। नामजपसे विक्षेपकी निवृत्ति और पदसे लीलाका आविर्भाव, होता है फिर विक्षेप आवे तो नाम जप करो। जपसे मन एकाग्र हो तो फिर लीलाकाचिन्तन करो।

यह भगवान्का चिन्तन घण्टे-दो-घण्टेकी ड्यूटी अथवा धर्मपालन नहीं है। इसके लिये जीवनका सारा समय ही अर्पित करना पड़ता है। चलते-फिरते, काम-धन्धा करते भी हृदयमें महापुरुषोंकी वाणीके अर्थका विचार करता रहे। उनमें अनेक भाव सूझें। उन भावोंसे मिलती-जुलती रसिकजनोंकी वाणियोंको ढूँढ़कर मिलान करे। उनमें लीला-के जो सुन्दर-सुन्दर भाव हैं उनका अनुभव करे। इससे संसारके सङ्कल्प मिटेंगे और भगवान्के प्रति मन बुद्धिका अर्पण होगा। यह मनीराम बड़े रसिक हैं। चस्का लग जाने पर ये नये-नये रस घोलते रहते हैं।

प्रश्न—मालिक! भक्तको नामजप कैसे करना चाहिये?

उत्तर—भक्त दो तरहके होते हैं—एक विरही और दूसरे प्रभुसे मिले हुए। पहले भक्त भगवान्का नाम इस तरह जपते है, जैसे माता अपने परदेश गये इकलौते पुत्रको

पुकारती है अथवा मरुस्थलमें प्याससे तड़फड़ाता प्राणी जब तक श्वास चलता है, होश रहता है, तब तक 'पानी पानी' स्वाभाविक विकलतासे पुकारता रहता है। उसे यह ख्याल नहीं रहता कि हमें पानी पानी कहनेसे कोई पुण्य होगा या पानी खुद मेरे पास आ जायगा। वह तो अपनी भीतरी माँग, अपनी ज़रुरत भर प्रकट करता है।

मिले हुए भक्त इस प्रकार नाम-जप करते हैं जैसे किसी मनचले बालकको पर्याप्त रसगुल्ले मिल गये हों और वह खाता भी जाता हो और 'वाह रसगुल्ला, 'बड़ा आनन्द' 'अद्भुत है', 'अद्भुत है' ऐसे स्वाद लेता और देता जाता हो। वह अपने भोलेपन, बचपन, मज़ा और उसके प्रदर्शन से अपने प्रभुको रिझाता है और उनकी रीझ देखकर नये उत्साह, नये जोश, नयी उमंग और नयी चोपसे—और-और गहरे गोते लगाना, और और रस विलास प्रकट करना और अपने आनन्दसे सबको आनन्दित कर देना—ऐसा नाम जप करता है।

प्रेमका स्वरूप

प्रश्न—स्वामीजी, रसखान सन्त कहते हैं—

बिनु गुन यौवन रूप धन, बिन स्वारथ हित जानि।
शुद्ध कामनाते रहित, प्रेम वही रसखान॥

कृपा करके इस प्रेमका स्वरूप समझाइये ?

उत्तर—प्रेम ही ईश्वर है। उसी प्रेमसिन्धुकी बूँद होनेके कारण जीव भी प्रेम ही है। प्रेम जीवका स्वरूप है,

स्वभाव है। यह किसी कारणसे प्रेरित होकर या किसी फलके लिये जब प्रेम करता है तब वह कारण और फल ही आँखमें किरकिरीके समान प्रेमकी धाराको विच्छिन्न, अभावग्रस्त और परोक्ष बनाने लग जाता है। प्रेम बहुत सूक्ष्म है। यह गुण, भाव, आचार, रूप, दूरी, प्रतिकूलता, ऐश्वर्य, माधुर्य, अवस्था, सम्पत्ति, अधिकार, जाति स्वसुख, स्वार्थ, योग्यता आदिपर आश्रित नहीं है। प्रेममें शरीर, जन्म-मृत्युकी परवाह नहीं है। यह कभी टूटता नहीं। इसमें कड़वा या मीठा किसी प्रकारका स्वाद नहीं है। यह अनुभव स्वरूप है। जब यह कभी छलक पड़ता है तब इसकी एक फुहीका करोड़वाँ हिस्सा मन और वचनको छूता है और इतनेसे ही वे मतवाले हो जाते हैं। यह जिसके जीवनको छू लेता है वह मत्त, स्तब्ध, आत्माराम रह जाता है। उसको तृप्तिके लिये कर्म, योग, उपासना, ज्ञानकी अथवा सुख, अमृत, समाधि, सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सायुज्य और कैवल्यकी आवश्यकता नहीं। कर्म, उपासना और ज्ञानसे प्रेमीके मल, विक्षेप और आवरण रूप दोष दूर होते हैं। यह प्रेमीकी आत्मशुद्धि है। भक्तिसे प्रियतमके स्वरूपका शोधन होता है। शुद्ध प्रेममें प्रेमी और प्रियतम डूबते उतराते रहते हैं। प्रेमी और प्रियतम दोनों ही प्रेमके विलास हैं। 'मैं प्रेमी हूँ और यह प्रियतम' यह अवस्था भी किंचित् काममिश्रित है। शुद्ध प्रेम शुद्ध प्रेम ही है। वही प्रियतम है, वही प्रेमी है।

उसमें किसी अवलम्बकी आवश्यकता नहीं पड़ती। शुरू शुरूमें किसी न किसी उपाधिको लेकर प्रेम प्रारम्भ होता

है। पीछे चलकर उपाधिपर दृष्टि नहीं रहती। अपने प्यारेकी आत्मापर, सुखपर दृष्टि रहती है। इसीसे दोष देखकर प्रेम घटता नहीं, गुण देखकर बढ़ता नहीं। घटना-बढ़ना प्रेमका स्वभाव ही नहीं है। साधकके जीवनमें वह क्षण-क्षण बढ़ता जाता है और सिद्धके जीवनमें एकरस रहता है। प्रेममें जीने-मरनेका कोई अर्थ ही नहीं है। सोना और जागना एक है। हँसना और रोना विवर्त्त है (बाहरी वस्तु है)।

एक बुढ़ियाको सन्त सद्गुरुने बालगोपालकी गोल-मटोल काली-काली मूर्ति दे दी और कह दिया कि इसको अपना बच्चा समझकर पूरे प्यारसे लालन-पालन करना। वह माई अनुरागमें भरकर कभी अपने प्यारे प्यारे नन्हें-से गोल-मटोल गोपाल को हिण्डोलेमें पौढ़ाकर झुलाती, लोरी गाती, गोदमें सुलाती, तरह-तरहसे लाड़ लड़ाती और मङ्गल मनाती रहती। एक दिन गाँवके बालकोंने हँसी-हँसीमें कह दिया—'अरी मैया, इधर एक ऐसा भेड़िया आ गया है जो बच्चोंको उठा ले जाता है।' यह सुनकर मैया डर गयी और ठाकुरजीको कुटियामें विराजमान कर दिया और खुद लाठी लेकर दरवाजेके बाहर डट गयी। पाँच दिन, पाँच रात पहरा देती रही। उसका यह भोरा-भारा प्रेम देखकर प्रभुके मनमें आया कि इसका यह मीठा-मीठा भाव मैं चखूँ। ऐसी मैया तो मेरी होनी चाहिये। वे परम सुन्दर रूप धारण करके सुन्दर वस्त्राभूषणोंसे बनठनकर मुस्कराते हुए उसके सामने आये। पाँवकी आहट सुनकर ही मैयाको डर लगा कि कहीं भेड़िया न आया हो। उसने लाठी उठायी। श्यामसुन्दरने

कहा—मेरी प्यारी मैया ! मैं वही बालक हूँ जिसकी तुम रक्षा करती हो।

माईने डाँटा—चुप ! फिर ऐसी बात जबानपर मत लाना। तुम उसके बराबर नहीं हो सकते। तुम्हारे जैसे सैकड़ों चमकने उसपर न्यौछावर कर दूँ।' प्रभु प्रसन्न हो गये। बोले—'अरी मैया, मैं त्रिलोकीनाथ भगवान् हूँ। मुझसे जो चाहो माँग लो।'

माईने कहा—तब मैं आपको सौ-सौ प्रणाम करती हूँ आप कृपा करके मुझे यह वर दीजिये कि मेरे प्राणप्यारे लालनको भेड़िया न चुरा सके।

प्रभुने कहा—तुम अपने बच्चेको लेकर मेरे धाममे चलो वहाँ कभी भेड़िया आनेका डर नहीं है।' उसको अपनी मां बनानेके लालची प्रभु इस प्रकार फुसलाकर अपने श्रीगोलोक-धाममें ले गये। सुषमासदन, सौन्दर्यमाधुर्यलावण्यनिधि श्यामसुन्दर स्वयं उसके सामने प्रकट हुए परन्तु माईका मन अपने गोल मटोल गोपाललालसे नहीं हटा। यहाँ शुद्ध प्रेमका स्वरूप है।

प्रश्न—परमपूज्य श्रीस्वामीजी ! उत्कण्ठाका क्या स्वरूप है ?

उत्तर—उत्कण्ठा दो प्रकारकी होती है—एक तो प्रथम मिलनेके पूर्व नाम, गुण, रूप, शील, स्वभाव, वंशीध्वनि, चित्रपट आदि देख सुनकर प्रियतमके मिलनकी उत्सुकता और दूसरी एकबार या अनेकबार मिलन हो जानेके बाद प्रियतमसे मिलनेके लिये व्याकुलतापूर्ण आकांक्षा, आशा,

विश्वास, पूर्ण प्रतीक्षा और प्राणोंका कण्ठमें लग जाना, दिलका आँखमें आ जाना।

आज श्रीरामचन्द्रके वनवासका चौदहवाँ वर्ष पूर्ण हो गया है। श्रीअयोध्यामें पुरजन, परिजन, रनिवास, भाईबन्धुके सहित श्रीभरतलालजीका हृदय आशा-निराशाके झूलेमें सुख-दुःखके झोंके खा रहा है। इसी समय हनुमानजीके द्वारा पुष्पकविमानसे लक्ष्मण सहित युगलसरकारके आनेका सम्वाद मिलनेपर ऐसी उत्कण्ठा बढ़ी कि चौदह वर्ष बिता लेनेके बाद यह घड़ी दो घड़ी काटना भी कठिन होगया। बिछोहकी पीड़ा है, मिलन सम्वादका हर्ष है; मिलनकी प्रतीक्षा है, परन्तु चैन नहीं है। छतपर चढ़कर दूरतक देखते हैं, जङ्गलोंकी ओर भागते हैं। बिछोह पीछे छूट रहा है और मिलन आगेसे आ रहा है। दोनोंकी सन्धिमें उत्कण्ठाका निराला ही दृश्य है। किसी उत्कण्ठावान्‌के दिलसे अपना दिल मिलाकर उसका अनुभव करना चाहिये।

प्रश्न—ईश्वर अपने प्यारे भक्तोंको किस प्रकार सम्भालते हैं?

उत्तर—तीन प्रकार।

(एक) जैसे गाय अपने मैल लगे हुए बच्चेको चाटती है, जीभर दूध पिलाती है; वैसे ही भगवान् अपने मैले कुचैले भक्तके अपराधोंको भी अपना भोग्य बना लेते हैं और अपने सम्बन्धमें की हुई उनकी प्रत्येक लालसा पूर्ण करते हैं।

(दो) जैसे बिल्ली अपने बच्चेको मुखमें लेकर सुरक्षित स्थानपर पहुँचाती है; वैसे ही भक्तोंकी इच्छा न होनेपर भी

भगवान् उन्हें दुःखसे बचाकर सुख पहुँचाते हैं।

(तीन) जैसे वानरी अपने बच्चेको हृदयसे लगाये रखती है, वैसे ही प्रभु अपने भक्तोंको अपनी गोदमें रखते हैं।

प्रश्न—'सच्चे साईं' ! श्रीकौशल्या, श्रीयशोदा.श्रीदशरथ और श्रीनन्द तो नित्य हैं; फिर यह वर प्राप्त करने वाले मनु, द्रोणवसु, शतरूपा, धरा आदि कौन हैं ? फिर इनको भगवान्‌को पुत्ररूपमें प्राप्त करनेका सौभाग्य कैसे मिलता है ?

उत्तर—जो नित्य हैं, वही वरप्राप्त करने वालोंके हृदयमें प्रवेश करते हैं। तभी उन्हें लीलाका वह अधिकार प्राप्त होता है।

प्रश्न—बावल साईं ! मैयाने तो श्यामसुन्दरको ऊखल से बाँध दिया और रतिवन्तीने सुनते ही प्राण छोड़ दिये, तो प्रेम किसका अधिक हुआ ?

उत्तर—मैया यशोदा रतिवन्ती जैसी प्रेमकी कोटि अवस्थाओंसे परे है। लीलाके लिये विशाल हृदयकी आवश्यकता है। अगर पद-पदपर व्याकुल हो जायँ तो लीला का आनन्द कैसे बने ? मैयाका हृदय रतिवन्तीसे कोटिगुना अधिक प्रेमपूर्ण है।

प्रश्न—प्यारे साईं ! यदि ऐसा प्रेम था तो मैयाने श्यामसुन्दरको बाँधा क्यों ?

उत्तर—जब उन्होंने ईश्वरता दिखायी तो बाँधे गये। वात्सल्यरसकी अधिष्ठात्री मैयाके सामने ईश्वरता दिखाना,

अपनी हेकड़ी जताना, 'मैं विश्वरूप हूँ' तेरी रस्सीमें नहीं वँध सकता' यह कोई भले बालकका काम थोड़े ही है। मैया तो सचमुच ही उनको अपना बालक मानती है। उसका भाव पूर्ण है, परन्तु श्रीकृष्ण चूक गये। ईश्वरता दिखाने लगे, तब मैयाने ईश्वरताको ऊखलसे वाँध दिया। श्यामसुन्दरने भी मैयाके पूर्ण भावके सामने अपनी अपूर्णता दिखानेके लिये वन्धन स्वीकार किया।

प्रश्न—गरीब निवाज! सविशेष, निर्विशेष आदि ज्ञानकी बातें भक्तोंको भी जानना जरूरी है क्या ?

उत्तर—बिलकुल नहीं। भोलापन ही भक्तका स्वरूप है। भोलेके लिये प्रभु भी भोले होकर अपनी सर्वज्ञता छोड़ देते हैं। करमा बाई लगातार पचास वर्षतक प्रतिदिन खिचड़ी खिलाती रही। जब वह श्रीगोलोकधाम चली गयी, तब भी कई दिनों तक वे उसके दरवाजे पर आकर 'मां! मां! मुझे खिचड़ी' दो—ऐसा पुकारते थे।

जनाबाईका पल्ला पकड़कर नन्हा-सा विट्ठलनाथ चलता था और वह मधुर स्वरसे 'अरे आओ विट्ठल! आओ विट्ठल! कहती चलती थी।

रांका बांकाका प्रभुमें अत्यन्त मधुर भाव था। एक दिन नामदेवजी उसकी कुटियाके पाससे जा रहे थे तो भीतरसे बहुत सी मीठी मीठी बातें आ रही थीं। उन्होंने छिपकर देखा कि नन्हेंसे श्यामसुन्दर उसकी गोदमें बैठे हैं और धीरे-धीरे कुछ कह रहे हैं।

श्यामसुन्दर—देखो बाबा! आज मेरी कमरमें कैसा घाव हो गया है ? दर्द हो रहा है।'

रांका—क्यों बेटा ?

श्यामसुन्दर—आज मुझे नामदेवके कारण कमरमें रस्सी डालकर मन्दिरको फिराना पड़ा।

बांका—ईश्वर तुम्हारी रक्षा करे बेटा ! यह नामा बहुत निष्ठुर और कठोर हृदय है। उसको इतना सोचनेकी भी बुद्धि नहीं है कि नवनीत-सा कोमल, कुसुम-सा सुकुमार कन्हैया ऐसा कठोर काम कैसे करेगा ? बेटा ! तुम उसकी ऐसी बात मानते ही क्यों हो ?

श्यामसुन्दर—क्या करूँ बाबा, वह तो बार-बार रोता, चिल्लाता, पुकारता था।

बाँका—नामा कभी मुझे मिल जाय तो ठीक कर दूं। मेरा भोला-भाला बच्चा ऐसा कठोर काम क्या जाने ?

इतनेमें राँका हल्दी तेलका हलुआ ले आयी और ठाकुरको अपनी गोदमें सुलाकर सेंकने लगी। ठाकुरजी बार-बार कराहते 'ओह, ओह, धीरे ! धीरे !!" रांका बाँका कभी नामदेवको कोसते, कभी श्यामसुन्दरको हृदयसे लगाकर चूमते, आशीर्वाद देते।

यह अद्भुत दृश्य देखकर नामदेवजी आश्चर्यचकित हो गये और अन्दर जाने लगे। ठाकुरजी दूसरा रूप धारण कर बाहर निकल आये और रोककर बोले—"ठहरो, ठहरो ! अन्दर मत जाओ। वे इस समय गुस्सेमें हैं। तुम्हें कच्चा चबा जायँगे बेटा !

नामदेवजी बोले—आप उनके साथ यह क्या नखरा कर रहे हो ?

प्रभुने कहा—जो भक्त जिस भावसे मुझे प्यार करता है, उसके लिये मैं वैसा ही बन जाता हूँ।

श्रीजानकीजीकी तन्मयता

"विना कारण कृपालु साईं!" नहरके तटपर जमे हुए सत्सङ्गमें इस प्रकार सम्बोधन करते हुए भक्तने कहा—श्रीगोस्वामी तुलसीदासजीका महाराज रामचन्द्रमें कैसा अगाध अनुराग है? वे झूम-झूमकर सूरदासके भावमें गा रहे हैं—'मोहिं तो सावनके अन्धहिं ज्यों सूझत हरो-हरो।' उनकी रग-रगमें, रेशे रेशेमें, दिल-दिमागमें प्रभुका साँवलापन भर गया है।"

श्रीभक्तकोकिलजीने अञ्जीरकी वृक्षावलीको अशोकवन देखते हुए भावमग्न होकर कहा—'एक ऐसे सन्त शिरोमणि हैं जिनके रोम-रोममें, रेशे-रेशेमें दिल-दिमागमें साँवरापन न समाकर बाहर छिटक जाता है और हरियाली कर देता है, जिसे बहिर्मुख लोगभी प्रत्यक्ष देखते हैं। बताओ वह सन्तशिरोमणि कौन हैं?'

श्रीभक्तकोकिलजीके सत्सङ्गमें ऐसा होता है कि एक सत्सङ्गीने अपने मनमें किसी भक्तका नाम लिया और दूसरे सत्सङ्गीसे पूछता है कि मेरे मनमें किसका नाम है? तुलसी, सूर, मीरा, कबीर आदि भक्तमालके नाम लेते हुए किसीने बूझ लिया तब तो ठीक है, नहीं तो पहेली बुझाने वालेको ही बताना पड़ता है। इससे अनेक सन्त और साथ ही उनके चरित्रका स्मरण हो आता है।

जब श्रीभक्तकोकिलजीने पूछा कि ऐसा सन्त शिरोमणि कौन हैं, तब किसीने श्रीमहाप्रभु, किसीने श्रीजयदेव, किसीने

श्रीहितहरिवंशजी और किसीने श्रीहरिदासजीका नाम लिया। श्रीस्वामीजीने कहा—'ना' अभी और है। इनसे भी बड़ा है, इनसे भी बड़ा है।' भक्तोंने कहा—'तब कौन है ? कृपा करके आप ही बतलाइये प्रभु !' भक्तोंका प्रेमपूर्ण आग्रह देखकर श्रीस्वामीजीने कहा—कि यह सन्तसिरताज श्रीमैथिलचन्द्रजी महाराज हैं। अशोकवाटिकामें अशोकवृक्षके नीचे श्रीस्वामिनीजू सशोक विराजमान थीं। कोक शोकप्रद चन्द्रमाकी चाँदनी छिटक रही थी। उसी समय लोकशोकहारी 'श्रीरामदशरथ नन्दन' अङ्कित परम प्रकाशमयी मुद्रिका आ गिरी। श्रीस्वामिनीजूने पहिचानकर हस्तकमलमें ले लिया और प्रियतमका नाम चूम-चूमकर पूछने लगीं 'अयि मुद्रिके ! लक्षणनिधि, निष्कपट देवर लक्ष्मणके सहित श्रीराम पदाम्बुज सकुशल तो हैं ?' ऐसा कहते कहते जो मुद्रिकाकी ओर देखा तो उसमें अपना प्रतिविम्ब दिखायी पड़ा। भोले स्वभावसे उनके हृदय में इस भावका आविर्भाव हो गया कि प्राण प्यारे श्रीकौशल-किशोर ही मेरे विछोहमें मेरा ध्यान करते-करते मेरे रूप बन गये हैं। इसलिये मैं भी ध्यान करके श्रीराम बनूँ। झट परा-स्थानमें दृष्टि की। प्रियतमके ध्यानावेशमें धनुषधारी निर्भय श्रीरामचन्द्ररूप हो गयीं। सम्पूर्ण अशोक वाटिका इन्द्रनील-मणिके समान नीले आलोकसे उद्भासित हो उठी। इतनेमें भक्तविभीषणकी प्रियपत्नी शरमा अपनी बेटी कलाके साथ वहाँ आयीं। उन्होंने अशोकवाटिकाको नीलद्युति देखकर समझ लिया कि सतीगुरु श्रीजानकीजी श्रीरघुनाथका ध्यान करके तद्रूप हो गयी हैं। समीप आकर नमस्कार पूर्वक विनोद

पूर्ण प्रार्थना करने लगी—'श्रीस्वामिनीजू,मुझे यह भय होता है कि आप प्रियतम रामका ध्यान करके कीट-भृङ्गके समान श्रीरामरूप हो गयीं। अब परस्पर दाम्पत्य प्रीति कैसे बनेगी ?'

श्रीस्वामिनीजीने कहा—'अरी शरमीली सखि, सुन ! वे मेरा ध्यान करके मैं बन जायँगे। दाम्पत्यप्रीति बनी रहेगी। मैं धनुष धारण करके दुरात्मा दशाननका दमन करूँगी।

रसिक सिरताज मिथिला अवध-हृदयके महाराज युगलसरकारका ऐसा विलक्षण अनुराग है, उनके ध्यानकी हरियाली हृदयमें न छिपकर बाहर ऐसी छा जाती है कि उसे दूसरे भी देख सकते हैं।

करांचीमें सत्सङ्ग

एकबारकी बात है,श्रीभक्तकोकिलजी प्रातःकाल करांचीके एक बगीचेमें टहल रहे थे। एक भिखारी अवधकी युगल-सरकारका नाम जप रहा था। स्वामीजीका युगलसरकारके नामके प्रति बड़ा ही आदर अदब और अनुराग था। वे कहते थे—'युगलसरकारके नाम जपनेका हर एक को अधिकार नहीं है। इसके लिये हृदयका गहरा हृद निर्मल अनुराग-जलसे लबालब भरा होना चाहिये।'भिखारीके मुखसे युगलनाम सुनकर श्रीस्वामीजी उसके पास आये, मिठाई दी और बोले कि 'इस नामसे तुझे क्या मिलेगा ? जिसका नाम तू ले रहा है, वे खुद ही वन-वन डोलते, फल-फूल खाते फिरते

रहते हैं। वे तुम्हें क्या निहाल कर देंगे ? उन्हें तो आशीर्वाद दो कि वे सुखसे रहें। 'हरि नारायण' 'हरि नारायण' कहो ! वे विश्वम्भर हैं, तुम्हें भी भर देंगे।' तबसे वह भिखारी 'हरि नारायण' 'हरिनारायण' जपने लगा।

श्रीभक्तकोकिलजीको करांची शहर बहुत प्यारा लगता था। क्यों न हो ? नीला-नीला विशाल समुद्र जो श्रीलक्ष्मीका पिता एवं भगवान्‌का श्वसुर है अपनी तरल-तरल तरंगोंसे उसके पाँव पखारता रहता है। जिस समय भुवन-भास्कर सूर्य भगवान्‌से मिलनेके लिये समुद्रमें प्रवेश करने लगते हैं, उस समय अपनी अनुरागमयी रक्तरश्मियोंका गुलाल इस प्रकार बिखेर जाते हैं कि जिसकी आँखमें वह पड़ा, हमेशाके लिये एक दाग छोड़ जाता है।

कैलासके उत्तम शृङ्गपर स्थित मानसकी बेटी सिन्धु नदी भी मनोवृत्तियोंके प्रवाहके समान बहती हुई करांचीके पार्श्वमें ही समुद्रस्थित नारायणका चरण चुम्बन करती है। सरदी और गरमी अधिक न पड़नेके कारण वहाँका सम मौसम समतावान महात्माओंको भी अपनी ओर खींच लेता है।

गरमीके दिनोंमें श्रीभक्तकोकिलजी प्रायः वहाँ जाकर रहते थे। समुद्रके तटपर टहलते हुये एक दिन भक्तकोकिलजी कहीं जा रहे थे। एक भोला-भाला मनुष्य विस्कुट बेच रहा था। वह कहता जाता था—'विस्कुट बहुत अच्छे ! खानेमें बहुत मजे।' श्रीभक्तकोकिलजीको उसका मधुर स्वर बहुत भाया और चित्त दयासे द्रवित हो गया। सेवकोंसे बोले—'इस

मधुर कण्ठसे यह भगवन्नाम लेता तो पुण्य भी होता और आनन्द भी आता।' उसको पास बुलाकर बहुत-से बिस्कुट ले लिये और उससे बोले—तुम अपनी अमृतभरी रसनासे विषकूट विषकूट' क्यों चिल्लाया करते हो? ऐसा क्यों नहीं कहते कि 'हरिनाम बहुत अच्छा! जपनेमें बड़ा मजा।' वह ऐसा ही करने लगा। लड़के उसके पीछे-पीछे ऐसा ही कहते हुए घूमने लगे। बिस्कुट भी पहलेसे अधिक बिकने लगे और उसपर हरिनामका रङ्ग भी चढ़ गया।

एक दिन बगीचेमें भगवत्-चर्चा हो रही थी। एक मनुष्यने श्रीस्वामीजीसे पूछा कि 'साईं' साहब, आपके सत्सङ्गी लोग भगवान्के लिये रोते क्यों हैं? वे बिछुड़े हुए हैं क्या? श्रीस्वामीजीने कहा—जीव बिछुड़ा हुआ नहीं है सो तो ठीक!परन्तु मेरे प्यारे भाई! मिलनेका भान भी तो नहीं होता जब पहले अपनेको बिछुड़ा हुआ समझेगा तब मिलनेका आनन्द ले सकेगा। जैसे धूपके बिना छायाका आनन्द नहीं आता वैसे ही विरहके बिना मिलनका आनन्द नहीं आता विछोह और मिलाप—यह दोनों भक्तकी अवस्था है। भगवान् हैं ऐसा तो सभी मानते हैं; परन्तु उसमें मजा क्या है? जब मिलनेकी व्याकुलता हो, मिलनेका अनुभव हो तभी तो मजा है। किसीने सुन लिया कि दीवारके पीछे सोनेका पहाड़ है। इससे क्या होगा? उसे व्याकुल होकर प्राप्त करना चाहिये न?

प्रश्न—सदा दयाल साईं! अपने सद्गुरुके सेवकोंमें क्या भाव रखना चाहिये?

उत्तर—अपनेको सबसे छोटा सबका बेटा समझे। सबको बड़ा मानकर भय-अदब रखे और नम्रताके साथ आज्ञा पालन करे।

प्रश्न—जीव ईश्वरके भरोसे चुपचाप बैठा रहे तो क्या प्रभु उसका पालन-पोषण करेगा?

उत्तर—कोटिड़ीमें भक्तभगवान् नामके एक रुद्-गृहस्थ सन्त रहते थे। उनके हृदयमें प्रभुके प्रति अखण्ड विश्वास था। दिनमें जो वस्तु उनके पास आती उसको रात्रि के पहिले ही वे खर्च कर देते थे। यहाँ तक कि पानी भी फैला देते थे। एक दिन उनकी स्त्रीके पेटमें दर्द हुआ। संतने कहा-सच सच बताओ कुछ संग्रह किया है क्या? स्त्री ने स्वीकार किया कि मैंने बच्चोंके लिये आठ आने पैसे छिपाकर रखे हैं। संतने तुरन्त उन्हें निकाल फेंकनेके लिये कहा। वैसा करनेपर पेटका दर्द दूर हो गया। संतका कहना था कि संग्रह न करने पर दुःख आ ही नहीं सकता।

दृढ़ विश्वास करके भजनमें लग जाना चाहिये। विश्वास करना भी एक काम है। जो कि और कामोंसे कठिन है और जिसको सब लोग नहीं कर सकते। एक मजदूर पत्थर कूटनेका काम करता था। एक दिन किसी पत्थरके अन्दर जिसमें कोई सूराख नहीं था, एक कीड़ेको मुँहमें चावल लिये देखा। उसके आश्चर्यकी सीमा न रही। वह बोला—कृपालु विश्वम्भर! तुम्हारी जय हो! जय हो!! उसके अन्तःकरणमें विश्वासका उदय हुआ— जो पत्थरके

अन्दर गड़े कीड़ेको भोजन देता है वह परवरदिगार क्या मुझ बंदेकी परवरिश नही करेगा!" वह मस्त हो गया कीड़ेको जैसे मुझे भी वैसे' बस यही बात उसके मुखसे निकलती। ईश्वर की कृपाका ऐसा नशा हुआ कि जिन्दगी भर न उतरा। लोग भोजन लिये उसके पीछे पीछे फिरा करते।

प्रश्न—मीठे मालिक ! जीव ईश्वरके घर कैसे पहुँचे ?

उत्तर—जबतक जीव व्याकुल होकर ईश्वरके चरित्रमें डुबकी न लगावेगा तबतक ईश्वरके घरकी झांकी न देख सकेगा। जैसे तागेको कोमल करके सुईमें पिरोते हैं, वैसे ही विरहभावनासे मनको कोमल करके ईश्वरमें लगाना चाहिये। ईश्वरके लिये व्याकुलता अनायास ही संसार को छुड़ा देती है और मन प्रियतम के पास रहने लगता है।

प्रश्न—दीनवत्सल स्वामी ! ज्ञान—समाधि और प्रेम-समाधि में क्या अन्तर है ? दोनों में कौन श्रेष्ठ है ?

उत्तर—ज्ञानकी तन्मयता उसे अपनेमें मिलाकर होती है और प्रेमकी अपनेको उसमें मिलाकर होती है। ज्ञानमें अपने सिवाय कुछ नहीं और प्रेममें उसके सिवाय कुछ नहीं। गुरुओंके गुरु यशोदानन्दन भगवान् कहते हैं कि प्रेमी भक्त मुझे ज्ञानियों से भी अधिक प्यारे हैं। सच्ची बात है वे आत्मसुख के लिये सेवा जो करते हैं, परन्तु मेरे सच्चे बच्चे प्रेमी, कच्चे ज्ञानियोंकी तरह खिलौनों में न रीझकर मुक्ति-युक्ति से खीझकर केवल मेरा सुख, मेरी कुशलता, मेरी सेवाभर चाहते हैं, और इसके लिये

पशु, पक्षी, भूत-प्रेतादि योनियों में भी जाने से नहीं झिझकते। वे हैं मेरे अविचल प्रेमी, मेरे अनुरागके रंगमें रंगे हुए, उमंगसे फूले हुए, रस-रंगमें डूबे हुए, भक्ति-भंगके नशेमें झूमते हुए मेरे भक्तराज कितने प्यारे प्यारे भोलेभाले होते हैं, एक-एक भक्त के एक-एक भाव पर मैं तो लाख-लाख बार न्योछावर जाऊँ, देखता ही रहूँ. कैसी प्यारी झाँकी है। चित्त को मेरे चरणोंमें लगाते हुए, नेत्रोंसे प्रेमरस बर्षाते हुए, रस-भरीरसना से मेरे गुण सरसाते हुए, अनुरागकी रंगीन भाव रश्मियोंसे मुझे भी चमकाते हुए ये मेरे भक्तराज हैं। क्या अनोखी अदा है। कभी लाज छोड़कर नाचते हैं, कभी आँख मींच सावधान हो बैठ जाते हैं, कभी हँसते हैं, कभी रोते हैं, कभी पुकारते हैं, कभी मौन हो जाते हैं, कभी नाचते हैं, कभी अचल हो जाते हैं। बलिहारी जाऊँ उनकी आँखकी मटकन पर। नाचते समय पाँवकी थिरकन, कमर, कंठ और सिर की हिलन हाथों से भाव बताना सुरीले कंठसे गाना मेरे दिलमें गुदगुदी पैदा कर रहा है। यह लाज छोड़कर सबसे मुँह मोड़कर जगका नाता तोड़कर आँखोंसे आँख जोड़कर कौन हैं जो मुझे भी प्रेम-परवश बना रहे हैं? अवश्य ही इसको किसी संत-सद्गुरुका आश्रय प्राप्त है। ये मेरे पूरन प्रतापको जानकर भी अनजान हैं। भोले बालककी तरह भक्ति-रानीकी गोदमें बैठकर मचल रहे हैं। मेरे लिये ललक रहे हैं। अपने कोमल हृदयका स्पर्श देकर मुझे सुखी कर रहे हैं। इनके मनमें नया रंग है नयी उमंगहै, लालसा है अभिलाषा है किसके लिये? मेरी प्रीतिके लिये, सुखके लिये, कुशलताके लिये, सेवा के लिये। ये जब दर्दभरे

दिलसे गद्-गद् कंठसे मेरे दुःखके दिनोंके गीत गा गाकर व्याकुल होते हैं तब मैं आश्चर्यचकित हो जाता हूँ, उसके स्मरणसे इनको जितना दुःख होता है उसके अनुभव कालमें भी मुझे इतना दुःख नहीं हुआ। ओ हो, मुझसे इनकी इतनी प्रीति है। यह प्रेम की टेढ़ी-मेढ़ी गह्वर गली में घूम रहे हैं। मेरे सुखमय समय को देखकर हर्ष से फूल उठते हैं। वे लाज छोड़कर अगाध अनुरागकी नदीमें डूबकर नाचते हैं और मुझे हिंडोले में बैठाकर रंगा-रंगी झौंटा देते हैं और लोरी गाते हैं कभी मिश्री दूध पिलाते हैं। इन प्रेमी भक्तों की चरण-रज से अमित-भुवन पवित्र होते हैं। मेरी प्यारी भक्तिमहारानी के भोले-भाले बच्चे मुझे जैसे प्यारे लगते हैं, वैसे मेरी नाभि-कमल से उत्पन्न ब्रह्मा भी नहीं, कल्याणकारी ज्ञानगुरु औढरदानी शंकर भी उतने सुखकर नहीं हैं। कमलालया शुभलक्षणा लंकृता श्रीलक्ष्मी प्यारी भी उतनी मनहारी नहीं है। और तो क्या कहूँ सदा सुखरूप, सच्चित्‌रूप सहजानन्द स्वरूप आत्मा भी भक्तों जितना प्यारा नहीं लगता। मीठी-मीठी आवाजवाले, विरहलीलासे व्यथित और विद्धप्राण वाले प्रीतिपंकमें फँसे भक्त मुझे प्यारे-से-प्यारे लगते हैं। कुररीकी भाँति व्याकुल इन दासोंका जो दास नहीं है वह मेरा दास नहीं है। जो मेरे दासों का दास है वही मेरा सच्चा दृढ़व्रती दास है।

भक्तोंका मैं प्राण हूँ तो भक्त मेरे प्राण हैं।
मैं भक्तोंकी शान हूँ तो, भक्त मेरी शान हैं॥

प्रश्न—परमकृपालु प्यारे साईं! यह संसार असत्य है, ऐसा निरूपण आप क्यों नहीं करते ?

उत्तर—जबतक यह संसार, इसका जीवन, इसकी जानकारी, इसका सुख प्यारेसे अलग, प्यारेके सम्बन्धसे रहित मालूम पड़ता है तभीतक इसको असत्य कहनेकी जरूरत रहती है। जब इसके कण-कणमें, ज़र्रे-ज़र्रेमें श्रीप्रियतमकी ज्योति जगमगा रही है, उन्हींकी चमकसे सब चमक रहा है, वे स्वयं ही अपना सुख, आनन्द सबके अन्दर उँड़ेल रहे हैं, उनसे ही सब सराबोर हैं वे ही अपने प्रेमोद्यानमें रसमयी, मधुमयी, लास्यमयी क्रीड़ा कर रहे हैं तब इसको असत्य कैसे कहूँ ? श्री गुरुसाहब को क्या अनुभव हो रहा है—"आपु सत्त कीया सब सत्त।"

प्रश्न—श्रीमहाराजजी, आप फ़रमाते हैं कि अपने इष्टमें निष्काम बुद्धि रखो और आवश्यकता हो तो और देवताओंसे प्रार्थना कर माँग लो इसका क्या अभिप्राय है?

उत्तर—हमने यह अच्छी तरह सोच समझकर देखा है कि यह असमर्थ जीव कादर चित्त और कमज़ोर दिल है। दुःखमें इसे कोई-न-कोई पुकारनेकी जगह ज़रूर चाहिये। अगर इसके सभी रास्ते बन्द होंगे तो यह निष्काम भक्तिमार्गपर नहीं चल सकेगा। जब चलते-चलते इसका प्यार प्रियतममें गाढ़ हो जायेगा तब इसे कोई दूसरी इच्छा नहीं रहेगी। फिर अपने आप पूर्ण निष्काम हो जायेगा. सबकुछ प्रियतमके लिये चाहेगा।

प्रश्न—मेहरबान मालिक; आप कृपा करके कहते हैं—और वस्तुओंकी कामना की तो बात ही क्या प्रेम-प्राप्तिकी कामनासे भी प्रियतमका नाम नहीं जपना चाहिये; परन्तु युगलका नाम जपनेसे ही तो प्रेमका उदय होगा।

उत्तर—प्रेमप्राप्तिकी कामना भी एक कामना है। आज नामसे प्रेमप्राप्तिकी कामना है तो कल नामीमें हो जायगी। भक्तिपथके पथिकको यह ध्यान रखना चाहिये कि अपने सुख और शान्तिकी कामना लेशमात्र भी न आने पाये। हर समय युगल नाम नहीं जपना चाहिये। जब प्रेमावेशमें द्रवित होकर मन बाहरी वस्तुओंको भूल जाय तब युगल नाम जपना चाहिये। यह नाम जपनेका अधिकार परिकर-समाजको ही है। जब उनके दिलसे दिल मिल जाय तब युगल नाम जपनेका अधिकार प्राप्त होता है। अर्थ, धर्म, काम तथा मोक्षकी इच्छा से और दस अपराधोंसे रहित होकर आर्द्र चित्तसे बालककी भाँति भोले-भाले हितसे युगल नाम 'श्रीसियाराम' का उच्चारण करे। तन, मन, वचनकी पवित्रतासे श्रीजानकीचन्द्रके नाम सहित श्रीराघवेन्द्रका नामोच्चारण करनेसे कृपासिन्धु श्रीरघुनाथजी प्रसादपूर्ण दृष्टिसे भक्तकी ओर देखते हैं और उसको अपने प्रेमतरङ्गित उत्सङ्गमें बैठाकर नयी-नयी उमङ्गके रंगमें रँगे हुए छत्तीसों प्रकारके व्यञ्जन खिलाते हैं। भुशुण्डि रामायणमें श्रीरामचन्द्रजी महाराज परमानन्दकन्द श्रीजानकीचन्द्रसे कहते हैं— जो भक्त सखीभावको प्राप्त होकर स्नेह, वात्सल्य, कृपा

करुणापूर्ण व्यथित हृदयसे आपका स्मरण करके कुशल कल्याण मनाते हैं, आशीर्वाद देते हैं उस परम प्रिय भक्तके भाग्यकी प्रशंसा मैं स्वयं,भाई भरत, लखनलाल, शत्रुसूदन और केशरीकिशोरको हर्षोल्लाससे फूल-फूलकर सुनाता हूँ। वह सुकृतिशिरोमणि धन्य है जो अपने हृदयके भावको, स्नेहस्मरण को फणि-मणिके समान गुप्त रखकर आपके नामका आदर करता है, मैं उसके हाथका जूठा ग्रास भी छीनकर खाता हूँ।

स्वामिनी श्रीपार्थिविचन्द्रके कृपाकटाक्षसे रसिक सन्त मुग्धा परा प्रीति प्राप्त करके श्रीवैदेहीजी के नामका मङ्गलमय महागुप्त माहात्म्य समझते हैं।

प्रेमावेश और श्रीकुशदर्शन

एक बार श्रीस्वामीजी सत्सङ्गसमाजसहित स्नान करने के लिये समुद्रके तटपर पधारे। नीली नीली अनन्त जलराशिको हिलोरें लेते देखकर उनके हृदयसमुद्रमें भी भावकी लहरियाँ उठने लगीं। समुद्रकी अतल जलराशि जैसे पातालका स्पर्श करती है, वैसे ही श्रीजनककुमारीजीका पाताल-प्रवेश स्मरण हो आया, और अपनी प्यारी माता श्रीसीताजी के विछोहमें कुमार लवकुशकी व्याकुलता आँखोंके सामने प्रत्यक्ष होगयी श्रीस्वामीजीने देखा कि बहुत

देरतक खेल खेलनेके वाद श्रीलवकुशकुमार महलमें आये। उस समय उन्हें भूख लग आयी थी। अपनी जननीकी स्वर्णमयी प्रतिमाको देखतेही उन्हें ऐसा मालूम पड़ा, मानो यह साक्षात् उनकी मां हो। उन्होंने मां का पल्ला पकड़ लिया, मचल मचलकर भोजन मांगने लगे। रोते रोते उनके नेत्र लाल होगये। वे कहने लगे—'मां! मां! हम भूखसे व्याकुल होरहे हैं। अपनी गोदीमें विठाकर, अपने स्नेहसे स्निग्ध और करकमलोंके स्पर्शसे मधुर ग्रास हमारे मुखमें डालो। तुम्हारे सिवाय हमारा और कौन है मां।' कुछ उत्तर न मिला। उनके ही शब्दोंकी प्रतिध्वनि उस विशाल मन्दिरमें डरावनी मालूम पड़ने लगी। वे गायसे विछुड़े हुए बछड़ोंके समान फफक फफककर रोने लगे और अञ्जलि वांधकर अपनी स्नेहमयी जननीको मनाने लगे—"मां! हमसे क्यों नाराज हो? हम आपकी आज्ञाके बिना खेलने चले गये और बहुत देर लगायी इसीसे नाराज हो? मां! अब हम फिर कभी ऐसा नहीं करेंग। हमारी सहज दयालु मैया! अपने हृदयमें अपने नन्हें नन्हें शिशुओंके अपराध न गिनो! न गिनो! क्षमा करो! हम आपके कृपा-प्रसाद—वात्सल्यके ही भूखे हैं। अपने स्नेहकन्द, वात्सल्यरज्जु कमलकोमलकरोंसे बाँधकर हमें अपने वक्षस्थलमें छिपा लो मां! हमारे सिरपर अपने अभयदानी करकमलोंको फेरो। बोलो मां! बोलो!! अपने लवकुशसे बोलो! अपने सुधापगे वचनसे हमें 'दुलारे! प्यारे! लाड़िले लाला!' कहकर सम्बोधित करो। तुम्हारे मीठे वचन सुननेके लिये हमारे कान कातर होरहे हैं।" इस प्रकार कहते हुए

दोनों सुकुमार कुमार मातृ-प्रतिमाके चरणोंमें चिपट गये 'मां ! मां !' की आर्तध्वनिसे सारा राजमहल गूँज उठा। उर्मिला आदि देवियां दौड़ आयीं। दोनो लालोंको गोदीमें लेकर धैर्य-धारण कराने लगीं।

सचेत होनेपर माताके पाताल-प्रवेशकी घटना स्मृति-पटपर अंकित होगयी। वे अत्यन्त अधीर होकर पृथ्वीको कुरेदने लगे—'देवि वसुन्धरे ! तुम तो हमारी मांकी भी मां हो ! हमारी प्यारी जननी को तुमने कहां छिपाया है ? हम बच्चोंको क्यों तड़पा रही हो ? हमारा जन्म हुआ वनमें, बचपनमें पिताके लाड़-प्यार, स्नेह-वात्सल्यसे वञ्चित रहे। जब हमारी वह साध पूरी होनेपर आयी, तब हम अपनी माताके दुलारसे वञ्चित हो गये। विधाताने हमारे साथ बड़ा अन्याय किया। हाय ! हाय ! आज हम अपनी माताके करकमलोंकी छत्रछायासे दूर हैं।" इस भावके उद्रेकसे विकल होकर श्रीस्वामीजी 'मां ! मां !' पुकारने लगे। आँखोंसे अजस्र अश्रु-धारा वहने लगी। वे भावावेशमें पृथ्वी खोदने लगे और रोते रोते अचेत हो गये। उस समय श्रीकुशकुमार प्रत्यक्षरूपसे प्रकट हुए। उन्होंने श्रीस्वामीजीको सचेत किया। वे बोले—"आप इतने अधीर न हों ! हमतो सदा अपने बाबा और मैयाकी गोदमें बैठे हैं ! प्रसन्न हैं ! सुखी हैं !" तब कहीं जाकर श्रीस्वामीजीका हृदय शान्त हुआ।

सद्‌गुणोंके आगार साईं

अचिन्त्य अनन्त कल्याणगुण-निलय श्रीभगवान्‌की भक्ति जिसके हृदयमें अवतीर्ण होती है, वह समस्त सद्‌गुणोंकी खान होजाता है; क्योंकि उसके हृदयमें भगवान्‌के साथ ही सारे सद्‌गुण भी आकर सदाकेलिये विराजमान होजाते हैं। संसारमें कोई भी वस्तु स्थिर नहीं है। गुण विना आधारके रह नहीं सकते। जब वस्तु स्थिर होती हैं, तब गुण भी स्थिर होते हैं। वस्तु चञ्चल होती हैं तो गुण भी चञ्चल होते हैं। जीवका अन्तःकरण जवतक भिन्न भिन्न विषयोंकेलिये भटकता रहता है; तबतक अन्तःकरणकी चञ्चलताके कारण उसके प्रेम-वैराग्य आदि सद्‌गुणभी काम-द्वेषादि दुर्गुणोंके रूपमें परिणित होजाते हैं; परन्तु वही अन्तःकरण जब संसारसे विमुख होकर भगवान्‌में तन्मय होजाता है, तब काम और क्रोधादि दुर्गुणभी प्रेम-वैराग्यादि सद्‌गुणोंके रूपमें बदल जाते हैं। कहनेका तात्पर्य यह है कि भगवान्‌की भक्ति ही समस्त सद्‌गुणोंकी जननी एवं धात्री है।

भक्त कोकिलजीके जीवनमें सभी सद्‌गुणोंकी अभिव्यक्ति और स्थिति देखनेमें आती है। मानो सारे ही सद्‌गुण अपने

परमाश्रय भगवान्‌को ढूँढते ढूँढते भक्तकोकिलजीके हृदयमें आये हों और अपने जीवनाधारको वहीं पाकर सर्वदाके लिये बसगयेहों। उनमें अभय, अपरिग्रह, दान, दया, अकारणकरुणा, क्षमा, दीनवत्सलता, सहिष्णुता सरलता, नम्रता, सुशीलता, निर्लोभता, निष्कामता, इन्द्रिय-दमन, एकाग्रता, विचार-शीलता, दृढ़ता आदि सद्‌गुण मूर्तिमान् होकर निवास करते थे।

श्रीस्वामीजीको बचपनसेही गरीबोंको दान देनेमें अधिक रुचिथी। वे जब पाँचवर्षके बालक थे, तभी श्रीस्वामी आत्मारामजीके पलङ्गके पायेका ढक्कन उतारकर उसमें से कुछ पैसे ले लेते और गरीब-बालकोंको बाँट देते। जिन दिनोंमें आठोंपहर एकान्त कुटियामें रहकर भजन करते थे और प्रायः नीचे नहीं उतरते थे; उनदिनों भी वे ऊपरसे मुट्ठी भर भरकर गरीबोंके लिये पैसे फेंकते थे और वे उन्हें पाकर हृदयसे आशीर्वाद देते थे। मीरपुरके गरीबोंके घरमें अपने सेवकोंके हाथों आटा, चावल व पैसे भिजवाते तथा कह देते कि अँधेरेमें सबकी नजर बचाकर उनके घरमें रख आओ। जब गरीब लोग अपने घरमें अचानक इन वस्तुओंको देखते तो हर्षसे खिल उठते और ईश्वरसे प्रार्थना करते— 'प्रभो! जिन्होंने हमें इस विपत्तिमें यह सहारा दिया है, उनको सदा तुम प्रसन्न रखना और उनकी आशा-अभिलाषा पूर्ण करना।'

श्रीभक्तकोकिलजी स्वयं अपने हाथोंसे आटा पीसते और उसकी रोटियाँ बनवाकर गरीबोंको देते। श्रीस्वामीजीके

द्वारसे कोई भी मांगनेवाला खाली नहीं लौटता। वे कुछ न कुछ अवश्य देते। जो रोज रोज आते, उन्हें थोड़ा और जो कभी कभी आते, उन्हें अधिक। एकदिन एक गरीब बूढ़ी स्त्री स्वामीजीके पास आई और बोली—'दरवेशसाहब! मेरा बच्चा बहुत कमजोर होता जा रहा है। कोई दवा असर नहीं करती है।' श्रीस्वामीजीने उसे मोतीका बहुमूल्य भस्म दिया, जिसे खाकर उसका बेटा स्वस्थ और मोटा होगया। वह जब भी वैद्यके पास जाती, तब कहती—'दरवेशने हमें जो दवा दी है, वही दो!' वैद्य कहता—'पगली! वह तो सौ रुपयेकी दवा है। सन्त बादशाह हैं, उन्होंने तुम्हें ऐसे ही दे दी।'

श्रीस्वामीजीका यह नित्य नियम था कि जब वे प्रातःकालीन पर्यटन करनेके लिये निकलते, या कभी भी कहीं बाहर जाते तो अपने साथ डलिया भरकर मीठे चावल, गुड़ या मिठाई ले चलते, और मार्गमें जो भी गरीब मिलजाता, उसे दे देते। कोई अत्यन्त दीनहीन दरिद्र मिलजाता तो अपनी आवश्यक वस्तुयें—आसनी, लोटा तक भी दे देते। हर एकके पाँव पड़कर आशीर्वाद लेते। वे वन्दना करते समय मनही मन कहते—'गरीबि श्रीखण्डके प्राणनाथ सद्गुरु वेदवतीके युगल चरण कमलोंका सर्वदा कुशल मंगल कल्याण हो।'

मीरपुरके दरबारमें मीठा कुआं था। गाँवके लोग प्रायः वहाँसे जल भरते थे। दरबार साहबमें लोगोंका आना जाना लगा ही रहता था। सबके पीनेकेलिये जलके बड़े बड़े घड़े भरे रहते थे। भक्तकोकिलजी बड़े सवेरे ही उठकर स्वयं

जल खींचकर उन-घड़ोंको भर देते थे। किसीको इस-बातका पता भी नहीं चलने देते थे। कभी कभी दूसरोंके घड़े भी भर देते थे। मालूम पड़नेपर लोग स्वामीजीसे प्रार्थना करते—'आप यह क्या करते हैं। कृपाकर ऐसा न करें।' इसपर वे कहते—'मैं तो अपना व्यायाम करता हूं।' कभी कभी व्यायामके बहाने, आटा गूँधते और वर्तन भी माँज देते। कभी कभी अपने सेवकोंके साथ रास्ता ठीक करते। यह काम करनेमें वे स्वयं मिट्टी और घास ढो ढोकर गड्ढोंको भरते। सामान्य रूपसे चलते समय रास्तेमें कहीं काँटे, कंकड़, पत्थर दीख जाते तो अपने हाथसे उठाकर उन्हें दूर फेंक देते। उनकी प्रत्येक क्रियाका लक्ष्य विश्वात्मा प्रभुकी सेवा और उन्हें सुख पहुंचाना था। हरद्वारमें हरकीपैंडीके चबूतरपर दोपहरके समय अपने सेवकोंके साथ गंगाजल डालते, जिससे लोगोंको घूमने फिरनेमें आराम हो। बरसानेमें श्रीजीके बगीचेमें जिन वृक्षोंको पानी नहीं मिलता, उनके नीचे खुदाई करते, थाला बनाते और वृक्षोंके नीचे वेदिका बनाते। सेवकोंसे कहते—'प्रतिदिन युगलसरकार विहार करनेके लिये यहाँ आते हैं। वे इन वेदियोंपर बैठकर विश्राम करेंगे।' श्रीअयोध्यामें महलोंके प्रतिबिम्बसे दूसरी अयोध्याके समान बनी सरयूमें प्रवेश करनेके लिये, सुन्दर सोपान बनाते, जिससे युगल सरकारको स्नान करनेके समय सुभीता हो। नामसंकीर्तनकी ध्वनिमें जब सबलोग मस्त होजाते, तब श्रीस्वामीजी दबे पांव आकर बड़ा पंखा उठा लेते और सत्सङ्गियों पर हवा करने लगते।

श्रीस्वामीजी अत्यन्त कृपालु थे। वे सेवकोंकी रहन-सहनपर बड़ी सूक्ष्मदृष्टि रखतेथे और भक्तिमार्गमें उनकी उन्नति—प्रगतिके लिये सावधान रहते। एकबार एक सेवक से संसारी व्यवहारमें कुछ त्रुटि होगयी। सत्सङ्गियोंने नाराज होकर स्वामीजीसे विनती की—'इस दुष्टको सत्सङ्गमें आनेसे रोक दियाजाय।' स्वामीजीने कहा—'इसका दिल साफ है।' परन्तु सेवकोंके बहुत आग्रह करने पर उनकी बात रखली और सत्सङ्गमें आनेसे उसे मना करदिया। उस सेवककी श्रीस्वामीजी पर अतिशय श्रद्धाथी। जब स्वामीजी श्रीराम-बागमें टहलनेकेलिये जाते, तब वह उनके संकेतके अनुसार दीवार फाँदकर उनके पास आ जाता और उन्हें सुन्दर सुन्दर पद सुनाता। श्रीस्वामीजीका कृपालु स्वभाव एवं प्रसन्नता देखकर वह बहुत ही कृतज्ञ होता, और आशीर्वाद देता। जब दूसरे सेवकोंको इसी बातका पता चला, तब वे भी उसे प्यार करने लगे।

एक सेवकको सट्टेमें घाटा होगया। जिनका पैसा उसपर बाकी था, उनके डरसे वह स्वामीजीकी शरणमें आया। स्वामीजीने उसे तीन दिन तक छिपा रखा। बादमें वह रोने गिड़गिड़ाने लगा 'कि अब मैं क्या करूं।' स्वामीजीके कहनेपर उसने फिर कभी सट्टा न करनेकी प्रतिज्ञा की और फिर उनके आदेशानुसार एक साधुसे युक्ति पूछकर रुई खरीदी। घाटा पट गया। सात आठ हजार बच गया।

श्रीस्वामीजी प्रतिदिन आधीरातके समय भजनके लिये उठा करते थे। जब वे देखते कि सेवकोंके शरीरसे ओढ़नेके

वस्त्र हटगये हैं, उन्हें वस्त्र ओढ़ा देते। जिसको वस्त्रकी कमी होती, उसे चुपकेसे अपने वस्त्र ओढ़ा देते।

श्रीवृन्दावनकी बातहै—साईंसाहब एक सेवकके साथ जंगलमें घूमरहेथे। एक सांप निकला। सेवकने उसे मारडाला। एक व्रजवासीने दूरसे यह घटना देखी। वह लाठी उठाकर सेवकको मारने दौड़ा। स्वामीजीने फुर्तीसे सेवकको पीछे ढकेल दिया और स्वयं आगे आगये। हाथ जोड़कर विनयसे बोले—'यह हमारा अपराध है।' व्रजवासीका क्रोध उतर गया। तबसे जब कभी वह स्वामीजीको देखता, प्रसन्नतासे आशीर्वाद देता।

श्रीस्वामीजी गरीब सेवकोंकी सत्सङ्गमें रुचि—प्यास देखकर उन्हें अपने पास टिका लेते। उन्हें खिलाते, पिलाते, पहनाते और पैसे भी देते। उनके संकोचकरनेपर कहते—'तुम्हारे परमपिताने तुम्हारेलिये हमारे पास बहुत धन रख छोड़ा है।'

एक सेवक स्वामीजीके साथ साथ घूम रहा था। उसकी चाल कुछ अटपटी थी। श्रीस्वामीजीने कहा—'तुम चलते समय ईश्वरका नाम नहीं जपते क्या? पावोंकी ध्वनि ऐसे स्वरमें होनी चाहिये, जिसके साथ नामकी ध्वनि मिलती रहे। चलते फिरते भी ईश्वरका नाम नहीं भूलना चाहिये।'

एक सेवकसे श्रीस्वामीजीकी कोई वस्तु खो-गयी। उसे बड़ी व्याकुलता एवं भय हुआ। स्वामीजीने कहा—'दुःखी मत हो! अपनी ओरसे पूरी सावधानीसे वस्तुकी रक्षा करनी चाहिये। इतने परभी वह खोजाय तो ईश्वरेच्छा।' कोई

सेवक अपराध होनेपर हृदयमें पछताता—दुःखी होता तो स्वामीजी बड़े-से-बड़े अपराधकेलिये भी कुछ नहीं कहते। जो कोई अपराधको छोटा समझकर निश्चिन्त रहता तो बिना बताये उसपर नाराज होते। जब सेवक आपसमें धीरे धीरे कानाफूसी करते या संकेतसे बातें करते, तब स्वामीजी सर्वथा मना कर देते कहते—'यह एक प्रकारका कपट है। सर्वदा सरलतासे खुलकर बात करनी चाहिये।' स्वामीजीको चुगलखोर बिल्कुल नापसन्द थे। वे चुगली करनेवालेसे कहते—'अपनी ओर देख!' वे दुःखी एवं बीमारके पास स्वयं आकर बैठते, उसको सान्त्वना देते, आश्वासन देते, धीरज बँधाते और हँसाते-खिलाते। कश्मीरसे लौटते समय एक सेवकको मोटरमें कै होने लगी। श्रीस्वामीजीने उसे अपनी गोदमें सुला लिया और अपने हाथों उसके मुखमें दवा डाली।

एक सत्सङ्गीको किसी पड़ोसीने कहा—'मैं बाहर जा रहा हूं। रातको मेरे घर सोना।' उसने ऐसा ही किया। रात्रिके समय पड़ोसीकी स्त्रीके मनमें विकार उदय हुआ और वह आकर उसके साथ चञ्चलता करने लगी। सत्सङ्गी घबड़ाया। इतनेमें ही उसने देखा कि श्रीस्वामीजी हाथमें छड़ी लिये धमका रहे हैं। वह सारी रात ऐसा देखता रहा और श्रीस्वामीजीकी कृपासे अधर्मसे बच गया।

श्रीस्वामीजी प्रेमी भक्तोंका बहुत आदर करते थे। कोई मधुर स्वरसे नामकीर्तन करता तो उसकी बहुत प्रशंसा

करते। एक सेवक पदगान करते करते विरहके भावमें मग्न होजाया करता था। उस समय श्रीस्वामीजी स्वयं अपने हाथोंसे उसपर पंखा झलते थे। सेवकोंके विनय करनेपर भी पंखा नहीं देते थे। कोई सेवक अधिक नामजप करता तो उसे घीका चूरमा और अधिक बलप्रद वस्तुयें खिलाते।

एक सेवकने स्वामीजीसे अपने विवाहमें चलनेका अनुरोध किया। स्वामीजीने 'ना' करदी। उसने कहा—'मेरे पिताने मुझे आपकी शरणमें सौंपा है। आप मुझे इस प्रकार न छोड़िये।' श्रीस्वामीजीने कहा—'मैं तुम्हें दुःखमें नहीं छोड़ रहा हूं। यह तो विवाहका सुखमय समय है।'

स्वामीजी अपने सेवकोंसे मित्रभाव ही रखते थे। उनसे कोई सेवा-पूजा नहीं लेते थे। मित्रकी भांति ही उनकी भलाई चाहते और प्रीति निभाते।

एकबार स्वामीजी सत्सङ्गमण्डलीके साथ गोदावरीमें स्नान कररहे थे। एक सेवक नदीमें गोता लगाकर बैठगया। जब बहुत पुकारने पर भी नहीं निकला, तब स्वामीजी गहराईमें जानेके लिये उद्यत होगये। लोगोंने रोककर कहा—'यह आप क्या कर रहे हैं?' श्रीस्वामीजीने कहा—'तब क्या एक मित्रको गवाँकर हम घर लौटें? ऐसा नहीं होगा।' इतनेमें वह सेवक पानीसे बाहर निकल आया।

एक सेवकके झूठ बोलने पर स्वामीजी मानो उसे क्रोधसे धमका रहे थे। उसी समय बीच बीचमें दूसरे सेवककी

ओर मुख करके मुस्करा भी लेते थे। अपने स्वामीका ऐसा निर्मल स्वभाव देखकर सेवकका हृदय हर्षसे गद्गद होगया।

एकदिन एक सेवकने काम पूरा नहीं किया। स्वामीजीने उससे कहा—'अभी तो देर होगयी है, घूमनेका समय है, लौटकर आनेपर याद दिलाना; तुम्हें दण्ड देना है।'

एकवार एक बुद्धिमान् सेवक कथामें चुपचाप बैठा था। श्रीस्वामीजीने उसे डांटते हुए कहा—'यहाँ मूर्खोंकी तरह क्यों बैठे हो? जिसका मन इधर उधर भटकता रहता है, उसे कथामें उत्साह नहीं होता अथवा कोई विकार होता है। सत्सङ्गमें दो कण्टक हैं—'अबुध जननको बोलिबो, बुधिमन्तनको मौन।' समुद्रकी शान्ति भी डरकी वस्तु है। चुपचाप मनुष्यके हृदयका क्या पता चलेगा? सत्सङ्गमें रहना है तो सरलचित्त होकर, मान छोड़कर, भोलेभाले बालकके समान उत्साह और हर्षसे रहो नहीं तो चले जाओ।' स्वामीजी उससे रुष्ट होगये। सेवक व्याकुल होगया। सत्सङ्गियोंने स्वामीजीसे अनुनय-विनयकी कि इनका स्वभाव अच्छा है। आप इन्हें क्षमा करें। आपको भी तो इनका स्वभाव बहुत मधुर और प्यारा लगता है।' श्रीस्वामीजीने कहा—'ठीक है; परन्तु खाँड़में मिर्च पड़जाय तो उसे निकालना ही पड़ता है।' तभीसे वह सेवक सत्सङ्गमें उत्साह और हर्षसे लग गया।

एक भोलाभाला सेवक भक्तकोकिलजीसे बारबार कहता था—'स्वामीजी! कथा सत्सङ्गमें सब लोगोंका मन

प्रेमरसमें निमग्न होजाता है; परन्तु मेरी आखोंसे आंसूकी दो बूंदें भी नहीं गिरतीं। मुझे कैसे प्रेम प्राप्त होगा।' एकदिन स्वामीजीने यही बात कहने पर उसे छड़ीसे खूब पीटा। और बोले—'जाकर भोजन बना।' भोजन बनाते बनाते वह मौकेमें ही प्रमरसमें मुग्ध होगया। उसे शरीरकी सुधि नहीं रही। सब्जी जलने लगी। सेवकोंने श्रीस्वामीजीसे निवेदन किया—'सब्जी जल रही है, वे अपने रङ्गमें मस्त हैं।' स्वामीजीने कहा—'सब्जी तो दूसरी आजायगी; छोरा त सुधर गया।'

श्रीस्वामीजी अपने सेवकोंको ईश्वरकी ओर चलनेके लिये बड़ी सुन्दर सुन्दर प्रेमकी युक्तियां बतलाते। वे कहते—'प्रत्येक कार्यमें भक्तको अपने भावमय रूपका ध्यान रखना चाहिये। संसारमें जो भी कार्य करना पड़े, वह भावसे यही समझे कि मैं अपने प्रियतमके घरमें ही हूं और उन्हींकी सेवा कर रहा हूं। कोई वस्तु खरीदे तो यह समझे कि भगवान्के लिये खरीद रहा हूं। स्वयं दातौन करे तो देखे कि ठाकुरजी दातौन कर रहे हैं। स्वयं स्नान करे तो देखे कि यशोदामैया ठाकुरको स्नान करा रही हैं। अपने भोजनके समय ऐसा अनुभव करे कि यशोदा मैया श्यामसुन्दरको भोजन करा रही हैं। अपनी प्रत्येक क्रियाके साथ प्रियतमकी स्मृति जोड़ दे।'

श्रीस्वामीजी कहते थे—'जब अपने मनमें कोई शुभ संकल्प उदय हो, अथवा प्रेम-भक्तिका उद्रेक हो तो

उसको कभी भी न रोके। क्षणभरकी देर न करे, क्योंकि संकल्प टूटजानेका डर है। तत्काल सब काम छोड़कर भजनमें लग जाय।' मैं पवित्र हूं या अपवित्र हूं यह विचार भी न करे। क्योंकि वह घड़ी बड़े सौभाग्य एवं ईश्वरकृपासे प्राप्त होती है।'

श्रीस्वामीजी युगलसरकारके गूढ़ अनुरागसे भरी शृङ्गाररसकी पुस्तकोंके पाठकी आज्ञा नहीं देते थे। वे कहते—'कच्ची बुद्धिके मनुष्य ऐसे ग्रन्थ पढ़कर श्रद्धासे च्युत होजाते हैं।'

श्रीस्वामीजी सबके हृदयकी गति-मति पहिचानते रहते थे और सुधारकी युक्ति भी करते रहते थे। जब देखते कि किसी सेवकके मनमें अभिमान आया है तो वे उसे टट्टी साफ करनेको कहते। इस प्रकार नीच-से-नीच सेवा लेकर उसका अभिमान दूर करते। अभिमान और विकार उन्नतिके मार्गमें जितनी रुकावट डालते हैं और जीवको पतनोन्मुख करते हैं, उतना और कोई भी नहीं। श्रद्धा और सेवा ही इन रोगोंकी रामवाण औषधि हैं।

श्रीस्वामीजीका सबसे अधिक ध्यान था निष्कामता पर। इष्टदेवके प्रति किसी भी प्रकारकी कामना करनेसे वे नाराज होते थे और मना करते थे। वे कहते थे—'श्रीगुरुदेवको और इष्टदेवको सदा-सर्वदा आशीर्वाद ही देना चाहिये।' श्रीस्वामीजीकी परमाराध्या इष्टदेवी श्रीसाकेताधीश्वरी श्रीजनकनन्दिनी महारानी थीं। उन्होंने अपने

'कोकिल-कलरव'के अन्तिम श्लोकमें कहा है—

'श्रीस्वामिनी आल्हादिनी पराशक्ति हैं। वही वेदनन्दिनी हैं। सबके द्वारा स्तुत्य हैं। वही मेरी आराध्या हैं। वही मेरी आराम हैं। मैं उनके आधीन हूं। वह मेरी परम जीवन हैं। मैं गरीब श्रीखण्डदासी उनके विना क्षणभर भी नहीं रह सकती।'

'कोकिल-कलरव' के प्रारम्भमें भी उन्होंने और किसीकी वन्दना न करके वस्तु-निर्देशात्मक इष्टदेव-विषयक वन्दना ही छेड़ी है। वह वन्दना है—

'जिनका रोम रोम सामवेदादि वेद-वाणियोंका गान करता रहता है और जो स्वयं रमादिदेवियोंको उपदेश करती रहती हैं, उन श्रीगुरुदेवस्वरूपा श्रीवेदवती महारानीजीके चरणकमलोंकी मैं वन्दना करती हूं।'

'श्रीजनकनन्दिनीके पादपद्मोंकी जय हो! जय हो!! वे ही हमारे हृदयके स्वामी हैं। विष्णु, शिव, ब्रह्मा भी उनकी वन्दना करते हैं। उनमें मणियोंके समान परम सुन्दर नख झिलमिलाते रहते हैं। नूपुरादि आभूषणोंकी छटा अलग ही छिटकती रहती है। वे श्रीरामचन्द्रके हृदयमें अविचलरूपसे विराजमान रहते हैं। वे ही गरीबि श्रीखण्डिके सेव्य हैं।'

श्रीस्वामीजी युगलसरकारमें भेदभाव नहीं रखते थे। दोनोंको एक ही मानते। फिरभी उनका अधिक अनुराग श्रीस्वामिनीजीमें था। उन्होंने अपनी वाणियोंमें कहीं कहीं श्रीरामचन्द्रजीसे भी श्रीप्रियाजीके लिये अनुराग और उनका

कुशल--कल्याण मांगा है; परन्तु श्रीजू महाराजको जहाँ तहाँ आशीर्वाद ही दिया है। उन्होंने एक पदमें श्रीरामचन्द्रजीसे कहा है—

'सदा उमंग देओ सहज सुभाउसों।
ओ बापू, रघुनाथ दानी ! सुनि होत चित चावसों ॥
सनेह निभाऊं मीठी मैथिलिड़ी मायसों।
सैरधुजी साहिबिका सदा जस गावसों ॥
भूजा भजिबेको देवहु भोरपन्न भावसो।
स्वसुखकी कामना समूल जर जावसो ॥
राधा स्वामिनीकी सदा टहल कमावसो।
गरीबि श्रीखण्डि सत्संगमें समावसो ॥'

वे जो भी कार्य करते थे, पूजा-पाठ, दान-धर्मादि; सब श्रीजू महाराजके हितके लिये करते थे। आठों पहर आशीर्वाद ही देते रहते थे। सेवकोंसे भी यही कहते 'कि हमारे युगलसरकार धर्मात्मा सद्गृहस्थ होनेके कारण बड़े संकोची हैं। उनके सामने कोई मस्तक झुकाता है तो समझते हैं कि इन्होंने हमारे ऊपर भार डाल दिया। इसलिये उनके सामने सिर न झुकाकर आदरके लिये हृदयमें आशीष देते हुए, दाहिनी ओर मस्तक झुकाकर बलायें लेनी चाहिये।' 'किसीको भगवन्नाम बताते तो उससे भी यही कहते— हमें और कुछ भी नहीं चाहिये। हृदयसे आशीर्वाद देते रहो कि प्रियतमकी प्यास सदा बढ़ती रहे।'

श्रीस्वामीजी छोटेपनसे ही किसीको चरण नहीं छूने

देते थे। उनकी इस बातपर बड़ी कड़ी नजर थी। ऐसा करनेकी किसीकी हिम्मत भी नहीं पड़ती थी। वे कहते थे—'सेवकका सबकुछ स्वामीका ही है। इसलिये स्वामीकी वस्तुकी हृदयसे रक्षा करनी चाहिये। अपने धर्म-पुण्यादिको स्वामीका समझकर रक्षा करनी है।' वे चरण-छूना, चरण-रज लेना, फल सामने रखकर प्रणाम करना, लेटे हुएको प्रणाम करना, हाथसे पृथ्वीको छूकर हृदयसे लगाना, इन सब बातोंको स्वसुखकी कामना कहते थे और मना करते थे। प्रियतमके प्यारमें हँसना--रोना, नाचना-गाना, लीला-देखना; इसे भी वह भक्ति बतलाते थे; परन्तु साथही यह भी कहते—'कि अविनाशी स्वाद तो तभी होता है, जब हृदय प्रियतमका कुशल चाहता है। ठीक वैसेही—जैसे अज्ञानी अपना।'

कभी स्वामीजीकी कोई हस्तलिखित पुस्तक खो जाती, या शरीर कुछ अस्वस्थ हो जाता तो कहते—'किसीने दगाकी है या पैरोंकी धूलि ली है। ऐसा हुए बिना, हमें कोई विघ्न नहीं हो सकता।' श्रीस्वामीजी किसी शारीरिक दुःखमें अपने इष्टका नाम नहीं लेते थे। वे कहते थे—'नाम लेना, बुलाना है। दुःखमें प्रियतमका नाम जपें तो कहीं वे यह न समझें कि दुःखमें मुझे बुला रहा है। दुःखके समय अनायास ही श्रीस्वामीजीके मुखसे दूसरे नामोंका उच्चारण होता था।'

श्रीस्वामीजीका स्वभाव अत्यन्त नम्र था। वे रास्तेमें चलते-फिरते सैकड़ों मनुष्योंको मस्तक झुकाते थे। लता-

वृद्धादिसे भी नम्रताका वर्ताव करते। उनके नम्र स्वभावके कारण सभी उनसे प्यार करते थे। बचपनसे ही उनका ऐसा स्वभाव था। मीरपुरकी गद्दीके तीसरे महन्त स्वामी ज्ञानदासजी एक पण्डितसे श्रीरामायणकी कथा सुनकर रामायणपर ही कठिन शब्दोंका अर्थ लिख लिया करते थे और फिर मीरपुरके दरबार साहबमें उसी ग्रन्थसे कथा किया करते थे। उस समय भक्तकोकिलकी अवस्था बारहवर्षकी थी। वे कथामें बड़े उत्साह एवं नम्रतासे बैठते थे। जब स्वामी ज्ञानदास रामायणके हाशियेपर लिखे हुए अपने अक्षरोंको नहीं पढ़पाते थे, तब सभाके संकोचसे पास बैठे हुए भक्तकोकिलजीको डाँटकर कहते—'छोरा ! यह क्या लिखा है ?' स्वामीजी बड़ी नम्रतासे पुस्तक हाथमें लेकर उन अक्षरोंको पढ़कर सुनाते। श्रीस्वामीजीका शील, स्वभाव, नम्रता देखकर महात्मा ज्ञानदास उन्हें बड़े आदरकी दृष्टिसे देखते और आशीर्वाद देते।

श्रीस्वामीजीका यह नित्य नियम था कि प्रतिदिन दो बार प्रभुके आगे सर्वाङ्ग दण्डवत् प्रणाम करते और विनय करते—

'सत् श्रीवाहगुरु तेरा सब सदका।
दुःख रोग सोग वियोग विनाशे कदका ॥'

'हे श्रीसत्गुरु नानक, अमरदास ! गरीबि श्रीखण्डके करो कार्यरास। दुश्मन हत श्रास। सच्चे स्वामी ! मेहरबान मालिककी देवो प्यास। अर्दास सच्चेगुरु साहबके पास।

सत् श्रीवाहगुरु, वैकुण्ठेश्वर, गुरुपरमेश्वर, अजर-अमर, विश्वम्भर, सुखदवर, सदासुखहर्षमें भर। भाग्यविधाता, आनन्दघर, समरथ, भक्तहितू, भरण-पोषण निपुण, कर्ता-अकर्ता-अन्यथाकर्ता, अभागोंको सुख-सौभाग्यदेनेवाले, शरणागत-रक्षक, श्रीविष्णु, धन्वन्तरि, वासुदेव, दुःख-रोग-वियोग-हरण-हार, सर्वत्र सहायक, अकुतोभय, भगवन्त, भयनाशक, अजरपुराण, सुप्तोऽपिजागरूक, विनाचाह रक्षक, दुःखरहित दयालु, श्रीकेशव कृपालु, स्थूल ब्रह्माण्डके सूक्ष्म कारण, अज्ञात सर्वज्ञ, श्रीलक्ष्मीनाथ, मधुसूदन, माधव, मुकुन्द, हे आनन्दभुवन, कल्याणाङ्गन, मंगलालय हरि, अखिलात्मन्, आदिपुरुष, अपरम्पर, श्रीकमलेश्वर, जगदीश्वर, जगद्गुरु, देवहु श्रद्धा-प्रेमका बहर। परम कारुणीक श्रीलक्ष्मीनारायण माता-पिता, धाता-त्राता, त्रिभुवनपति साईं, सत्स्वरूप, चिदानन्दघन, अकालमूर्ति, अयोनिसम्भव, भक्तानुग्रहकरण, भगवान्, हे भावश्य भगवन्त, सुखनिधान, शील-सिन्धु, सानुराग प्रणतपाल, भुवन-भर्ता, दीनबन्धु, पतित-पावन, भक्त-भावन, दुःख-नशावन, सुख-बढ़ावन, सन्त-सुधारन, कोटिपारिजातवत्, करकमल-छायाकर्ता, भक्त-भय-हर्ता, सब मन वाञ्छित अभिलाष पूर्ण कर्ता!

कमलापति कमलारमण, कमलावर कमलेश।
सरस सलोने सोहने, सुन्दर स्यामल वेश॥

हे गज-गणिकोद्धारक! उन हाथींवाले कृपाभरे कोमल करकमलोंसे बालिका गरीबि श्रीखण्डिकी रक्षा करो! रसिक

नरेश, कीर्तिप्रिय, केवल स्मरणसे पतितोंको पुनीत करनेवाले, सदा जिह्वा-प्राण-आत्माको अक्लिष्टबलप्रदातार गुसाईं, अमृतमय, उत्तमश्लोक, करुणावरुणालय, कृपानाथ, स्वामी, जन-गुण-गाहक, दोष-दलन, दुष्ट-निकन्दन, अच्युत, दामोदर, प्रणतार्तिभञ्जन, सुखप्रद, सज्जन, वैकुण्ठेश, पुरुषोत्तम, प्रणाम करनेवालेपर करोड़ों माता-पिताके समान कृपालु, श्री[illegible]कर्मा, श्रीयशोदा-नन्दन, जगवन्दन, व्रजेश्वर, गोपीनाथ, सुखनिधान, प्रभो, नरदेव अर्जुनके निहोरे, हमें मैथिलचन्द्रवर, मीठे मेहरबान मालिकके युगल पदपङ्कजकी सौभाग्यभरी पवित्र पनहीं करो ! गरीबि श्रीखण्डिका मन,तन, प्राण, आत्मा, रसना, विघ्नरहित सत्यस्नेहरूप पंकके पवित्र प्रेमरसायनमें फँस जाय। अनन्त कल्पोंतक सुख, हर्ष, सत्संग प्राप्त हो। श्रीस्वामीकी मनोहर लालसामें गरीबि श्रीखण्डि बलि बलि जाय ; जबतक कोई विपत्तिका समय न आवे, उससे पहिले ही मेरी प्रेमरूप लताको कृपारूप जल देकर विशाल करदो । गरीबि श्रीखण्डिको ऐसा स्थान बताओ, जहां बाहरके दुःख सुखका पता न पड़े। सदा स्वामीका कुशल मनाऊं । शक्तिभरी सच्ची श्रद्धा, रुचि और अपार अनुराग दो ! हे दयावान् प्रभु ! मैं नहीं जानती कि भविष्यमें मेरे भाग्यमें क्या लिखा है। मैं आपकी शरण हूं । 'सर्वदा एकरस किसीकी भी नहीं निबही' यह वाक्यसुनकर मैं डरती हूं । हे महाकाशस्थित प्रभो ! गरीबि श्रीखण्डिको अपने करकमलोंके नीचे सुरक्षित अक्षित करो। हमारी विनय श्रीवैकुण्ठेश्वर सरकारमें स्वीकार हो ! स्वीकार हो !'

इस तरह नित्य ही श्रीस्वामीजी विनय करते थे। चलते-फिरते, सोते-उठते, उनके मुखसे विनयके पद उच्चारण होते रहते। वे सेवकोंसे भी कहते—'जिसकी प्रभुके दरबारमें सर्वदा विनय लगी रहती है, उसका कार्य अवश्य सफल होता है।'

श्रीस्वामीजी अपनेको बहुत गुप्त रखते थे। बाहरके लोग हमें महात्मा न मान लें, इसलिये वे अपना बाहरी वेश भी सेठियों जैसा बनाते थे। बाहर घूमते समय कम-से-कम सेवकोंको ही साथ रखते। सबको कुछ न कुछ देते चलते। सबके पाँव पड़ते। इसलिये भी लोग उन्हें महात्मा नहीं समझते थे। सत्सङ्गियोंके लिये भी यही आज्ञा थी—'कि कोई भी ऐसा व्यवहार न करो, जिससे महात्मापन प्रकट होता हो।' एकबार एक मनुष्यने किसी सेवकसे पूछा—'ये कौन हैं?' सेवकने उत्तर दिया—'मैं भी आपसे यही प्रश्न पूछनेवाला था।'

जैसे दीयेकी लौ घरके अन्दर जबतक जलती रहती है, तबतक बाहरकी वायुके झकोरे उसको चञ्चल नहीं बनाते, परन्तु बाहर निकलते ही वह लड़खड़ाने लगती है। इसीप्रकार यह भगवत्प्रेम भी इस हृदयमन्दिरकी दिव्यज्योति है। अपने स्थानपर ही यह निष्कम्प जगमगाता रहता है। जब यह प्रकट होता है, तब आदर, सत्कार, बड़प्पन और भीड़-भाड़की अनेक विघ्नबाधायें आ आकर इसे हिलाने डुलाने लगती हैं और कुछ न कुछ ख्याल अपनी ओर खींच ही लेती हैं।

इसलिये सच्चे भगवत्प्रेमी अपनेको बहुत गुप्त रखते हैं— कहीं हमारे भगवान्को संसारकी ताती वायु न लग जाय।'

एकबार श्रीस्वामीजी जम्मूसे श्रीनगर जारहे थे। मार्गमें अद्भुत दृश्य देखकर वे भावमग्न हो गये। बाहरसे तो गम्भीर बने बैठे रहे; परन्तु हृदयकी व्यथा पानी बनकर आखोंसे बहने लगी। जब किसीने पूछा—'प्रभो! यह आखोंसे आँसू निकलनेका क्या कारण है?' तो वे बोले—'आंखोंमें ठण्ढी हवा लगनेसे पानी निकलने लगा।'

एकबार श्रीस्वामीजी मेहरग्राममें अपनी कुटियामें विराजमान थे। बाहरसे एक अपरिचित सज्जन आये। उन्होंने श्रीस्वामीजीसे ही पूछा—'मीरपुरके महात्मा कहाँ हैं? स्वामीजीने कहा—'उनके पास जाकर क्या करोगे? तुम्हें किसने बताया है कि वे महात्मा हैं?'और भी अपनी बहुत सी निन्दा की। उन सज्जनने पूछा—'आप उनके कौन हैं?' स्वामीजीने कहा—'सेवक।' उन्होंने कहा—'तब आप उन्हें क्यों नहीं छोड़ देते? स्वामीजी बोले—'हमें अच्छी अच्छी रोटी मिलती है। हमारा काम निकलता है। हम आपको सलाह देते हैं कि फँसो मत।' वे सज्जन उस समय चले गये। सन्ध्याको फिर आये। स्वामीजी कथा कह रहे थे। उन्होंने एक सत्सङ्गीसे पूछा—'ये कौन हैं?' उसने बताया—'ये श्रीमीरपुरके महाराज हैं।' सुनकर वे आश्चर्यचकित होगये। कथाके बाद उन्होंने श्रीस्वामीजीसे विनय की—'आप इस तरह भुलावा देंगे तो हम लोगोंका क्या हाल होगा?' स्वामीजी मुसकराने लगे।

श्रीस्वामीजी खजूर, लुकाट, वेर आदि ऐसी चीजें नहीं खाते थे, जो बाहरसे कोमल और अन्दरसे कठोर हैं। वे कहते थे—'ये कपटी हैं। बाहरसे कोमल और मीठे तथा भीतरसे कठोर।' वे नरीयल बादामआदिकी प्रशंसा करते थे। ये बाहरसे कठोर तथा भीतरसे कोमल हैं। इनका स्वभाव सन्तों जैसा है। छिपेहुए सन्तोंकी यही रहनी हैं। इससे सेवकोंका कल्याण होता है। जो किसमिसके समान बाहर भीतर दोनों कोमल हैं, वे केवल अपना ही कल्याण करते हैं।

श्रीस्वामीजी इस बातका बहुत सूक्ष्म ध्यान रखतेथे कि किसीके हृदयको दुःख न पहुँचे।

'सब घट मेरा साईं बसता,
कटुक वचन मत बोल।,

इसके अनुसार वे सबकी प्रसन्नता अपनाते रहते। वे अपने सेवकोंको भी प्रेम और दयासे प्रफुल्लित रखते। वे किसीको उदास नहीं देख सकते थे। स्वयं भी हँसते थे तथा सेवकोंको भी हँसनेकी प्रेरणा करते थे। किसी सेवकके ग्रामसे यदि कोई दुःखभरा समाचार आ जाता तो वे उसे अचानक नहीं सुनाते थे। जब वह भजन-भोजन कर चुकता तब किसीसे प्रेरणा करके कह लाते थे 'कि अगर तुम्हारे घरमें ऐसा दुःख होजाय तो तुम्हें चिन्ता होगी या नहीं?' स्वामीजी स्वयं कहते—'संसारकी चिन्ता करनेसे क्या लाभ है? गुरु साहब कहते हैं—

'चिन्ता ताकी कीजिये, जो अनहोनी होय।
यह मारग संसारका, नानक थिर नहिं कोय॥'

संसारके दुःखमें डूब जाना व्यवहारी कुसंगियोंका काम है। यदि सत्सङ्गी भी अधिक व्याकुल हो तो सत्सङ्गसे क्या लाभ? चिन्ता तो केवल परम सत्य परमेश्वरकी प्राप्तिके लिये ही होनी चाहिये।" इस प्रकार वैराग्यपूर्ण बातोंसे सेवकके मनको सम्हालकर फिर धीरे धीरे उसे घरकी बात बताते; जिससे वह अधिक दुःखी न हो।

श्रीस्वामीजी जब टहलनेके लिये निकलते थे, तब चींटी आदि प्राणियोंके लिये गुड़ लेकर चलते थे। रास्तेमें जन्तुओंपर किसीका पाँव न पड़ जाय या कुत्ते आदि उन्हें गुड़के साथ खा न जांय, इसलिये गुड़ वृक्षोंसे चिपका देते थे। धीरे धीरे छोटे छोटे जन्तु वहां जाकर खाते।

श्रीस्वामीजीके आगे आगे एक सेवक चलता था। इसका कारण यह था कि स्वामीजी सर्वदा प्रेमानन्दमें मग्न अपनी मौजमस्तीसे झूमते हुए चलते थे। रास्तेके ऊबड़-खाबड़पन तथा मोटर, गाड़ी आदिका उन्हें ध्यान नहीं रहता था। ऐसी जगह वह सेवक रुककर धीरेसे सूचना दे देता, फिर आगे बढ़ता। रास्तेमें कोई भंगिन झाड़ू लगाती दिख जाती और सेवक उसे रोकनेके लिये आगे बढ़ता, तब स्वामीजी कहते—'ऐसे रोकनेसे उसे दुःख होगा। यह थोड़ा सा गुड़ देकर उससे बातचीत करो। तबतक हम निकल जाते हैं' किसीको भी रोकना होता तो सेवक ऐसा ही करता॥

रुकनेवालेको किसी प्रकारका सन्देह न होता।

एकबार श्रीस्वामीजी श्रीअवधसे बरसानेकी यात्रा कर रहे थे। एक महन्तने कहा—'कानपुरमें आपकी कोई पहिंचान नहीं है। हम अपने एक प्रिय सेवकके नाम पत्र दे देते हैं। वह वहां आपके रहनेकी व्यवस्था कर देगा।' महन्तजीका आग्रह स्वीकार करके स्वामीजीने वह पत्र ले लिया और कानपुरमें उसके घरके बाहर सामान रखकर अपने एक सेवकको उसके पास भेजा। पत्र देखकर वह घबड़ा गया और बोला—'मैं कुछ नहीं कर सकता।' श्रीस्वामीजीसे मिला भी नहीं। सेवकको बहुत बुरा लगा। श्रीस्वामीजीने समझाया—'शहरमें यों ही स्थानकी कमी रहती है और ये हमको पहिचानते भी नहीं। आज उसके घरमें कोई उद्वेग होगा। इस बिचारेका कोई दोष नहीं है।' सेवकको आज्ञा दी—'इसके घरसे एक लोटा जल मांग लाओ। वह पीकर यहांसे चले चलेंगे। जिससे अतिथिसत्कार न करनेका अपराध इसको न लगे। हमलोगोंका आना इसके लिये दुःखदायक नहीं होना चाहिये; क्योंकि शास्त्रमें लिखा है—'अतिथि जिसके घरसे वाणीमात्रका भी सत्कार न पाकर लौट जाता है, उसके घरमें अमंगल होने लगते हैं।'

श्रीस्वामीजी प्रायः प्रतिदिन प्रातःकाल खुरपेसे मिट्टी हटा-बढ़ाकर व्यायायाम करते थे। इसमें स्वाभाविक ही भुजायें हिलती रहती थीं। इस अवसर पर यदि कभी मक्खियोंका जोड़ा आकर भुजापर बैठ जाता तो वे बहुत देरतक भुजा

हिलाना बन्द रखते थे, जिससे मक्खीयुगलके मिलन सुखमें किसी प्रकारकी विघ्नबाधा न पड़े।

श्रीस्वामीजीको जोड़ने, सँजोने, सँवारने तथा बिगड़ी चीजको बनानेमें बहुत आनन्द आता था। एकबार एक कुर्सी टूट गई। सेवकने एक दो बार जोड़ा, पर जुड़ी नहीं। उसने बिनतीकी—'अब दूसरी लेनी चाहिये।' स्वामीजीने कहा—'बनी हुई तो सब ले सकते हैं, बिगड़ीको सुधारनेमें ही अच्छाई है।' ऐसा कहकर उन्होंने स्वयं ही अपने हाथोंसे उसे ऐसा बाँधा कि बहुत दिनोंतक काम देती रही।'वे कुर्सीको भी सुरसी कहते थे। जैसे धर्मराज युधिष्ठिर दुर्योधनको सुयोधन कहते थे।

एकबार मीरपुरमें श्रीरामबागके शिवमन्दिर से कुछ चीजें चोरी चली गयीं। इस बातका पता जब गांवके बड़े रईस मुसलमानको लगा, तब वह श्रीस्वामीजीके पास आया। उसने बहुत दुःख प्रकट करते हुए कहा—'हम जरूर ढूंढ़ निकालेंगे।' स्वामीजीने मुसकराते हुए कहा—'माल तो सारा-का-सारा ऊपर रखा है। चोरोंके हाथ तो कुछ लगा ही नहीं।' स्वामीजीकी यह बात सुनकर उस रईसकी श्रद्धा बढ़ गयी और वह प्रशंसा करने लगा।

श्रीस्वामीजीका सत्संगमें गम्भीर अनुराग था। वे कहते थे—'सत्सङ्गमें जो आनन्द है, वह एकान्त भजनकी किसी भी ऊँची अवस्थामें नहीं मिल सकता। सत्सङ्ग द्वारा ही ईश्वरसे बिछुड़े हुए जीवको उसकी प्राप्ति होती है। ईश्वरप्राप्ति

होनेपर भी प्रेमीजनोंके साथ बैठकर प्रियतमकी चर्चा करनेमें अनन्त आनन्द मिलता है।'

एकबार स्वामीजी सिन्धसे वरसानेकेलिये रवाना हुए और तीसरे दिन नन्दग्राम पहुँचे। उस समय सत्सङ्गियोंमें कोई थकानके कारण लेट गया और कोई बजार जाने लगा। स्वामीजीने उत्साहपूर्ण स्वरमें सबको पुकारकर कहा—'सब चिन्ता छोड़ दो, दो दिन से सत्सङ्ग नहीं हुआ है पहिले सब सत्सङ्गमें बैठ जाओ, तीन दिनकी लगातार यात्राके पश्चात् किञ्चित् भी आराम किये बिना स्वामीजीका सत्सङ्गके लिये यह अनुराग एवं उत्सुकता देखकर सत्सङ्गियोंका हृदय भी उत्साहसे भर गया। सत्सङ्गका रंग जमा। स्वामीजीने भरे हृदयसे युगलसरकारके अनुरागकी ऐसी मधुर कथा सुनायी कि सबकी आखोंसे प्रेमकी वर्षा होने लगी। सबके हृदय आनन्द-रससे भीग गये। शरीरकी थकावट तथा भूख-प्यासका ध्यान ही न रहा। श्रीस्वामीजीका स्वभाव ही ऐसा था, वे सत्सङ्गके बिना दो दिन भी नहीं रह सकते थे।

श्रीस्वामीजी संत-अनुरागकी मूर्ति थे। वे सन्तोंको देखते ही अपना आपा भूलकर अत्यन्त श्रद्धासे उनके चरण-कमलोंमें झुक जाते। जब जब सन्त दर्शनके लिये जाते, फल-फूल लेकर जाते। खाली हाथ नहीं जाते थे। सेवकोंके लिये भी ऐसी ही आज्ञा थी। वे सेवकोंके सामने ही स्वयं सन्तोंके चरण पलोटते। सन्त-सेवामें उनका गम्भीर

अभिप्राय यह था कि श्रीस्वामिनी जनकनन्दिनीके सुखके लिये श्रीरामचन्द्रजी हमारी प्रर्थना स्वीकार कर लें। क्योंकि उन्होंने कहा है—

"सन्त चरण-पंकज रति जाके।
तात निरन्तर बस मैं ताके॥"

एकबार थलेके महन्त स्वामी कुन्दनदासजी जो श्रीस्वामीजीसे बड़ा प्रेम रखते थे, बीमार पड़ गये। वे इतने कमजोर हो गये कि कफ भी अपने आप मुखसे थूक नहीं सकते थे। श्रीस्वामीजी घण्टों उनके पास बैठे रहते थे और उनके मुखमें अपना हाथ डालकर कफ निकालते थे। स्वामीजीकी यह सहृदयता देखकर श्रीस्वामी कुन्दनदासजी गद्गद होजाते। जब बहुत चिकित्सा करने पर भी कोई लाभ नहीं दिखायी पड़ा, तब एकदिन श्रीस्वामीजीने सलाह दी 'कि आप थलेके सभी महात्माओंके चरण धोकर पान करें। भगवान्की कृपासे, सन्त-चरणामृतके प्रभावसे रोग निवृत्त हो जायगा।' एक साधुने पूछा—'आप अपने चरण धोने देंगे ?' स्वामीजीने कहा—'सहर्ष ! सबसे पहिले !' स्वामीजीका यह सन्तप्रेम देखकर सब चकित रह गये। उन्होंने ऐसा ही किया। सन्त-चरणामृत पान करते ही महन्तजी स्वस्थ हो गये। वास्तवमें श्रीस्वामीजी सन्तोंके सुखके लिये सबकुछ न्योछावर कर सकते थे। वे सन्तोंके सुखके लिये धन, धर्म, नियम, मर्यादा, लोक, परलोक, किसीका ख्याल नहीं रखते थे। इस प्रसङ्गमें एक सन्तके

आरोग्यके लिये अपना जिन्दगीभरका चरण न छूने देनेका नियम भी उन्होंने तोड़ दिया।

भगवान्के गुण अनन्त हैं। एक एक गुणकी अनन्त अनन्त शाखायें हैं, जब स्वयं भगवान् किसी भक्त के हृदयमें आकर विराजमान हो जाते हैं तब उनके सभी गुण और उनकी सब शाखा प्रशाखा भक्तके हृदयमें भी आ जाती हैं और समय-समय पर उपयोगिताके अनुसार उनका प्राकिट्य होता रहता है। इसलिये यदि कोई कभी किसी भक्तके गुणोंकी गणना करना चाहे तो कर नहीं सकता। जितने अनुभवमें आते हैं उतने समझे नहीं जा सकते, जितने समझमें आते हैं उतने स्मरण नहीं किये जा सकते, जितने स्मरणमें आते हैं उतने कहे नहीं जा सकते और जितने कहे जा सकते हैं उतने लिखे नहीं जा सकते। इसलिये बटलोईके चावलके समान एककी पक्कताके ज्ञानसे सबकी पक्कताके ज्ञानके समान ही गुणोंकी चर्चा की जाती है। जैसे समुद्रकी एक बूंद भी उसके खारेपनके गुणको प्रकट कर देती है, अमृतका एक कण भी अमर कर देता है, गङ्गाजलकी एक फुही भी पवित्र करनेके लिये पर्याप्त है वैसे ही यह गुणोंका यत्किंचित् वर्णन है।

श्रीवृन्दावनमें निवास, सत्संग और आनन्द

श्रीकृष्ण शब्दका अर्थ है, आकर्षण करनेवाला। जैसे चुम्बक शुद्ध लोहेको अपनी ओर आकर्षित करता है, चुम्बन करता है; ठीक वैसे ही श्रीकृष्ण भी शुद्ध हृदयको अपनी ओर आकर्षित करते हैं। ब्रह्ममें यह आकर्षण नहीं है। जिज्ञासु अपनी गतिसे ब्रह्मकी ओर बढ़ता है। श्रीकृष्ण अपनी वंशी ध्वनिसे, नूपुरोंकी झंकारसे, दिव्य सौरभसे, मुकुटकी लटकसे, नयनोंकी पैनी अनीसे, अमृतमयी बोलनसे, मन्द-मन्द मुसकानसे और अपनी चटकती मटकती चुलबुलाहटसे छेड़-छेड़ कर भक्तजनोंके हृदयको अपनी ओर आकर्षित करते हैं। उनकी रूपमाधुरी, लीलामाधुरी, वंशीमाधुरी और प्रियामाधुरी अपूर्व है। एकबार वे जिसके हृदयमें गुदगुदी पैदा कर जाते हैं, उसे सदाकेलिये एक लालसा, एक आकर्षण, एक प्रणय-निमन्त्रण दे जाते हैं। जिसके कारण वह प्रेमी चाहे कहीं भी रहे और कुछ भी करे, उनके पास पहुँचनेके लिये तड़पता और छटपटाता रहता है।

श्रीभक्तकोकिलजीके स्निग्ध मुग्ध मधुर हृदयको एकबार श्रीकृष्णने स्पर्श कर दिया था। उनके हृदयरूप

क्षीरसागरकी भावलहरियोंको उद्वेलित कर लिया था। उनके हृदयकी उर्वरा भूमिमें कृष्ण-किसानने राह चलते मानों अनजानमें ही प्रेमका बीज डाल दिया था। वह धीरे-धीरे अंकुरित पल्लवित और पुष्पित होकर फलित होनेपर आया। श्रीस्वामीजी सिन्धसे श्रीनाथद्वारे आये। वे जहाँ भी जाते, चाहे जिस देवताका दर्शन करते, यही प्रार्थना करते और सेवकोंसे भी कहते—'कि प्रेमभूमि व्रजभूमिमें श्रीराधा-माधवके पादपद्मोंकी छत्रछायामें, उन्हींके लाड़प्यारके सहारे जीवन व्यतीत करूं।' श्रीनाथद्वारेमें एक मार्ग है। श्रीनाथजी महाराज घोड़ेपर चढ़कर उसी मार्गसे श्रीवृन्दावनकी यात्रा करते हैं। मिठले बावल साईं अपने करकमलोंसे उस मार्गके गड्ढे पाट रहे थे और रास्तेको सम तथा सुकोमल बना रहे थे। उसी समय एक अपरिचित बालक उनके पास आया और बोला—'बाबा, आप थक गये होंगे। छोड़ो! मैं ठीक करता हूँ।' साईं साहबने पूछा—'तुम कौन हो बेटा?' बालक—'मैं पासके गांवका ग्वाला हूँ।' स्वामीजी बोले—'बेटा! अभी तुम नन्हे हो। यह काम तुम्हारे करने योग्य नहीं है।' इतना कहकर स्वामीजी काममें लग गये। क्षणभर बाद आँख उठाकर देखा कि बालकका वहां कहीं पता नहीं है। स्वामीजीको आश्चर्य हुआ। रातको स्वप्नमें श्रीनाथजीने कहा—'वह ग्वाला मैं ही था। आपका परिश्रम मुझसे देखा नहीं गया। आपकी चिरकालीन आशा, आकांक्षा, लालसा पूर्ण होगी। जिसके लिये आप

अत्यन्त उत्कण्ठित रहते हैं और सबसे प्रार्थना करते हैं। आप सर्वदाकेलिये व्रजभूमिमें निवास करोगे।'

इस घटनाके बाद श्रीस्वामीजीके हृदयमें व्रजभूमिमें निवास करनेकी उत्कण्ठा और भी तीव्र होगयी। जब वे भजनमें बैठते, तब उन्हें ऐसा अनुभव होता कि बरसानेके सुन्दर मन्दिरसे श्रीवृन्दावनेश्वरी मैया मुझे पुकार रही है। जैसे नन्हा सा शिशु अपनी स्नेहमयी मां का मुख देखे बिना दूरसे आवाज पहिचानकर गोदमें पहुँचनेके लिये व्याकुल हो जाता है, वैसे ही स्वामीजी वह पुकार सुनकर विह्वल हो उठते। वे मन-ही-मन गुनगुनाने लगते—

इस गुम्बजमें श्रीराधाजू बोल रही है।
परदेमें बैठ वह मुझे झांक रही है॥

'अहो! यह दूरीका परदा दूर हो जांय, मैं शीघ्र अपनी प्यारी मैयासे जा मिलूं जीभरकर उनका दर्शन करूंगा। स्वामिनी अम्बा मुझे पल पलपर बुला रही हैं और मैं यहां बैठकर सुनती रहूँ। अब तो यही अभिलाषा होती है कि श्रीराधा अम्बाके कुसुमके समान कोमल चरणोंकी पनही बनकर अपनी गोदमें बैठा लूं। गोपियोंके घरोंमें घूमती फिरूं। गोपियोंके हृदयमें जो युगलके मधुर विहार होते हैं, वह देखती रहूँ। व्रजभूमिकी उस मधुर मधुर हरियालीमें झूमती फिरूं जिसमें युगलसरकार प्रेम-विहार करते रहते हैं।' इस प्रकार स्वामीजी प्रेमभूमि व्रजभूमिकी सलोनी स्मृतिमें डूबे रहते और सत्सङ्गमें व्रजकी

हरियाली, आनन्द और महिमाका ऐसा अनुपम वर्णन करते कि सबकी आँखोंके सामने वही झाँकी झलकने लगती। सबके मनमें यही उमंग तरंगायित होने लगते—'कि पंख होते तो हम अभी उड़कर श्रीवृन्दावन पहुँच जाते।' वैसे श्रीभक्तकोकिलजी प्रतिवर्ष तीन-चार महीने व्रजमें रहते, परन्तु भगवत्कृपासे सर्वदा व्रजमें रहनेका समय आ गया।

श्रीस्वामीजी जिनदिनों कराचीमें निवास कर रहे थे उन्हीं दिनों रात्रिके समय स्वप्नमें श्रीगुरुनानकसाहब एक वृद्ध महापुरुषके रूपमें प्रकट हुए और बोले—'अब सिन्ध छोड़कर व्रजभूमिमें सदाके लिये निवास कीजिये।' गुरूसाहबकी आज्ञा सुनकर श्रीस्वामीजी बहुत प्रसन्न हुए और संवत् १९९६ पुरुषोत्तम मासमें थोड़ेसे सत्सङ्गियोंके साथ सदाकेलिये व्रजभूमिमें आ गये। लोगोंकी भीड़-भाड़ और मानप्रतिष्ठासे अत्यन्त दूर व्रजयुवराजकी प्रेममयी एकान्त राजधानी श्रीवृन्दावनका दर्शन और निवास प्राप्त करके श्रीस्वामीजी दिव्य प्रेम मधुर लीला और अलौकिक आनन्दका अनुभव करने लगे। वे प्रेमोन्मत्त होकर वृन्दावनकी हरी भरी लहलही ललित लताओंके कुञ्जोंमें विचरने लगे। कभी मोतीझील, कभी श्रीजीकी बगीची, कभी रसिक शिरोमणि श्रीहरिदासजीका स्थान, कभी श्यामकुटी और कभी भानु-नन्दिनी कालिन्दीके पावन पुलिनपर सारा-का-सारा दिन एकान्त भजन और सत्सङ्गमें छके छके बिता देते।

श्रीस्वामीजी जब अपने परिकरके साथ वन-

उपवनमें विचरण करनेकेलिये जाते, तो पहिले सब लोग एकान्त झाड़ियोंमें अलग-अलग नित्य नयी नयी लीलाओंका अनुभव करते और भावमें तन्मय हो जाते। कुछ देरके बाद श्रीस्वामीजीके बुलानेपर सब उनके पास आ बैठते और सत्सङ्गकी चर्चा चलती। एकबार सत्सङ्गमें श्रीवृन्दावनकी महिमाका प्रसङ्ग चला। श्रीस्वामीजीने कहा—'श्रीयुगल-सरकार और प्रेममयी गोपियोंके प्रेमकी यहां ऐसी छटा छायी हुई है कि हृदयपर प्रेमकी सहज मादकता छायी रहती है।'

एक भक्तने अपना अनुभव सुनाया—'प्यारे साईं! एकदिन एकान्तमें बैठकर मैं सोचने लगा—'सब कहते हैं कि व्रजभूमि प्रेममयी है; सो कैसे?' इस भावमें डूबकर मैंने देखा—यहांके वृक्ष-पत्ते, फल-फूल, घास-लता, रज,कण-कण अणु-अणु, सभी प्रेमी भक्त हैं। यह देखकर मुझे आश्चर्य हुआ और सोचने लगा—'अब इस भूमिपर पाँव कैसे रखूं?' संकोचवश बहुत देरतक बैठा रहा। फिर यह भाव उदय हुआ कि यह प्रेमका स्रोत कहाँसे आ रहा है? जिससे यह भूमि प्रेममयी हो गयी है। मैंने उसी समय देखा—एक नयनमनोहारी सुषमासदन निभृत निकुञ्ज है और उसमें नित्यकिशोर परममधुर श्याम-गौरकी जोरी व्याकुल होकर ऐसी उत्कण्ठासे परस्पर मिल रही है, मानों एक दूसरेमें समा जाना चाहते हों, परन्तु यह मिलनकी प्यास बुझनेके स्थानपर और भी बढ़ती जा रही है। दोनों परस्पर एक दूसरेके भुजपाशमें बँधे हुए हैं। दोनों ही एकदूसरेसे

कह रहे हैं—'कभी मुझसे अलग तो नहीं होगे ?' कभी श्याम गौर और कभी गौर श्याम हो जाते हैं। फिर भी प्रेमकी पिपासा उन्हें शान्त नहीं रहने देती। वे मिलकर अलग होते हैं और अधिक तीव्र गतिसे दौड़ दौड़कर मिलते हैं। दोनोंके प्राण, दोनोंकी आत्मा, हितने दोनोंको विवश कर दिया है। दोनोंकी सुध-बुध अपने काबूमें कर लिये हैं। इस प्रकार युगलसरकार 'हित' की गोदीमें बैठ नेम और प्रेमके हिंडोलेमें झूल ही रहे थे कि दोनोंके बीचमें एक लता आगयी। उनको ऐसा प्रेमवैचित्त्य (प्रेमकी गाढ़तासे संयोगमें ही वियोगकी भ्रान्ति) का उदय हुआ कि दोनों यह समझने लगे कि हम एक दूसरेसे बहुत दूर हो गये हैं और 'हा प्यारी !' 'हा, प्यारे !' ऐसा प्रलाप करते हुए एकदूसरेको पुकारने लगे। उस करुण क्रन्दनसे पशु-पक्षी, लता-वृक्ष और रजके कण-कण भी जो कि भक्त ही थे, रोने लगे। रोदनध्वनिसे वन गूंज उठा। लता करुणासे द्रवित होकर युगलके बीचसे हट गयी। एकने दूसरेको पहिचाना। वायुसे भी तीव्र गतिसे दौड़ पड़े। लता-वृक्ष दूसरी ओर झुक गये। भूमि समतल हो गयी। काँटे-कुश नवनीतके समान कोमल हो गये। दोनों एक दूसरेसे लिपट गये। पशु-पक्षी, लता-वृक्ष, रजकण 'जय हो ! जय हो !' की प्लुत ध्वनिसे मुखरित हो उठे। मेरा ध्यान टूटा और खुली आँखसे मैंने देखा कि व्रजभूमि प्रेममयी है।'

श्रीस्वामीजीने कहा—'वस्तुतः वृन्दावन ऐसा ही है जैसे कोई महापुरुष पुरानी गुदड़ी ओढ़कर अपनेको

छिपाकर बैठा हो, वैसे ही इसने अपनी दिव्यता एवं वैभव छिपा रखा है। श्रीवृन्दावनेश्वरीकी कृपासे ही कभी कभी दिव्य दर्शन प्राप्त होता है।"

एकबार श्रीस्वामीजीसे एक महात्माने पूछा—'आप इस पूर्णिमा तक तो यहाँ रहेंगे ?' श्रीस्वामीजीने प्रेमोल्लाससे भरकर कहा—'हम तो कोटि-कोटि पूर्णिमातक यहाँ रहेंगे। हमें आप आशीर्वाद दें कि व्रजभूमि अपनी गोदसे हमें कभी अलग न करे।'

स्वामीजी जब विचरण करनेके लिये बाहर निकलते तब कुछ खानेकी चीज अपने साथ ले चलते थे। साधुओं और गरीबोंको बाँटते थे। सबके चरणोंकी वन्दना करते। हरिजनोंका भी स्पर्श कर लेते और उनका भी चरण-वन्दन करते। एकबार किसी महात्माने कहा—'साईंजी ! आप उन्हीं हाथोंसे भंगी-चमारोंका पाँव छूते हो और फिर हमें स्पर्श करते हो; यह बात ठीक नहीं।' स्वामीजीने सरल भावसे कहा—'हमें तो व्रजमें सब गोपी-कृष्ण ही दिखायी देते हैं।' महात्माजी बहुत प्रसन्न हुए।

श्रीस्वामीजीकी सत्पुरुषोंमें, साधु-सन्तोंमें गम्भीर श्रद्धा थी। व्रजमें भी वे जहाँ तहाँ घूम घूमकर साधुसन्तोंके दर्शन करते और उनसे प्रार्थना करते—'हमें ऐसी सेवा बताइये, निःसंकोच आज्ञा दीजिये, जिससे आपका भजन निर्विघ्न होता रहे।' स्वामीजीकी श्रद्धा, निर्लोभ और संकोची संतोंको भी अपने मनकी बात बता देनेके लिये प्रेरित करती।

वे स्वामीजीको अपना कोई घनिष्ठ सम्बन्धी समझते। जब स्वामीजी किसी साधुको धूपमें नंगे पाँव घूमते देखते तो उसकी इच्छा न होनेपर भी जबरदस्ती उसे जूता पहिनाते। वस्त्र, लोटा, चिप्पी, भोजनादि देते। किसी किसीके लिये कुटिया बनवा देते। बहुतोंको महावाणी, लाड़सागर आदि लिखवा दिये। कितनों को श्रीमद्भागवत और रामायणादि सद्ग्रन्थ दिये। इस प्रकार वे सन्तोंको सदा सुख पहुँचाते और सेवा करते रहे। अनेक महात्माओंके साथ उनका अत्यन्त घनिष्ठ प्रेमसम्बन्ध हो गया।

श्रीस्वामीजी प्रायः टहलनेके लिये मोतीझील पर आते थे। उसी रास्ते कलाधारीके महन्तजी प्रतिदिन शहरकी ओर जाते थे। श्रीस्वामीजी अपने स्वभावके अनुसार उन्हें मिठाई देना चाहते; परन्तु महन्तजी कहते—'हमें इच्छा नहीं है। किसी औरको दे देना।' एकदिन स्वामीजीने देखा कि महन्तजी श्रीवृन्दावनके तरु-लताओंका आलिंगन करके भावमग्न हो रहे हैं। श्रीस्वामीजीने किसीसे पूछा—'ये कौन हैं?', तब पता चला—'यह तो महन्तजी हैं।' यह जानकर स्वामीजीको बड़ी श्रद्धा हुई। महन्त होकर ऐसी सादी रहन-सहन, नम्रता और व्रजभूमिसे प्रेम दुर्लभ है। क्रमशः श्रीस्वामीजीका उनके पास आना-जाना, प्रेम-परस्पर बढ़ता रहा। श्रीस्वामीजी प्रायः कहा करते थे—'इस आश्रममें भजन अच्छा होता है और साधु-सेवा भी बहुत बढ़िया होती है।'

एकदिन स्वामीजी हाथीबाबाका दर्शन करने गये। वे यमुनाजीके तटपर एक सघन वृक्षकी छायामें झूलेपर लेट रहे थे। श्रीस्वामीजीके द्वारा भेंटके लिये लाये हुए फल देखकर बोले—'आजकल लोगोंके चित्तमें सकाम भाव बहुत अधिक है। ऐसी चीज खानेसे शरीर ठीक नहीं रहता। इसीसे मैं नहीं खाता हूँ।' श्रीस्वामीजीने कहा—'और इच्छाकी तो मैं नहीं कहता, यह इच्छा तो जरूर है कि—

'सब कर मागउँ एक फल,श्रीराम चरणरति होइ।'

श्रीहाथीबाबाजीने स्वामीजीको गले लगाकर कहा—

'यह कामना नहीं है। उसकी बेड़ी काटने वाली टांकी है।' स्वामीजी कभी कभी उनके सत्सङ्गमें जाया करते और उनकी सेवा भी करते थे।

एकबार श्रीस्वामीजी रिक्सेमें आ रहे थे। सामने दिख-गये श्रीहाथीबाबाजी। सो उन्होंने विनय और श्रद्धासे उतर कर दण्डवत् प्रणाम किया और अपना धूपका चश्मा हाथी-बाबाको पहिना दिया तथा प्रार्थना की कि इसे धूपमें अवश्य पहिना करें। स्वामीजीकी श्रद्धा-भक्ति एवं सेवाभाव देखकर श्रीहाथीबाबाजी बहुत प्रसन्न हुए।

श्रीस्वामीजी श्रीयमुनाजीके पावन पुलिनपर घूमते थे। वनविहारके श्रीमाधवदासजी जब उधरसे निकलते, तब वे उन्हें बड़े प्रेमसे प्रणाम करते थे। एकदिन उन्होंने पूछा—'क्या आप सिन्धमें रहते हैं?' स्वामीजीने कहा—'जी हां!

परन्तु अब आप सन्तोंकी कृपासे व्रजभूमिका अचल निवास प्राप्त हुआ। हमारे योग्य कोई सेवा हो तो निःसंकोच कृपा कीजिये।' उन्होंने सिन्धी सुर्माके लिये आज्ञा की। श्रीस्वामीजीने उनकी कुटीका पता पूछ लिया और दूसरे दिन स्वयं सुर्मा लेकर वनविहार चले।' हरे भरे लता-वृक्षोंसे मण्डित, शान्त, एकान्त आश्रम देखकर स्वामीजी बहुत प्रसन्न हुए। सत्सङ्गके प्रसंगमें उनसे यह सुनकर—'नन्दबाबाकी गायें, कभी कभी इधरसे निकलती हैं उनके दर्शनके लिये स्वामीजी दिनभर वहीं रहे। सन्ध्यासमय उन गौओंका दर्शन करके बहुत ही आनन्दित हुए। उनसे और उनके सेवक श्रीरासेश्वरीशरणजीसे भी श्रीस्वामीजीका बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध रहा।

एकदिन सत्सङ्गियोंके समाजमें श्रीस्वामीजीने नवद्वीपके महात्मा श्रीवंशीदासजीकी चर्चा की। वहाँकी यात्राके समय उनका दर्शन हुआ था। उनके प्रेमोन्मादके प्रसंगमें स्वामीजीने कहा—'उनके दर्शनकी इच्छा होती है।' दूसरे ही दिन सेवकोंने आकर यह शुभ संवाद दिया कि श्रीवंशीदासजी यमुनातटपर पधारे हैं। उसी समय श्रीस्वामीजी फल-फूलादि लेकर उनके पास गये। महात्माजी युगलमूर्तिके पास बैठे रहते और उन्हींसे बातचीत करते। और किसीसे नहीं बोलते। उन्हें सर्दी लगती तो ठाकुरको वस्त्र ओढ़ा देते, गर्मी लगती तो ठाकुरका भी वस्त्र उतार देते। ऊँट देखकर ठाकुरसे कहते—'इसपर चढ़ेंगे क्या?' स्त्रियों को देखकर कहते—'इन

ग्वालिनोंसे माखन छीनोगे ?' कुत्ता भौंकता तो पूछते—'लाला ! तुम्हें डर तो नहीं लगता ?' ठाकुरजीको वस्त्रहीन देखकर एक सेवकने स्वामीजीसे कहा—'यह महात्मा अपने ठाकुरजीको वस्त्र क्यों नहीं पहिनाते ?' महात्माजी अपनी धुनमें गाने लगे—

पहिरे नील पीत पट सारी। रतन सिंहासन बैठे पिया प्यारी ॥

श्रीस्वामीजी जब जब उनके दर्शनको जाते, वे अपने ठाकुरजीसे प्रेमकी नयी नयी बात बोलने लगते। उनके सेवक कहते—'आप प्रतिदिन आया करो, जिससे हमें भी इनके मुखारविन्दकी मधुर वाणी सुननेको मिले।' श्रीवंशीदासजीके नन्दग्रामसे लौट आनेपर स्वामीजीने कहा—'अब आप नन्दग्राममें ही रहिये। वहां बड़ा आनन्द है। हम आपको कुटिया बनवा देते हैं।' महात्माजीकी आँखोंमें आंसू छल-छला आये। वे महाप्रभु गौराङ्ग देवका स्मरण करके बोले—नन्दबाबासे पूछिये, जिसका बेटा संन्यासी हुआ है वह कुटियामें रहना चाहेगा कि नहीं ?' वे बच्चोंकी तरह रोने लगे। श्रीस्वामीजी उनका यह भाव देखकर बड़े प्रसन्न हुए।

श्रीस्वामीजी कैमारवनमें श्रीकाठियाबाबाके स्थानमें श्रीयुगलसरकारका दर्शन करके बड़े प्रसन्न होते। वह स्निग्ध मुग्ध प्रेमपूर्ण श्रीविग्रह उन्हें बहुत ही प्यारा लगता। भक्तजनोंका कहना है कि श्रीकाठियाबाबाका शरीर जब व्रजरजमें लीन हुआ था, तब श्रीप्रियाजीके नेत्रकमलोंसे कई दिनों तक आँसुओंकी बूँदें टपकती रही थीं।

एकदिन श्रीस्वामीजीने वर्तमान महन्तजीको जाकर प्रणाम किया। महन्तजी गर्मीके कारण अपने हाथसे ही पंखा झल रहे थे। वहीं उनके सद्गुरुके स्वरूपपर बिजलीका पंखा चल रहा था। श्रीस्वामीजीने उनसे पूछा—'आप बिजलीका पंखा क्यों नहीं लगवाते?' महन्तजी बोले—'श्रीगुरुदेवके ऊपर पंखा चल रहा है, इसीसे हमें सन्तोष है। सेवकको सद्गुरुकी बराबरी नहीं करनी चाहिये।' स्वामीजीको उनका यह भाव बहुत प्रिय लगा। वे कभी कभी उनका दर्शन करने आते। सत्सङ्ग होता। सद्गुरुका प्रसङ्ग चलता। वे अपने श्रीगुरुदेवकी वाणी सुनाते कि 'महन्ती अपनी पूजा करवानेके लिये नहीं मिलती है। यह तो सन्तोंकी सेवा करनेके लिये ही है। जब सन्त-सेवा करनेकी भावना जाग्रत् हो, तभी महन्ती करनेकी योग्यता मिलती है।' उनके पत्र एवं उपदेश भी सुनाते।

एकदिन महन्तजीने स्वामीजीसे कहा—'मेरे गुरुभाई देवादासजी आये हैं। उनका दर्शन कीजिये।' स्वामीजी उनके पास गये। दण्डवत् प्रणामके पश्चात् उन्होंने पूछा—'आप कौन हैं?' स्वामीजीने कहा—'हम गृहस्थ हैं।' महात्माने कहा—'आप अपनेको छिपाते क्यों हो? मेरा हृदय कहता है कि आप सन्त हैं।' इतना कहकर उन्होंने स्वामीजीका आलिंगन किया और बोले—'देखिये, आपके स्पर्शसे मेरे शरीरमें रोमाञ्च होते हैं।' धीरे धीरे दोनोंकी प्रेमपहिचान बढ़ती गई। स्वामीजी बढ़िया बढ़िया वस्तुयें उनके पास

ले जाते; परन्तु वे अस्वीकार कर देते थे। स्वामीजीको सन्तोंकी निःस्पृहता बहुत प्यारी लगती थी। इसीलिये वे निर्लोभ सन्तोंपर सबकुछ न्योछावर कर देते थे। श्रीदेवादासजी ज्योतिषविद्यामें बड़े निपुण थे। उन्होंने एकबार स्वामीज़ीसे कहा—'आप छः वर्ष तक सिन्धमें न जाना और किसीका कुछ न खाना।' श्रीस्वामीजीसे सिन्धके भक्त जब जब वहाँ जानेके लिये अनुनय विनय करते, तब तब स्वामीजी उन महात्माके वचन दुहराते और कहते—'हम महात्माका वचन भंग नहीं कर सकते।' वैराग्यमूर्ति स्वामीजीको लोगोंसे पल्ला छुड़ानेका अच्छा सहारा मिल गया।

श्रीवृन्दावनधाममें श्रीसाकेतलोक श्रीरामबाग मन्दिरमें जब प्रतिष्ठा-महोत्सव हो रहा था, श्रीस्वामीजी भी अपने प्राणाराम श्रीसीतारामका दर्शन करनेके लिये गये। वहाँके महन्त, भजनानन्दी, महात्मा श्रीसङ्कर्षणदासजीको निरन्तर हरिनाम जपते देखकर स्वामीजीको बहुत आनन्द हुआ। उनके ओष्ठ हिलते ही रहते हैं। किसी प्रश्नका उत्तर देनेके बाद वे तत्काल नामजप करने लग जाते हैं। स्वामीजी मन्दिरमें ठाकुरजीका दर्शन करके महन्तजीसे सत्संङ्ग करते। वे अपने जीवनकी साधना, तपस्या और कष्टसहनका वर्णन करते। एकदिन उन्होंने व्रजमहिमाका वर्णन करते हुए कहा—'हम निर्बल जीव कुछ नहीं कर सकते। ध्रुव-प्रह्लादके समान नाम जप, महाराज पृथुके समान पूजा-अर्चा अब कौन कर सकता है? हम आलसी जीव धाममें पड़े हैं कभी कभी व्रजरज उड़कर मुखमें पड़ जाती है, इसीसे कल्याण

हो जायगा।' महन्तजी कभी कभी अवध सरकारकी विचित्र कथायें सुनाते थे।

एकबार श्रीस्वामीजीके किसी भोले सेवकने महन्तजीके पूछनेपर स्वामीजीकी कीर्ति, महिमा एवं श्रीअवधसरकारके चरणोंमें अगाध अनुरागका बड़े विस्तारसे वर्णन किया। महन्तजीको यह सुनकर कि हमारे और स्वामीजीके इष्टदेव एक ही हैं, बड़ी प्रसन्नता हुई और जब वे दर्शन करने आये तो उन्होंने बड़ा आदर-सत्कार किया; परन्तु स्वामीजीका स्वभाव ही मान-प्रतिष्ठासे दूर भागने का था। स्थानपर लौटकर उन्होंने सेवकको डांटा और कहा—'तुमने रस ही बिगाड़ दिया।' इसके बाद बहुत दिनों तक स्वामीजी वहाँ दर्शन करने नहीं गये। महन्तजीके स्मरण करने पर—सेवकसे कहला भेजा कि वहाँकी मान-प्रतिष्ठासे मुझे संकोच होता है। महन्तजी स्वामीजीके निर्मान स्वभावको जानकर बड़े प्रसन्न हुए और सन्देश भेजा—'जैसे आपको प्रसन्नता हो, हम वही करेंगे।' फिर स्वामीजी पहिलेकी ही भांति वहाँ दर्शन करनेके लिये आने-जाने लगे।

उदासीन महामण्डलेश्वर वेददर्शनाचार्य प्रज्ञाचक्षु स्वामी श्रीगङ्गेश्वरानन्दजी महाराजसे स्वामीजीका सिन्धसे ही परिचय था। उनका प्रगाढ़ पाण्डित्य एवं आश्चर्यजनक मेधा देखकर स्वामीजी बहुत प्रसन्न होते। उन दिनों श्रौतमुनि-निवासाश्रम बननेकी चर्चा चल रही थी और महाराज सिन्धी धर्मशालामें विराजमान थे। दर्शन-सत्सङ्गके प्रसङ्गमें स्वामीजीने कहा—'अब तो आप सर्वदा वृन्दावनमें ही

निवास करेंगे ?' महाराज बोले—'मैं तो श्रीबांकेविहारीजीका सिपाही हूँ। वे जहाँ रखेंगे, वहीं रहूँगा।' स्वामीजीने कहा—'रसिक सन्त कहते हैं कि दूसरे देशमें भजन करना और वृन्दावनमें सोना समान है।' महाराज बोले—'यह वचन धामकी महिमाका द्योतक है। इसका सहारा लेकर आलसी नहीं होना चाहिये। इस वचनका यह आशय ग्रहण करना चाहिये कि जहाँ सोना भी भजनके समान है, वहाँका भजन कितना महत्त्वपूर्ण होगा।'

श्रीवृन्दावनमें दावानलकुण्डके पास श्रीउड़ियाबाबाजी महाराजका आश्रम है। यह आश्रम कथा, सत्सङ्ग, भजन, कीर्तन, रासलीला, रामलीला आदिके लिये प्रसिद्ध है। उन दिनों श्रीउड़ियाबाबाजी महाराज तथा श्रीहरिबाबाजी महाराज, दोनों ही यहाँ विराजते थे। श्रीस्वामीजी भी कभी कभी कथा-लीला आदिमें आते, दोनों संतोंका दर्शन करते, उनके घनिष्ठ प्रेम-सम्बन्ध एवं अनुभवपूर्ण बातचीत देख-सुनकर गम्भीर सुखका अनुभव करते।

एकदिन किसी सेवकने श्रीस्वामीजीसे पूछा—'श्रीबाबाजी महाराज कथा-रासमें झोंटा क्यों खाते हैं ? उन्हें नींद तो नहीं आती है ? श्रीस्वामीजी सन्तोंके बड़े पारखी थे। एकबार देखकर ही वे उनकी स्थितिको पहिचान लेते थे। उन्होंने कहा—'पागल ! तुम समझते नहीं हो। वे आत्मानन्दमें निमग्न हैं। जहाँ इन्द्रियां शिथिल पड़ जाती हैं, मन-बुद्धिका लय होजाता है, अपना व्यक्तित्व भूल जाता है,

उसी सुख-सिन्धुमें बारबार उन्मज्जन-निमज्जन करनेके कारण वे झोंटे लेते हैं। मानो परमानन्दके झूलेमें झूल रहे हों।'

• श्रीजीके बगीचेमें गीताप्रेसके संस्थापक श्रीजयदयालजी गोयन्दकाका सत्सङ्ग हो रहा था। उनके साथ मैं भी आया हुआ था। उन दिनों मेरा नाम शान्तनुविहारी था और मैं 'कल्याण' के सम्पादक मण्डलमें था। सेठजीके सत्सङ्गमें सदाचारपूर्ण निष्काम कर्मकी, ऐश्वर्यप्रधान भक्तिकी एवं तत्त्वज्ञानकी चर्चा हुआ करती है। वृन्दावनके रास-विलास मधुर प्रेम अथवा कान्तासक्तिकी बात वे प्रायः नहीं करते हैं। इसीलिये बीच बीचमें कभी कोई प्रसङ्ग आनेपर मैं वृन्दावनी मधुर उपासनाकी कुछ बात कर दिया करता था। श्रीभक्तकोकिलजी भी उस सत्सङ्गमे उपस्थित थे और इस चर्चामें उन्होंने बहुत आनन्द पाया। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ—मानों पहिले से ही हमारी उनकी कोई गाढ़ी पहिचान है। स्वामीजीके हृदयमें प्रेरणा हुई और उन्होंने अपने सत्सङ्गियोंसे मेरे भाषणके सम्बन्धमें प्रशंसा-सूचक बात कही और अपना एक सेवक मेरे पास भेजा, मुझे अपने आश्रममें बुलानेके लिये। उस समय 'कल्याण' के कामसे मुझे रतनगढ़ जाना था, इसलिये बादमें कभी आनेकी बात कहकर चला गया। कुछ ही समय बाद मेरा नाम बदल गया, वेश-भूषा बदल गयी, कपड़े सफेदसे लाल होगये और मैं स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती बनकर महाराज श्रीउड़िया-बाबाजीके चरणोंकी शरणमें रहने लगा। एकदिन श्रौतमुनि-

निवासमें वार्षिकोत्सवपर व्याख्यान दे रहा था, जब श्रीस्वामीजीने मुझे पहिचान लिया और बस फिर क्या पूछना—'प्रेमसे घुटने लगी।'

श्रीमहाराजजीके आश्रममें हंसदूत और आनन्द वृन्दावनचम्पूकी कथा होती थी। स्वामीजी प्रायः प्रतिदिन सुननेके लिये आते। जब मैं कथा कहकर अपनी कुटियामें आता, तब स्वामीजी भी आ जाते और सत्सङ्ग होता। वे मेरे पैर अपनी गोदमें ले लेते और दबाते रहते।

एकबार उन्होंने मुझसे अपने निवासस्थानमें चलनेके लिये कहा। मैंने कहा—'श्रीमहाराजजीसे पधारनेकी विनय कीजिये। उनके साथ चलना अच्छा रहेगा।' स्वामीजीने कहा—'उनसे हमारी पहिचान नहीं है। हमारी विनती मानें, न मानें।' फिर मैंने भी उनके साथ जाकर श्रीमहाराजजीसे प्रार्थना की। वे मान गये। श्रीस्वामीजीने स्वागत-सत्कारके लिये बड़ी बड़ी तैयारियां करायीं। स्वागतके गीत गाये गये। नामसङ्कीर्तन हुआ। स्वामीजी श्रीमहाराजजीके चरणोंको सेवककी भांति अपनी गोदमें लेकर बड़े आदर और प्यारसे गद्गद् कण्ठ बोले—'महाराजजी! आपके उपदेशोंमें पढ़ा है कि भक्तोंका प्रारब्ध मिट जाता है; परन्तु शास्त्रोंमें प्रारब्धको अमिट बताया है।'

श्रीमहाराजजी—'प्रारब्ध तो केवल कर्मदृष्टिसे है। ज्ञानदृष्टिसे शरीर, पूर्वजन्म और उत्तरजन्म सब प्रतीति मात्र हैं। केवल ब्रह्म-ही-ब्रह्म सत्य है। भक्तकी दृष्टिसे सब अपने प्यारे

प्रभुकी लीला है। वे कर्मके अधीन नहीं हैं। कर्म जिसके अधीन हैं, वह कर्ता जीव भी उन्हींके अधीन है। इसीलिये वे चाहे जैसी लीला करते रहते हैं। सब उन्हींका खेल है—स्वांग है और वही हैं। इसलिये न भक्तका प्रारब्ध है और न उसका भोग।'

स्वामीजी—'भक्तिका क्या लक्षण है ?'

श्रीमहाराजजी—'हर हालमें खुश रहना ही भक्ति है। प्रसाद ही भक्ति है। वह प्रसन्नता सदा तभी रह सकती है, जब मनमें कोई इच्छा न हो और प्रभुका प्रेमपूर्ण चिन्तन होता रहे।'

श्रीस्वामीजी—'गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी निर्गुणको सुलभ और सगुणको दुर्लभ बताते हैं, सो कैसे ?'

श्रीमहाराजजी—'सगुण भक्तिमें सर्वदा पराधीन होकर रहना पड़ता है। ऊँचीसे ऊँची अवस्था होनेपर भी अपने स्वामीके सामने शील-संकोच, भय-विनय और सेवासे युक्त रहना है और निर्गुण पक्षमें स्वतन्त्रता तथा आत्मसुख है। तर्कप्रधान पुरुष निर्गुण स्वरूपका अनुसन्धान करता है और श्रद्धा-सम्पत्तिसे झुका पुरुष सगुण भगवान्‌के चरणोंकी शरण ग्रहण करता है। निर्गुण अदृश्य है, इसलिये उसकी किसी क्रियापर दृष्टि नहीं पड़ती। सगुण प्रत्यक्ष है, इसलिये उसकी बाह्य चरित्र एवं क्रियापर दृष्टि पड़ती है और श्रद्धाका रहना कठिन हो जाता है। सत्ययुगमें सद्गुरुको ही सगुण साकाररूप मानकर सेवा-पूजा की जाती थी। जब जीवोंकी

दृष्टि क्रियापर जाने लगी और तर्क-वितर्क उठने लगे, तब ऋषिमुनियोंने जीवोंके कल्याणार्थ प्रभुके अवतार एवं अर्चाविग्रहकी निष्ठा प्रगट की। निर्गुण कारण है और सगुण कार्य इसमें भी सीपसे मोतीके समान कार्यकी ही प्रधानता है। भक्तों एवं शरणागतोंकी सहायता तो वही करता है। लकड़ी काम नहीं देती, अग्निसे रसोई बनती और प्रकाश होता है।'

श्रीस्वामीजी—'प्रेमका स्वरूप क्या है?'

श्रीमहाराजजी—'नारद भक्तिसूत्रमें प्रेमका स्वरूप अनिर्वचनीय बतलाया है। अनिर्वचनीयका भाव यह है कि यही है, ऐसा ही है, इतना ही है, इतनेमें है' इसप्रकारकी बात जिसके विषयमें न कही जा सके और न सोची ही जा सके। जैसे हँसना भी प्रेम है, रोना भी प्रेम है, मौन होकर बैठना भी प्रेम है और इससे परे भी प्रेम है। किसी देशमें, किसी कालमें, किसी वस्तुमें, किसी व्यक्तिमें, क्रियामें, भावमें जीवमें, ईश्वरमें, कहीं भी प्रेमको मर्यादित नहीं किया जा सकता। पिटना भी प्रेम है—पीटना भी प्रेम है। मरना भी जीना भी। जुड़ना भी बिछुड़ना भी। सब कुछ है और सबसे परे। फिर भी प्रेमियों की रहनी देखकर ऐसा मालूम पड़ता है कि प्रेमकी अभिव्यक्ति है सेवा। निरन्तर प्रियतमकी सेवामें सावधान रहकर चाहे जैसे हो, उन्हें सुख पहुंचाना, यही प्रेमका मूर्त स्वरूप है। इसीसे सच्चे प्रेममें लय, समाधि, मोक्ष और आत्मसुखकी भी अपेक्षा नहीं है। इतना ही नहीं,

सच्चे प्रेमी प्रेममें इन्हें विघ्न समझते हैं।

'एक समय दारुक बड़े प्रेमसे अपने प्रियतम प्रभु श्यामसुन्दरको पंखा झल रहे थे। प्रियतमकी अनुपम शोभा-माधुरी और सेवा-सुखकी प्रगाढ़तासे प्रेम-समाधि लगने लगी। हाथसे पंखा छूटकर गिरने ही वाला था, कि वे सावधान होगये और उस प्रेमानन्दका भी तिरस्कार कर दिया जो सेवामें बाधा डालता है।'

धीरे धीरे श्रीस्वामीजीका श्रीमहाराजजीके साथ सम्बन्ध घनिष्ट होता गया। प्रायः श्रीमहाराजजीको वे अपने आश्रममें ले आते। आनन्द, उत्सव, नृत्य, सङ्कीर्तन, वचन--विलास होता। श्रीमहाराजजी अपने करकमलोंसे फल और मिठाईके थाल-के-थाल प्रसाद लुटाते। सत्सङ्गी बन्दरोंकी तरह छीनाझपटी करते। नयी नयी बोली बोलकर, स्वांग धारण कर श्रीमहाराजजीको हँसाते। भोजन होता। श्रीमहाराजजीके वचनामृत पान करके सब लोग आनन्दित होते। प्रातःकाल गीताकी कथापर श्रीस्वामीजी प्रायः आया करते और श्रीमहाराजजीके अनमोल बोल सुनकर गद्‌गद् होजाते।

एकबार गुरुपूर्णिमाके पर्वपर दावानलकुण्डस्थित श्रीकृष्णआश्रममें संत और सत्सङ्गियोंका अपूर्व समागम हुआ। श्रीमहाराजजीकी पूजाके पश्चात् एक महात्माने प्रश्न किया—'गीतामें श्रीभगवान्‌ने एक श्लोकमें कहा है कि मैं धर्मका संस्थापन करनेके लिये अवतार स्वीकार करता

हूं और अन्तिम श्लोकमें कहते हैं 'कि तुम सब धर्मोंको छोड़कर मेरी शरणमें आ जाओ।' ये दोनों वचन परस्पर विपरीत प्रतीत होते हैं। इनका समन्वय-सामञ्जस्य क्या है?'

श्रीमहाराजजीने कहा—'पहिले श्लोकमें भागवतधर्मको स्थापनाके लिये अवतार लेनेको कहते हैं और अन्तिम श्लोकमें लौकिक धर्म, इन्द्रिय धर्म एवं मनोधर्मका परित्याग करके; सारे संकल्प-विकल्प, संशय-विपर्यय मिटाकरके अपनी शरणागति अर्थात् भागवतधर्म ग्रहण करनेकी आज्ञा देते हैं। इसीमें दोनोंका स्वारस्य है।' इसके बाद बहुत देरतक सत्सङ्ग होता रहा। श्रीमहाराजजीने कहा—

'मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय'

गीताका यह श्लोक मुझे बहुत प्यारा लगता है। इसके भावका निरूपण करते हुए कहा—'मनसे भगवान्‌के सम्बन्धमें ही भावना करनी और बुद्धिसे उन्हींका विचार करना, यही उनके प्रति अर्पण है। मन और बुद्धि ईश्वरसे ही प्रकट हुए हैं, इसलिये उन्हें उनके ही नाम और रूपमें डुबा ले। जैसे मिट्टीका डला मिट्टीमें, जल समुद्रमें, अग्नि वायुमें और वायु अपने कारण आकाशमें लीन होता है, वैसे ही मन और बुद्धि ईश्वरमें लीन हो जाते हैं। 'संकल्पात्मक चित्त ही सर्प है, जब भक्तिसे परमात्मरूप रज्जुका दर्शन होता है, तब वह अपने आप ही मर जाता है। 'सोऽहं' भाव भी एक प्रकारकी उपासना ही है। यह आत्मसाक्षात्कार नहीं है। जैसे जानकार और अनजान दोनों एक ही वस्तुको देखते हैं, पहिला,

जिसको रज्जुके रूपमें देख रहा है, उसीको दूसरा सांप समझ रहा है। इसी प्रकार वस्तु एक ही है, ज्ञानी उसे ब्रह्म जानता है और अज्ञानी उसे ही संसार मानता ।'

'जो निर्गुण ब्रह्मकी उपासना करते हैं, बोध होनेपर उनकी जीव-ग्रन्थि खुल जाती है। वे व्यापक ब्रह्मसे अभिन्न हो जाते हैं। जो वात्सल्य, शृङ्गारादि रसोंके उपासक हैं, वे मुक्त जीव हैं। पहिले साक्षीमें वर्तते हैं, दूसरे चिदाभासमें। जिस वृत्तिमें ग्राह्य-ग्राहक भाव नहीं है, वह वृत्ति अविनाशी ईश्वर स्वरूप है। वह उत्पन्न नहीं हुई है। जैसे सर्पकी कल्पना होनेसे पहिले रज्जु है उसमें कोई संकल्प—किसीप्रकारकी स्फुरणा नहीं है। कोई कहते हैं—ब्रह्मज्ञान गुरु-शास्त्र-जन्य वृत्ति है; परन्तु गुरु-शास्त्र तो केवल आवरणभंग करते हैं।'

श्रीमहाराजजीके वचनामृतमें स्नान करके स्वामीजी को बहुत ही आनन्द हुआ। वे प्रफुल्लित होकर बोले—'आज कोटि-कोटि गङ्गामें स्नान किया है। बड़े सौभाग्यसे यह संतसमागम मिला है।' स्वामीजी अपने सत्सङ्गमें कहा करते—'हमें भगवान्‌के भी दर्शनकी उतनी इच्छा नहीं होती, जितनी श्रीमहाराजजीके दर्शनकी उत्कण्ठा रहती है।' श्रीमहाराजजीकी कथासे लौटकर श्रीस्वामीजी अपने सत्सङ्ग-समाजमें उनके वचनामृतको नये नये भावोंके प्यालोंमें भर भर कर सबको पिलाते और नवीन नवीन युक्तियोंसे अनुमोदन करते।

दिनोंदिन दोनोंका स्नेह सम्बन्ध गम्भीर होता गया।

श्रीमहाराजजी कृपा करके कहा करते थे—'पहिले भी हमारा कोई घनिष्ठ सम्बन्ध रहा होगा। कहां उड़ीसा, कहां सिन्ध ? श्रीवृन्दावनमें आकर कैसे मिल गये।' श्रीमहाराजजीका कृपावात्सल्य अपने ऊपर देखकर स्वामीजी बहुत आह्लादित होते और श्रीस्वामी आत्माराम साहबकी कृपाका अनुभव करते।

आश्रममें नित्य-निरन्तर कथा-कीर्तन, रास-विलासका मङ्गल महोत्सव देखकर उन्हें महर्षि वाल्मीकिके आश्रमके शान्तिमय दृश्यका प्रत्यक्ष होता। श्रीस्वामीजी बार बार आश्रममें आया करते, क्योंकि श्रीमहाराजजी श्रीस्वामीजीके सङ्कोची स्वभावको जानकर कोई बाहरी आदर-सत्कारका बर्ताव नहीं करते थे। कथामण्डपमें आकर वे चुपचाप एक कोनेमें बैठ जाते। सेवकोंको भी अपने पास नहीं बैठाते। कथासत्सङ्गके बाद श्रीमहाराजजीकी कुटियामें धरती पर बैठ जाते और उनके चरणकमल अपनी गोदमें लेकर चाँपते रहते। जब आते, तब कुछ-न-कुछ खानेकी चीज भी अवश्य लाते। सेवक भी फल मिठाई आदि लाते। श्रीमहाराजजी अपनी सहज मस्तीसे सब लुटाते जाते। जब स्वामीजी प्रार्थना करते—'आप भी कुछ स्वीकार कीजिये।' तब श्रीमहाराजजी बड़े स्नेहसे कहते—'आपकी दी हुई 'कोकी' अपने खानेके लिये छिपाकर रखी है। हमें औरोंको खिलानेमें बहुत सुख मिलता है।' सत्य है खानेका आनन्द जीवका है और खिलानेका आनन्द ईश्वरका। जिसको खिलानेका स्वाद

मिल गया, उसका खुद खानेका स्वाद फीका पड़ गया। एकबार श्रीस्वामीजीने खानेके लिए कुछ पिश्ते दिये। जब श्रीमहाराजजी प्रेमसे पाने लगे, तब एक पिश्ता मुखसे सरक कर तख्तके नीचे फर्श पर जा पड़ा। श्रीस्वामीजीने झुककर आदरसे उठा लिया और प्रेम-प्रसाद समझकर बहुत हर्षित हुए; मानो कोई सम्पत्ति मिलगई हो।

एकदिन प्रातःकाल फाटकके ऊपर बरामदेमें श्रीमहाराजजी गीताका प्रसङ्ग कह रहे थे। जन्मसिद्धका निरूपण किया। एक सज्जनने प्रश्न किया—'क्या अब भी कोई जन्म-सिद्ध पुरुष है?' श्रीमहाराजजीने उमङ्गमें भरकर पास ही बैठे श्रीस्वामीजीके गलेमें भुजा डाल दी और कहा— 'हमारे सिन्धी साईं पूर्णतः जन्म-सिद्ध पुरुष हैं।' सचमुच साईंका शरीर कुछ विलक्षण ढंगका था। उनके समान विशाल उभरे और रतनारे नेत्र मेरे देखनेमें कहीं नहीं आये। ऐसे नेत्रोंका वर्णन केवल कथा वार्तामें ही सुननेमें आता है।

जब श्रीमहाराजजी कभी श्रीजीकी बगीची अथवा कलिन्द-नन्दिनीके पावन पुलिनपर जाकर विराजते तो स्वामीजी भी उन्हें ढूंढते हुए पहुंच जाते और घंटों तक श्रीमहाराजजीके सत्सङ्ग-रसका आनन्द लेते रहते। श्रीमहाराजजी अपनी पूर्वावस्थाकी विचित्र विचित्र घटनायें सुनाते और भिन्न भिन्न सन्तोंके मिलनकी मधुर घटनायें बड़े उल्लाससे हँसते हँसते बताते।

श्रीमहाराजजी कहते थे—'साधुको हाट, घाट और

बाटपर नहीं बैठना चाहिये। किसी व्यसनमें नहीं फँसना चाहिये। एक साधुको दूध पीनेकी आदत पड़ गयी। एकबार वर्षाके कारण दूध नहीं मिला, तब वह दूध पीनेके लिये नदी तैरकर दूसरे पार गया। साधुको सकाम गृहस्थोंके घर भी भोजन न करके, टूक-टूक माधुकरी मांगकर खाना चाहिये। जो मिले, सो पानीसे धो दे; सब एकमें मिलाकर स्वादका ख्याल किये बिना भूख मिटाना चाहिये। भूख एक रोग है, भोजन उसकी दवा। साधुरूपी गायको सकाम पुरुष भोजनका चारा देकर तपस्यारूपी दूध दुह लेते हैं।'

एक साधुने पूछा—'महाराजजी! माधुकरी भिक्षा करनेमें दो तीन घण्टे व्यर्थ जाते हैं, विक्षेप होता है।'

श्रीमहाराजजी—'साधुको केवल घण्टे दो घण्टे भिक्षाके लिए यत्न करना पड़ता है, बाइस घण्टे निश्चिन्त भजन करनेका मौका मिलता है; संसारियोंका तो सारा जीवन ही खान-पानकी चिन्तामें व्यतीत हो जाता है।'

एकने कहा—'माधुकरी भिक्षा मांगते समय लोग अपमान करते हैं।'

श्रीमहाराजजी—'अपमानसे तपस्या बढ़ती है, और आदरसे क्षीण होती है। इसलिये जहाँ आदर मिलता हो, वहां न जाकर अनादरके स्थानपर प्रतिदिन जाना चाहिये। अपमान सहन करनेसे एक आन्तरिक आनन्द प्राप्त होता है। इसलिये बर्दाश्त करना सीखो। एकदिन मैं किसी सेठकी बैठकमें माधुकरी मांगने गया। सुन्दर कालीन पर पाँवकी

धूलि लग जानेसे वह मुझे फटकारने लगा। मैंने अपने चद्दरेसे कालीन साफ कर दिया और चला गया। एकबार किसी किसानके घर माधुकरी मांगने गया। वह बोला—'इतने मोटे तगड़े हो, कमाकर क्यों नहीं खाते?' मैंने कहा—'कोई काम नहीं मिलता।' उसने कहा—'घासकी कुट्टी काटो।' मैं काटने बैठ गया, तब कहीं जाकर रोटी मिली। मैंने किसीके घरमें बच्चे खेलाये हैं, धनिया-मिर्च कूटी है।'

श्रीमहाराजजीका स्वभाव बड़ा विलक्षण था। एकबार दिल्लीमें एक किरायेदारने उन्हें भिक्षाके लिये निमन्त्रित किया। वे अपने पच्चीस तीस सेवकोंके साथ पांच सात मील पैदल चलकर वहां पहुंचे। मकान मालिकके नौकरोंने भीतर जानेसे रोक दिया। वे वहांसे लौट पड़े। सत्रह बार किरायेदार उन्हें थोड़ी थोड़ी दूरसे लौटाकर ले गया और नौकरोंने रोक दिया। इस क्रियामें कई घण्टे लगे; परन्तु उन्हें तनिक भी विक्षेप न हुआ।

श्रीमहाराजजीकी ऐसी मधुर बात सुनकर भक्त-कोकिलजी बहुत गद्गद हो जाते। उनका अनुभव, समता, असङ्गता, निःस्पृहता, सहिष्णुता, निर्मानता, सरलता, आसनकी स्थिरता, बहुत कम नींद लेना, दूसरोंके भलेके लिये परिश्रम आदि महापुरुषोंके विलक्षण लक्षण देख कर वे श्रीमहाराजजीकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते अघाते नहीं थे। स्वामीजी सच्चे सन्तोंके मिलन-आनन्दमें अपनी मान-बड़ाई, प्रतिष्ठा-पूजा, यश, किसी बातकी भी परवा नहीं करते थे। वे

आपने श्रीगुरुदेवकी आज्ञाके अनुसार सदा सत्यके पुजारी रहे।

श्रीस्वामीजो जब सिन्ध छोड़ कर श्रीवृन्दावनधाममें आये, तभी भगवत्प्रेरणासे उनके मनमें यह शुभ संकल्प उदय हुआ कि इस गोलोकधामके मनोरम उपवन वृन्दावनमें हमारे प्राणाराम श्रीसीतारामके आराम और विहारके लिये एक अभिराम कुटीर और एक हरी भरी पुष्पवाटिका होनी चाहिये। थोड़े ही समयमें श्रीविहारीजीके पड़ोसमें अहीरपाड़ेके 'शुक-भवन'से लगे हुए स्थानमें एक छोटी सी कुटिया और छोटी सी फुलवाड़ी बनवा दी। सेवकोंने वहुत आग्रह किया कि आसपासकी वहुत सी भूमि लेकर वड़े बड़े कमरे वनायें; परन्तु वैराग्य-रागरसिक अन्तराराम श्रीभक्तकोकिलजीने स्वीकार नहीं किया। उन्होंने कहा—'चार दिनकी चाँदनी इस जिन्दगीके लिये विस्तार करना उचित नहीं है। जीवको केवल निर्वाहमात्रके लिये ही प्रवृत्त होना चाहिये। अधिक विस्तारसे मन बढ़ जाता है। बाह्य विस्तार प्रभुको पसन्द नहीं है। इसलिये सदा हृदयमें हरिरसकी वृद्धि करनी चाहिये। उसी स्थानका नाम रखा 'श्रीसुखनिवास' नामके सम्बन्धमें श्रीस्वामीजीकी यह भावना थी कि सुखस्वरूप श्रीयुगलसरकार यहां सदा सुखसे निवास करें। वहां एक दोहा भी लिख दिया—

'सुखनिवास श्रीसियरामको रच्चो गरीब श्रीखण्ड।'

श्रीस्वामीजीकी भावनाके अनुसार श्रीजनकपुर एवं श्रीअयोध्याके लीला स्वरूप प्रायः वहीं आया करते हैं और

मधुर एवं रहस्यमय लीला करते रहते हैं। अनेक महापुरुषोंने वहां पदार्पण किया है और सब यही कहते हैं कि यहां आनेपर चित्तको अपूर्व आनन्द और शान्ति मिलती है।

श्रीस्वामीजी व्रजवासियोंके साथ बड़े प्रेम एवं श्रद्धासे सगे सम्बन्धियोंके समान व्यवहार करते थे। शुभ पर्व तथा विवाहादिके अवसरों पर उन्हें लड्डू बाँटते। बरसाने और नन्दगांवके सभी लोगोंको 'गुड़ लड्डुआ' खिलाते। वृक्षोंके थाले बनाते, कुयें खुदवाते, प्याऊ बैठाते, रासलीला करवाते। एकबार सावनके झूलोंमें 'सेवा-कुञ्ज'के पास श्रीगिरिराजजीके मन्दिरमें बड़ी सजावट हुई। श्रीस्वामीजीका एक प्रेमी वह अद्भुत दृश्य देखकर मुग्ध हो गया और दौड़ता हुआ स्वामीजीके पास आया। वह हाथ पकड़ कर अत्यन्त आग्रह करने लगा कि अभी चलकर दर्शन कीजिये। स्वामीजी गये। दर्शन करके बोले—'सजावट तो सुन्दर है;परन्तु हृदयके मन्दिरमें झांक कर देखो, कैसी सुन्दर, इससे भी कोटिगुना अधिक मनोहर झांकी है। कोटि कोटि सूर्यचन्द्रसे अधिक प्रकाश है। रङ्ग-विरङ्गे हीरा-मणिसे जटित सुन्दर प्रासाद हैं। सौरभ और सौन्दर्यसे सम्पन्न हिंडोले पर युगलसरकार अखण्ड झूला झूल रहे हैं। बाहरका कोई भी दृश्य उसकी तुलनामें नहीं आ सकता।' श्रीस्वामीजीकी दिव्य वाणी सुनकर वह प्रेमी भी अलौकिक आनन्दका अनुभव करने लगा।

एकबार अधिक गर्मियोंके कारण श्रीस्वामीजीकी इच्छा कुछ दिनके लिए हरद्वार जाने की हुई। उनका यह

स्वभाव था कि जो कहीं भी जाते—श्रीविहारीजीसे आज्ञा लेते। श्रीविहारीजीको वे साक्षात् भगवान् मानते थे। उस दिन जब मन्दिरमें पहुंचे, पट बन्द हो गया। श्रीस्वामीजीके मनमें यह भाव आया कि बांकेविहारीलालको मेरा वाहर जाना नहीं रुचता। स्वामीजी लौट आये और एकान्तमें श्रीवृन्दावनेश्वर-हृदयेश्वरीसे मधुर मधुर पद गा गाकर विनय करने लगे। उसका भाव यह है—'मेरी प्यारी मैया! आप मेरे हृदयके मर्मको जानती हैं। आप रूठें नहीं। मैं जानती हूं कि आपका भाव न होता तो आपके अमर सुहाग श्रीबांकेविहारीजी कभी पट बन्द नहीं करते। आप सर्वेश्वरकी स्वामिनी होने पर भी कृपा और ममतावश शरणागतोंकी रुचि रखती हैं। आपके दिल-दूलह रूठ गये हैं। आप कृपा-करके उन्हें मनाइये।' श्रीकिशोरीजीने कहा—'आप पहिले हरद्वार तो घूम आइये; फिर बातचीत करेंगे।' श्रीस्वामीजीने कहा—'मां! क्या मैं श्रीवृन्दावनसे अधिक किसीको समझती हूं? त्रिलोकीका त्रैकालिक सुख व्रजरसके एक सीकरके साथ भी तुलना करने योग्य नहीं है। मैं तो सदा सर्वदा आपके नामकी छत्रछायामें रहती हूं। श्रीवृन्दावनके प्यारे स्वामी! आपने व्रजकी रसभरी हरियालीमें नित्य नये रसरङ्ग दिखाये। अब कभी न उतरने वाले नामके रङ्गसे मेरे हृदयकी चोली रङ्ग दीजिये और अपनी कृपाके कोटमें बसाइये; जहां आपकी करुणावर्षासे भीगती हुई मुस्कराती रहूं।'

श्रीस्वामीजी प्रायः धूपमें ही टहलते थे। एक प्रेमीने

एकान्तमें विनती की—'कृपा करके प्रातःकाल ही घूमनेके लिये चला कीजिये।' श्रीस्वामीजीने कहा—'हमारे स्वामी श्रीरामचन्द्रजू बड़ी कड़ी धूपमें जंगलोंमें विचरते हैं, धूपमें चलनेसे इस बातका अनुभव होता है।'

श्रीस्वामीजीके नेत्रोंके सामने प्रियतमके लीलासमाजके दृश्य छाये ही रहते थे। एकदिन वे मोतीझीलकी ओर आ रहे थे। मार्गमें हरा भरा बटवृक्ष देखकर उन्हें उस बटवृक्षकी याद आयी, जिसके नीचे वनयात्राके समय प्रथम रात्रिमें युगलसरकारने शयन किया था। उस समय उन्हें इस समाजका दर्शन हुआ। स्थान गह्वर वन,वटवृक्षकी घनी छाया. समय प्रातःकाल। दृश्य—प्राणनाथ प्रियतमके मधुर उत्सङ्गमें मस्तक रखकर श्रीप्रियाजी विश्राम कर रही हैं। थकानके कारण गहरी निद्रा में हैं। श्रीप्रियाजीके कुम्हलाये हुए मुखको प्राणप्यारे श्रीरामचन्द्र व्याकुलतासे देख रहे हैं। उसी समय वनकी अधिष्ठात्री देवी अपनी सहेलियोंके साथ विचरण करती हुई वहाँ आती हैं। उनके सिरपर श्रीस्वामिनीजीके चरण-कमलके नखचन्द्रका अग्रभाग लगा हुआ है, जो द्वितीयाके चन्द्रमाके समान चमक रहा है। यह नखचन्द्र एक भालूके बच्चेके पीछे दौड़ते समय नखसे अलग हो गया था। यह किसका नखचन्द्र है? इस उत्सुकता से ही वह वनमें घूम रही थीं। दूरसे ही श्रीस्वामिनीजीके चरणकमलोंका दिव्य प्रकाश देखकर समझ गयीं—'यह नखचन्द्र इन्हीं सौंदर्यनिधि-देवीका है।' वटवृक्षके पास आकर उस अनुपम सुकुमारताको

देखकर वे करुणा और प्रेमसे पिघल गयीं और पूछने लगीं—'हे साँवरे सुकुमार! तुम तो आँखोंमें बैठाने योग्य हो, तुम्हारा शुभ नाम क्या है?' तुम किस देशको अपने बिछोहसे व्यथित करके वनमें आये हो? यह वरवरणी कौन हैं? अपना सब परिचय हे श्यामलचन्द्र! सत्य सत्य बताओ!' श्रीरामचन्द्रजीने उत्तर दिया—'हे वनदेवियो! मैं आपको प्रणाम करता हूं। कौशलदेशके अयोध्यानगरसे हम आये हैं। रानी कौशल्याजीका लाल हूं। मेरा नाम राम है। हम तुम्हारे पाहुने बन कर तुम्हारे धाममें आये हैं।'

वनदेवियां—'यह कौन हैं? किस नगरमें इनका जन्म हुआ है? भूख और पथश्रमके कारण यह मुरझायी हुई मधुवेलिके समान जान पड़ती हैं, सुखमय प्रातःकाल है, पिक पञ्चम स्वरमें आलाप कर रही है, अब आप इनको जगाइये।'

श्रीरामचन्द्र—'यह हैं मेरी जीवितेश्वरी, मिथिला मानसरकी कुमुदिनी, चन्दन और चन्द्रमासे भी कोटिगुना शीतल 'श्रीसीतादेवी' यह निर्मल नाम है। भालूके बच्चेके पीछे दौड़नेके कारण थकावटसे सो गयी हैं। मुखपर मधुर मुस्कान है। आप आशीर्वाद दीजिये कि मैं अपनी प्राणप्रियाका मुख सर्वदा प्रसन्न ही देखूं। इनके दर्शन-आनन्दके सामने चौदहभुवनकी राज्यलक्ष्मी भी हम नहीं चाहते। हे वनदेवियो! अब आप मधुर स्वरसे मङ्गल गान गाओ जिससे चिरसुख-पालिता सुकुमारी राजकुमारी जागें। इस समय इनके साथ

कोई सखी सहेली नहीं है, वनके मनोहारी दृश्य देखनेके कौतुकसे यह सबको छोड़कर मेरे साथ अकेली ही चली आयी हैं।'

वनदेवियोंने कहा—'प्रियभाषी राजकुमार! यहांसे पास ही अमृतसलिला, कमलकुलमण्डिता, मरालीचुम्बिता बावली है। जिसमें स्नान करते ही सब क्लान्ति दूर हो जाती है। आपकी चिरसङ्गिनी अनुराग-सुहागसे सम्पन्न महारानी श्रीमैथिलीके तन मन प्राणकी श्रीहरि गुरु सन्त नित्यनिरन्तर रक्षा करें।'

यह लीलासमाज देखकर प्रेमोन्मत्त साईं कोकिल भावमें मग्न हो गये और वटवृक्षपर बैठकर यह आशीर्वाद गान गाने लगे—

श्रीभूनन्दिनी सौभाग्य भारो, वाणी सके न गाय।
जिस बेलामें श्रीजानकीचन्द्र जागे, उस बेला पै बलि जाय॥

कोकिलकी मधुर तान पर श्रीकिशोरीजी जग गयीं बावलीमें स्नान किया और लक्ष्मणके लाये हुए फलोंका मिल कर भोजन किया।

श्रीस्वामीजी वृन्दावनसे कभी-कभी नन्दगांव बरसाने भी जाया करते थे। महीने दो महीने वहाँ निवास करते थे। पंडित श्रीचतुर्भुजलालजी गोस्वामी, महात्मा श्रीनित्यानन्दजी-के साथ बहुत सत्सङ्गविलास होता। सन्ध्या समय श्रीयशोदा-कुंडपर तमालवृक्षकी छायामें बैठकर भगवत्-चर्चा होती। एक-दिन साईंने एक अत्यन्त अद्भुत दिव्य कथा सुनायी—'दिव्य धाम

गोलोक और सुषमासदन साकेतके अन्तरालमें एक परम-पावन उपवन है। हरे भरे वृक्ष, लहलही लतायें, रङ्ग-बिरंगे पुष्पगुच्छ, दूर्वामयी श्यामला भूमि, चहकते हुए पक्षी, छलाँग भरते हुए हरिण, गुञ्जार करते हुए भ्रमर, इठलाती हुई तितलियाँ, पञ्चमराग अलापती हुई कोकिला, गुद्-गुदाती हुई शीतल मन्द सुगन्धित वायु। सायंकालीन सूर्य अपनी अनुरागरञ्जित रश्मियोंसे मानो सम्पूर्ण उपवनपर गुलालकी होली खेल रहा हो। साकेतसे महारानी कौशल्या और गोलोकसे श्रीयशोदा-रानी अपने-अपने नन्हें-नन्हें रामलला और श्यामललाको लेकर वहाँ टहलने आयीं। जब दोनों माताएँ आपसमें मिलीं तब दोनों सांवरे सलोने मधुर शिशु भी एक दूसरेसे चिपट कर एक हो गये।

माताएँ मणिमय चारु चत्वर पर बैठकर अपने-अपने लालोंकी ललित-ललित लीलाका आलाप करने लगीं। दोनों ही लाल हरी-हरी दूबमें ललक कर, किलक कर, कुदक कर, दुबक कर, झूमकर, घूमकर, परस्पर करकमल चूमकर कमनीय क्रीड़ा करने लगे। वात्सल्यनिधि माताओंके लोचनोंने इन लावण्यलीलाधाम लालोंकी ललित लीलापर अपनी लोलता लुटा दी। वे निर्निमेष नेत्रोंके प्यालोंसे छक-छक कर छविसुधाका पान करने लगीं। तन, मन, प्राण आत्मा सब एक ही रङ्गमें रँग गये। समयका ध्यान न रहा। कलित केलि और छवि छटासे छकी दोनों माताएँ असावधानीसे एक दूसरेके शिशुको लेकर अपने अपने महलमें चली गयीं।

जब श्रीयशोदामैया श्रीरामलालको गोदमें लिये महलमें पहुँची सिंहपौरपर ही श्रीनन्दबाबा प्रतीक्षा करते मिल गये। रामलालने हाथ जोड़ सिर झुकाकर प्रणाम किया। भोजनके समय बाबाके समान ही आँख बन्द करके श्रीनारायणको भोग लगाया और स्वयं अपने हाथोंसे ग्रास उठाकर बाबाके मुँहमें देने लगे।

उधर श्रीकौशल्या महारानी कन्हैयालालको लेकर अपने महलमें पहुँचीं तो वे महाराज दशरथको देखते ही उछल कर उनके कन्धे पर चढ़ गये। भोजनके समय सागमें दाल और भातमें खीर डालने लगे तथा जब उन्होंने भोग लगानेके लिए आँख बन्दकी तब भोजनकी सामग्री उनकी दाढ़ीमें लपेट दी। महाराजने चौंक कर अपनी आँखें खोलीं और बड़े दुलारसे अपनी गोदमें बैठा लिया। लालाने दाढ़ी खींचना शुरू कर दी। बड़ी मुश्किलसे भोजनसंग्राम समाप्त होनेपर प्रतिदिनके समान ही महाराजने कहा—'लालजी! खड़ाऊं ले आओ।' नटखट कन्हैया छलांग भरकर खड़ाऊंके पास पहुँचे और दोनोंको ठोक-ठोक कर बजाने लगे। अपने राजकुमारकी यह चंचलता देखकर महाराजको बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने महारानीको बुलाकर पूछा—'हमारे राजकुमार तो कभी ऐसी चंचलता नहीं करते थे। आज क्या बात है? एकदिनमें ही नन्दनन्दनका इतना रङ्ग चढ़ गया?' महारानीने चौंककर भलीभाँति देखा भाला और कहा—'अहो! ये तो यशोदादुलारे गोपाललालजी हैं। उपवनमें

अदला बदली हो गयी है।' यह सुनते ही महाराजने अपूर्व उत्साहसे कन्हैयाको हृदयसे लगा लिया। मुख चूमकर सिर सूँघा और दोनों यशोदाजीके प्राणधन नैनोंके तारे श्यामसुन्दरको गोलोक पहुँचानेको चल पड़े।

गोलोकमें गम्भीर हृदय राजकुमार श्रीरामलालजी भोजनके पश्चात् स्वयं खड़ाऊं लाकर बाबाके चरणोंमें पहनाने लगे। यह अपूर्व स्वभाव देखकर व्रजराज श्रीनन्दबाबाने उन्हें गोदमें उठा लिया और विस्मय प्रकट करते हुए व्रजरानीसे कहने लगे—'भोरी महरि! आज लालाको क्या हो गया है? न खेल, न चंचलता ऐसा साधु स्वभाव तो कभी देखा ही न था। रात्रिमें लौटते समय बच्चेपर किसीकी छाया तो नहीं पड़ गयी?' भयभीत होकर श्रीयशोदाजीने लालाकी ओर देखा और पहचान लिया कि अहो! ये तो श्रीकौशल्याकिशोर राजकुमार श्रीरामलाल हैं। असावधानीसे उद्यानसे मैं इन्हें ले आयी। महारानी तथा महाराज व्याकुल होते होंगे चलकर इन्हें पहुँचाना चाहिये। बीच रास्तेमें रामदल और श्याम-दलका मिलन हुआ। सब खिलखिलाकर हँस पड़े और अपने-अपने बच्चोंको लेकर लौट आये। श्रीस्वामीजीके मुखसे यह लीलाविनोद सुनकर सब सत्सङ्गी हँस हँसकर लोट पोट होने लगे।

श्रीस्वामीजी प्रेमासवसे छके-छके व्रजकी वन वीथियोंमें तरु-लताओंकी हरियालीमें विचरण करते रहते। कई बार उन्हें दिव्य श्रीवृन्दावनधामके दर्शन हुए। वे अपने भावोंको

और दिव्य अनुभूतियोंको बहुत ही गुप्त रखते थे। इसलिये किसीको उनका पता नहीं चलता था। कभी-कभी प्रसङ्गवश अन्तरङ्ग प्रेमियोंमें कोई बात खुल जाती। उन्होंने ऐसा बताया था कि—'उस समय चारों ओर दिव्य वैष्णव तेज छा जाता है। प्रेममयी व्रजभूमि इसके लता वृक्ष, पशुपक्षी, कीटपतङ्ग, सब दिव्य दिखने लगते हैं। श्रीयुगलसरकारकी अङ्गसौरभसे दिग्दिगन्त सुरभित हो जाता है। मुनिजनमोहनी वंशीकी मधुर तानसे जड़चेतनके स्वभावमें परिवर्तन हो जाता है। अणु-अणुमें मधु क्षरण होने लगता है। वनराजि झूमने लगती है। युगलसरकारके नित्य निभृत निकुञ्जका आविर्भाव हो जाता है। युगलसरकार अपनी नित्यसिद्ध गोपियोंके साथ रसमें सराबोर होकर उन्मुक्तक्रीड़ा करते हैं। गोपियां अपने हृदयकी सम्पूर्ण अभिलाषा और लालसाको मूर्त रूप दे कर अपने जीवनसर्वस्व युगलको लाड़ प्यारके झूलेमें झुलाती है। निभृत निकुञ्जमें युगलका विहार होता है। नित्यसिद्ध और कृपासिद्ध सखियोंके सिवा और किसीको उस लीलाके दर्शनका अधिकार नहीं है। न वहाँ विरह है, न भ्रम है, न मान है, क्षण क्षण पर नवीन उल्लास है। प्रेम है, मिलन है, आनन्द है। युगलसरकार 'एक सरूप सदा दुइ नाम' पार्श्व परिवर्तन और रोमाञ्च आदिका व्यवधान भी नहीं है। नाम दो है। रूप परस्पर अदलते बदलते रहते हैं। स्वरूप एक है। प्रेम ही कर्म है और प्रेम ही भोजन। प्रेमकी वायु दोनोंके अङ्गोंमें सिहरन पैदा करती है। प्रेमके सङ्गीतमें दोनों मग्न

रहते हैं वहाँ केवल प्रेम-ही-प्रेमका साम्राज्य है। न राजा, न प्रजा, न ईश्वर, न जीव, न संयोग, न वियोग, बस रस-ही-रस है।

प्रेमियोंके बहुत पूछनेपर भी श्रीस्वामीजी अधिक कुछ नहीं बताते थे। अपने ग्रन्थोंमें उन्होंने श्रीदिव्य वृन्दावनके सम्बन्धमें बहुत कुछ लिखा है विस्तार भयसे यहाँ उल्लेख नहीं किया गया है।

श्रीस्वामीजीकी प्रेम-अवस्था दिनों-दिन बढ़ती ही गयी। उनके प्रतिक्षण वर्धमान, अत्यन्त सूक्ष्म, अनिर्वचनीय, सहज प्रेमकी अनुभूतिधारा इतनी अगाध हो गयी कि बाह्य शरीरादिकी क्रियापर ध्यान भी नहीं होता।

'मनमूसा पिंगल भया पी पारा रस राम।'

के अनुसार रसमयी प्रेमवीथियोंमें विचरण करते करते इन्द्रियोंके सहित मन निःस्तब्ध हो गया। मानो भ्रमर भ्रमरीके साथ गुञ्जन करना छोड़ कर मकरन्दमधुके पानमें तन्मय हो गया हो?

श्रीस्वामीजीको बचपनसे ही गरीबों और साधुओंको खिलाने पिलाने और कुछ देनेका बड़ा चाव था। अब तक उसका निर्वाह स्वभावके रूपमें परिणत हो चुका था। इसलिये प्रातःकाल ही सेवकोंके द्वारा मिठाई चावलादि भेज देते। वे ही जाकर बाँटते और आशीर्वाद लाते। वे स्वयं सुखनिवासकी छोटी सी फुलवारीमें आनन्दोन्मत्त हो अकेले हृदयकी वीणापर सनेहकी रसमयी तान छेड़कर प्रेममें

झूमते-झूमते घूमते थे। श्रीस्वामीजी वैसेही सङ्गीतकलामें अत्यन्त निपुण थे। तीन चार घण्टेके बाद सत्सङ्गी सेवकोंका समागम होता और प्रियतमकी मधुर चर्चासे सारा वातावरण मधुमय हो जाता। अब वे जब दूसरे तीसरे दिन महाराजश्री श्रीउड़ियाबाबाके दर्शनके लिये आश्रमपर आते तो मोतीझीलके एकान्त मार्गसे आते और बाहर-ही-बाहरसे लौट जाते। सुखनिवासमें बैठे बैठे उनके विशाल नेत्र प्रियतम-की किसी लीलाकी झाँकीमें इस तरह अटक जाते कि पलकें बहुत देरतक निःस्पन्द रह जातीं और अन्तरङ्ग प्रेमी किसी कार्यविशेषसे वहाँ आता जाता तो भी उन्हें पता नहीं चलता। उनका चित्त ऐसे गम्भीर रससिन्धुमें डूबा रहता कि शौचके समय बैठनेपर उन्हें यह भूल जाता कि हम शौचके लिये बैठे हैं। सावधान रहनेके लिये एक लकड़ी खटखटानी पड़ती थी। सेवकोंकी रहनीपर जो पहले सूक्ष्मदृष्टि रहती थी वह भी अब न रही। ताड़नाकी तो बात ही अलग है। वे क्षणभरके लिये भी उस प्रेमरसामृत महासमुद्रसे बाहर निकलना पसन्द नहीं करते थे। भोजनके समय दो प्रकारका शाक थालीमें परस दिया जाता तो स्वामीजी एक खाते दूसरा भूल जाते। याद दिलाने पर मुस्कराकर कहते कि यह तो हमसे भूल गया। कथासत्सङ्गमें भी अब ऐसी स्थिति हो गयी थी कि बहुत करके अपने सेवकोंसे ही कथा करवा कर सुनते थे और गम्भीर आनन्दमें मग्न रहते। उनके नेत्र प्रेमके नशेमें चूर रहते थे। सेवकोंके प्रश्न करने पर थोड़ेसे सार सारशब्दोंमें उत्तर दे देते थे और फिर अन्तरके रसमें डूब

जाते। अन्तमें श्रीरामचरित्रकी थोड़ीसी मधुर कथा कहते। उसकी शैली भी अब बदल गयी थी। पहले कथा कहते समय भिन्न भिन्न शास्त्रोंके सहस्रों श्लोकोंके प्रमाण दिया करते थे। श्लोकोंकी ऐसी धारा बँध जाती मानो वे कह रहे हों कि 'हमें कहिये हमें कहिये, परन्तु अब वैसी बात नहीं थी। अब तो प्रसङ्गके अनुसार उमङ्गकी जैसी तरङ्ग उठती उसी रसके रङ्गसे श्रोताओंके अन्तरङ्ग और अङ्ग-अङ्ग रङ्ग देते। सार-सार शब्दोंमें ही गम्भीर आनन्दकी वर्षा करते।

❀ श्रीनिकुंज प्रवेश ❀

'हे कारुण्यधाम मैया! वृन्दावनेश्वरी! आपका हृदय परम कोमल है। मेरा रोम-रोम अपने दिलदूलह प्यारे पार्थिविचन्द्रके नित्य विहारकी भूमिका दर्शन करनेके लिये उत्कण्ठासे तड़फ रहा है। श्रीस्वामिनीके चरणकमल ही हमारे सर्वस्व है, उन्हें हृदयसे लगानेके लिये मैं छटपटा रही हूं। अब थक गयी हूं, शरीर शिथिल होगया है अपनी स्वामिनीकी मधुर स्मृतिमें तड़फ-तड़फकर जब मेरा जीवन समाप्त हो जाय तब आप कृपाकरके मुझे अपनी गोदमें बैठाकर श्रीपार्थिविचन्द्रके पादपद्मोंमें पहुँचा देना। मुझ निर्बल बच्चीका भार आपको ही उठाना पड़ेगा। मुझे केवल आपका ही सहारा है।

हे सर्वेश्वरी जननी! जब ललित लड़ैती मिथिला राजकुमारी निजस्वामिनीकी दर्शनलालसासे मतवाली होकर पागलोंकी भाँति व्रजकी वनविथियोंमे, कुञ्ज-कुञ्जमें,

झुक-झुककर झाँकती हुई मैं आपके निभृत निकुञ्जमें पहुँच जाऊं तो मेरी दीन दशा देखकर, आप करुणासे द्रवित हो मेरी अंगुली पकड़कर, मेरी प्यारी अम्बाश्रीविदेहनन्दिनीकी जन्मभूमिकी मंजुल वृन्दावलीमें पहुँचा देना। वहाँ लताओंके झुरमुटमें बैठकर मैं उनकी रूपमाधुरीका पान करती रहूंगी और पञ्चमस्वरमें जी जानसे जी जी जानकी की जै जै मनाती रहूंगी।

हे श्रीवृन्दावननाथ पट्टमहिषी! जब मैं श्रीपार्थिवि-चन्द्रके प्रेमप्रवाहमें बहती हुई आपकी वृन्दावनभूमिमें अचेत होकर गिर पड़ू तो आप अपनी सहज वात्सल्यपूर्ण कृपादृष्टिसे मुझे उठाकर, हमारी अपनी स्वामिनीके चरणचिह्नोंसे अङ्कित कोमल स्निग्ध शीतल सुरभित रजःकणोंसे सुशोभित महलके आङ्गनमें पहुँचा देना। उनका स्पर्श प्राप्त करके मैं सचेत और कृतकृत्य हो जाऊंगी। श्रीभक्तकोकिलजी ऐसे ही भावसे पूर्ण सिन्धीभाषाके अनेक पदोंको कूजते रहते थे।

संवत् २००४ का श्रावण पुरुषोत्तम मास था। शुक्लपक्षकी द्वितीया तिथि शनिवार था। सन्ध्याके समय सर्वदाकी भाँति सत्सङ्गविलास होता रहा, भगवान् श्रीराम-चन्द्रके वनवासका करुण प्रसङ्ग चल रहा था, श्रीमहाराज गङ्गा पार होनेके लिये नौकापर सवार हुए और श्रीस्वामी-जीने कथा समाप्त की। वैसे उनका स्वभाव था कि शयनका प्रसङ्ग आनेपर जागनेकी कथा कह कर समाप्त करते थे। नौकारोहण होनेपर पार पहुँचाकर कथा रखते थे परन्तु

आज नौका चलानेका प्रसङ्ग कहकर कथा पूरी कर दी। उस दिन रात्रिको नित्य नियमसे भी अधिक सत्सङ्ग एवं हास-विलास होता रहा।

तृतीयाके प्रातःकाल तीन बजे ही जगे। पांच बजेतक प्रियाप्रियतमके ध्यान और गुणगानमें मग्न रहे बादमें शौच आदि क्रियासे निवृत्त होनेके पश्चात् श्रीस्वामीजीने मैयासे कहा—'आज हमारी तैयारी है।' ऐसा कहकर श्रीवृन्दावनेश्वरी श्रीराधारानीके सम्मुख बैठकर और उनके चरणोंमें दृष्टि लगाकर अत्यन्त गम्भीर स्वरसे 'श्रीराधा अम्मा! श्रीराधा अम्मा!!' यह मधुर नाम जपने लगे। मैयाका चित्त घबड़ा गया उसने कातर होकर पूछा—'शरीर तो ठीक है न?' स्वामीजीने कहा—'सब ठीक है।' 'मैयाने प्रार्थना की कि नीचेसे कुछ लोगोंको बुला लें?' श्रीस्वामीजीने कहा—'तुम बैठी रहो बहुतोंके आनेसे हल्ला-गुल्ला होगा।' मैयाने मुझे बुलानेके लिये पूछा। स्वामीजीने कहा—'उन्हें कष्ट देनेकी कोई जरूरत नहीं है।' वे फिर गद्‌गद कण्ठसे नामजप करने लगे। मैयासे न रहा गया उसने मेरे पास पूरनको भेज दिया और श्रीस्वामीजीके कुशलके लिये ईश्वरसे प्रार्थना करने लगी। सत्सङ्गी लोग वैद्यको लेकर ऊपर आये। स्वामीजीको किसीसे बातचीत करना अच्छा नहीं लगता था। मुट्ठी बाँधकर सबको चुप रहनेका संकेत किया। वैद्यजीने नाड़ी देखी वे आश्चर्यचकित होकर बोले—'नाड़ी तो है ही नहीं? नामोच्चारण कैसे हो रहा है? ऐसा तो मैंने कभी नहीं देखा है?' यह सुनकर सब व्याकुल हो गये। हितमूर्ति मैयाने साहस करके घरके सब रुपये और वस्तुएँ लाकर सामने रख दीं।

विनय करनेपर स्वामीजीने उत्साहके साथ जल लेकर ईश्वरार्पण किया। ऐसा करनेपर भी नामोच्चारण होता रहा। ध्यान अपने लक्ष्यमें ही रहा। शरीरमें कोई भी अमाङ्गलिक चिह्न नहीं आया। बिना हिचकी और बिना रुकावटके नाम जपका स्वर और भी मधुर होता गया। मुखारविन्दपर द्रिव्य तेज छाया हुआ था मानो प्रियतमके मिलनकी खुशी मुखारविन्दसे छलकी पड़ती हो। ऐसा मालूम पड़ता था कि स्वामीजी किसी ऊँचे सुखस्थानपर बैठकर यह सब कुछ कर रहे हैं और उन्हें बाहरका ध्यान नहीं है। उनका गम्भीर स्वर ऐसा जान पड़ता था मानो कहीं दूरसे आ रहा हो। नाम जप करते-करते अचल ध्यानके सिंहासनपर बैठे-ही-बैठे वे प्रियतमकी नित्यलीलामें प्रविष्ट हुए। अपने प्रियतम इष्टदेवका नाम छिपानेका जो उनका निष्काम प्रेमपण था अन्तमें भी उन्होंने उसका निर्वाह किया।

जिस समय पूरन मेरे पास पहुँचा मैं स्नान कर रहा था। मैं झटपट श्रीमहाराजजीसे वहाँ आनेके लिये कहकर गया। थोड़ी देरमें श्रीमहाराजजी पहुँचे उन्होंने सबको आश्वासन दिया—'घबड़ाओ मत साईं साहब तो ध्यानमग्न हैं।'

वास्तवमें श्रीभक्तकोकिलजी अब भी ध्यानमग्न हैं। भक्त भगवान्‌का एक प्यारा-प्यारा सुन्दर सलोना खिलौना है। वे ही उसको बनाते हैं। चाहे जैसे उसके साथ खेलते हैं। उसको अपनी छातीसे लगा लेते हैं। अपनेसे एक कर लेते हैं—और फिर कभी अलग नहीं करते हैं।
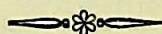
साईंकी गोदमें युगलसरकार

श्रीस्वामीजीके बिछोहसे सारे सत्सङ्गमें दुःख और निराशा छा गयी। मैया श्रीदादादेवीके हृदयको जो चोट आयी वह अकथनीय है। क्यों कि उनका श्रीस्वामीजीके चरणोंमें परम अनुराग और श्रद्धा थी। वे बचपनसे ही श्रीस्वामीजीकी सेवामें रहकर उनके भोजनका सारा कार्य आप ही करती थीं। स्वामीजीको किस समय कौनसा भोजन अनुकूल पड़ेगा, वे किस बातसे प्रसन्न होंगे इसकी मैया सूक्ष्मदृष्टि रखती थीं। वे अहर्निश श्रीस्वामीजीके सुख और प्रसन्नताकी बातें सोचतीं और वैसा ही यत्न करती रहतीं। स्वामीजीके कुशलकामनामें उन्हें अपना सुख दुःख और अपना आपा भूल जाता। जैसे स्वामीजीकी अपने इष्टदेवमें अहैतुक निष्कामप्रीति थी वैसेही श्रीमैयाजीकी श्रीस्वामीजीमें विलक्षण प्रीति थी। सत्सङ्गमें भी उनका बड़ा प्रेम था और जो भी श्रीस्वामीजीसे प्रेम करता था उसे मैया बड़े आदरसे देखतीं। उनका विचित्र वात्सल्य स्नेह देखकर सब सत्सङ्गी उन्हें "मैया-मैया" कहकर पुकारते।

अब अचानक श्रीस्वामीजीके बिछोहसे उनका हृदय चूर-चूर हो गया। उन्होंने मिलना जुलना सबकुछ छोड़ दिया और अकेली एकान्तमें बैठकर रात दिन रोया करती। उन्हें यह विश्वास था कि श्रीस्वामी हमसे कभी अलग न होंगे?

पर आज कठोर विधाताने असम्भवको सम्भव कर उनकी आशाओंको तोड़ दिया। उनकी व्याकुल दशासे दयार्द्र होकर महाराजश्री श्रीउड़ियाबाबाजीने बहुत आश्वासन दिया, समझाया बुझाया। मैं बार बार उनके पास जाकर धैर्य धारण करनेकी बात कहता और सत्सङ्गके द्वारा उनकी व्याकुलताको कम करनेका प्रयत्न करता मैंने कहा—इस तरह रोते रहनेसे श्रीस्वामी प्रसन्न नहीं होंगे। अब जो बातें श्रीस्वामीजीको अच्छी लगती हैं उनमें चित्त लगाना ही आपका कर्तव्य है। सत्सङ्ग करो। गरीबों और साधुओंकी सेवा कर आशीष लो इससे श्रीस्वामीजी प्रसन्न होंगे और शीघ्र मिलेंगे। अब मैयाने श्रीस्वामीजीकी बिखरी हुई वाणी जो श्रीस्वामीजीने अपने भावमें मग्न हो छोटे छोटे कागजों पुस्तकों चित्रादिकोंके पीछे लिखी थीं वह सब इकठ्ठी करायी और महाराज श्रीउड़ियाबाबाजीकी आज्ञासे श्रीस्वामीजीके गुप्त ग्रन्थ श्रीकोकिल कलरवका अनुवाद मुझसे करवाया। यह श्रीस्वामीजीकी वाणी ही मैयाके दुःखमय जीवनका सहारा बनी। इसके द्वारा ही फिर सत्सङ्ग प्रारम्भ हुआ क्योंकि मैयाको स्वामीजीके वचन और मधुर चरित्रके बिना और कुछ नहीं भाता था। उनकी व्याकुलता कम नहीं हुई पर उसने एक नया रूप धारण किया। श्रीस्वामीजीकी मधुर कथा और लीलारूपी फुलवारीमें सर्वदा उनकी चित्तवृति भौंरी बनकर मड़राने लगी। कभी मिलनकी मधुरतामें मग्न तो कभी विरहकी व्याकुलतासे व्यथित। उनका हृदय विचित्र प्रेमावेशमें मग्न रहता था। कभी

सत्सङ्गमें श्रीस्वामीजीकी बातें करते करते ऐसी आँसुओंकी बाढ़ आ जाती कि सब कपड़े भीग जाते। वे श्रीस्वामीजीके प्रेमकी साक्षात् मूर्ति ही दीख पड़तीं।

कुछ समयके बाद मैयाके हृदयमें श्रीस्वामीजीके श्रीविग्रहकी स्थापना करनेकी प्रेरणा हुई। उनके हृदयमें जो ध्यान था कि श्रीस्वामीजीकी गोदीमें नन्हेंसे श्रीयुगलसरकार विराजमान हैं उन्हें प्रकट देखनेकी उत्कण्ठा हुई। मैंने उसका अनुमोदन किया। जयपुरसे कारीगर लोग आये और वृन्दावनमें ही रहकर उन्होंने मैयाके आज्ञानुसार स्वामीजी-का श्रीविग्रह निर्माण किया। सुखनिवासके मन्दिरमें श्रीस्वामीजीकी जन्मतिथि पर बड़े धूमधामसे प्रतिष्ठा एवं राज्याभिषेक हुआ। वह बड़ा ही अद्भुत और दिव्य दर्शन है। श्रीयुगलसरकार श्रीसीताराम श्रीस्वामीजीकी गोदमें ऐसे शोभायमान हैं मानो अभी अभी उनके हृदयसे निकल कर बाहर दर्शन दे रहे हों! अपनी ध्यानमूर्तिको प्रत्यक्ष देखकर श्रीमैयाको बड़ा आनन्द हुआ। समूचे सत्सङ्गसमाजको साईं साहबके श्रीचरणकमलोंका सर्वदाके लिये सहारा मिल गया अब वहां नित्य-प्रति मंगल आरती नामध्वनि कथा-कीर्तन होता रहता है और साईं साहबके जयघोषसे मन्दिर गूंजता रहता है।

आशीष

अंचलु पसार मागूँ बार बार विधिनाते
बाबल कृपाल तुम नित ही सुखी रहो।
लक्ष्मीको नाथ रहे सदा संग साथ त्यारे
गाइ गुणगाथ सुख साजमें सने रहो॥
सुखमानिधान शील सरल सुजान प्रभु
महिमा अपार प्रेमरसमें भिने रहो।
बड़े हो उदार नित देत दान दीननि को
वृजके निवासी मोद मंगल भरे रहो॥१॥

गरीवनिवाज बाबा लाजके जहाज बाबा
सन्त सिरताज बाबा शीलके भण्डार हो।
दीनके दयाल बिन कारण कृपाल बाबा
दशरथ लालनके प्रेम अवतार हो॥
नीतिके निधान प्रीति रीतिको प्रदान करो
कलिजीव तारिवेको आये सनसार हो।
देत हूँ आशीष नित राखो जगदीश तेरो
कोटनि बरीस वृजभूमि सुख सार हो॥२॥

नैननिके तारे प्राणप्यारे प्राणनाथ साईं
दास रखवारे तुम दीन हितकारी हो।

सनातन धरमकी युग युग रक्षा कीन्ही
देवनि मनाइ रघुवीर भक्ति धारी हो॥
जो जो शरणि आयो नाम रसदान पायो
पावन पतित दोऊ लोक सुखकारी हो।
जाके पीठ हाथ धरयो ताते यमराज डरयो
कृपाके निकेत साईं बन्दना हमारी हो॥३॥

साँवरो सलोनो सुकुमार सुठि प्राणाधार
स्वामिनी सुहाग तेरे शीश सिरताज हैं।
लवकुशलाल लेके गोद महामोद भरे
नैननिके आगे नित अवध समाज हैं॥

शीलनिधि रूपनिधि नेही रघुनन्दनके
गाहक गरीबनिके पूरे सब काज हैं।
शारदा औ शेष औ गणेश औ महेश विधि
सब रखवारे तेरे मेरे महाराज हैं॥४॥

प्रीति औ प्रतीति रसरीति सब जानत हो
रघुवीर रूप नैनकंज अनुरागे हैं।
सतसङ्ग कीन्हो तांने हरिरस चीन्हो
जांको नामदान दीन्हो ताके भ्रम भय भागे हैं॥

पावन प्रताप जग व्यापि रह्यो चहूँ ठौर
एक बेर दरश कियो ताके भाग जागे हैं।
जुगांजुग जीयो साईं खीर खण्ड पीयो साईं
अजर अमर होहु प्रेमरस पागे हैं॥५॥

सन्तनके सिरताज हो दासनके प्रतिपाल।
प्रेमभक्तिभण्डार हो बाबल दीन दयाल॥
बाबल दीन दयाल सदा सेवक हितकारी।
बृजमण्डलके रसिक सदा भक्तनि भयहारी॥
प्रियतम प्रेम तरंगमें रैन दिवस राते रहो।
रमानाथ बृजनाथकी कृपा कोर नित ही लहो॥६॥

शील सनेह सुजान प्रभु गुणनिधि परम उदार।
श्रीरामकथाके तत्त्वको सब विधि जाननहार॥
सब विधि जाननहार तदपि हिरदय महँ गोई।
अखिल भुवनके नाथ तुमहिं पै जान न कोई॥
हरिहरगुरूप्रसादते होय अचल तुव राज।
मंगल मोद लहो सदा सन्तनके सिरताज॥७॥